पारम्परिक भारतीय जीवन की एक झलक

श्रील भक्ति विकास स्वामी द्वारा रचित पुस्तकें

A Beginners Guide to Kṛṣṇa consciousness
(हिन्दी में, कृष्णभावनामृत प्रबोधिनी)

A Message to the Youth of India
(हिन्दी में, भारतीय नवयुवकों को संदेश)

Brahmacarya in Kṛṣṇa Consciousness
(हिन्दी में, कृष्णभावनामृत में ब्रह्मचर्य)

Glimpses of Traditional Indian Life
(हिन्दी में, पारम्परिक भारतीय जीवन की एक झलक)

Jaya Śrīla Prabhupāda!

My Memories of Śrīla Prabhupāda

On Pilgrimage in Holy India

On Speaking Strongly in Śrīla Prabhupāda's Service

Patropadeśa

Śrī Bhaktisiddhānta Vaibhava

Śrī Caitanya Mahāprabhu
(हिन्दी में, प्रेमावतार श्री चैतन्य महाप्रभु)

Śrī Vaṁśīdāsa Bābājī

Vaiṣṇava Śikhā O Sādhana (Bengali)

श्रील भक्ति विकास स्वामी द्वारा सम्पादित तथा संकलित पुस्तकें

Rāmāyaṇa, The Story of Lord Rāma
(हिन्दी में, वाल्मीकि कृत रामायण)

The Story of Rasikānanda

Gauḍīya Vaiṣṇava Padyāvalī (Bengali)

समर्पण

उन सभी भक्तों को जिन्होंने श्रील प्रभुपाद के उपदेश के अनुसार कृषि पर आधारित जीवन जीने का निर्णय लिया है।

विषय सूची

लेखक परिचय.....vi

अन्य सहयोगी.....vii

प्रस्तावना.....ix

बांग्लादेश में ग्रामीण जीवन.....1

निजी (भक्तिविकास स्वामी के) संस्मरण

जगन्नाथ क्षेत्र में पालन-पोषण.....70

ब्रजहरि दास के साथ साक्षात्कार

लोकनाथ स्वामी के बचपन का घर.....96

महाराज के साथ प्रात:कालीन सैर के कुछ अंश

बाण, बन्दर और आम.....100

नर्मदा स्वामी के साथ साक्षात्कार

भक्तिमय पालन-पोषण.....146

आर रंगनाथन् के साथ साक्षात्कार

भक्ति करो या मरो.....184

रसराज दास के साथ साक्षात्कार

शोभायात्रा : एक स्मृति.....224

परिशिष्ट १ : श्रील प्रभुपाद के प्रासंगिक उद्धरण.....228

परिशिष्ट २ : टाईम को एक पत्र.....241

परिशिष्ट ३ : विश्व प्रसन्नता सर्वेक्षण.....242

परिभाष.....244

लेखक परिचय

भक्तिविकास स्वामी का जन्म सन् १९५७ में इंग्लैंड में हुआ। वे सन् १९७५ में इस्कॉन लंदन से जुड़े। उसी वर्ष उन्हें इस्कॉन के संस्थापकाचार्य श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का विधिवत् अनुयायी स्वीकार किया गया और उन्हें इलापति दास नाम दिया गया। सन् १९७७ से १९७९ तक उन्होंने भारत में रहते हुए अधिकांशतः पश्चिम बंगाल में भ्रमण कर श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें वितरित कीं। अगले दस वर्ष उन्होंने बांग्लादेश, बर्मा, थाईलैन्ड एवं मलेशिया में इस्कॉन के प्रचार को प्रारम्भ करने में लगाये।

सन् १९८९ में उन्हें संन्यास आश्रम प्रदान कर उन्हें भक्तिविकास स्वामी नाम दिया गया। उन्होंने पुनः भारत को अपना प्रचार-क्षेत्र बनाया। तब से वे पूरे उपमहाद्वीप में अंग्रेज़ी, हिन्दी तथा बंगला में प्रवचन देते हुए भ्रमण करते हैं।

भक्तिविकास स्वामी कुछ माह विश्व के अन्य भागों में भी प्रचार करते हैं। टी. वी. पर उनके हिन्दी प्रवचन करोड़ों लोगों द्वारा देखे एवं सुने जाते हैं। वे पुस्तकें लिखते हैं तथा उनके लेख पत्रिकाओं में प्रकाशित होते हैं। उनकी चौदह पुस्तकों का बीस से भी अधिक भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और ये पुस्तकें सात लाख से भी अधिक संख्या में मुद्रित हो चुकी हैं।

अन्य सहयोगी

ब्रजहरि दास 1984 में घर छोड़ कर इस्कॉन से जुड़े। शुरू में उन्होंने मुंबई में कई वर्ष पुस्तक वितरण विभाग का सुंदर ढंग से नेतृत्व किया। बाद में उन्होंने मन्दिर की देख-रेख का भार संभाला। 1995 से वे इस्कॉन के प्रसिद्ध जुहू मन्दिर मुम्बई की व्यवस्था संभाल रहे हैं। वे अपनी कर्तव्य निष्ठा, विनम्रता और मुश्किल से मुश्किल समय में भी मृदु व्यवहार के कारण जाने जाते हैं।

लोकनाथ स्वामी के बारे में इस्कॉन भक्तों को बताने की आवश्यकता नहीं है। वे उन प्रथम भारतीय भक्तों में से है जो दृढ़तापूर्वक संस्था में टिके रहे। लोकनाथ स्वामी पूरे विश्व में 100 से अधिक देशों में पदयात्रा आरम्भ करने के लिए तथा श्रील प्रभुपाद की 100वी वर्षगांठ के उत्सव की तैयारियाँ करने के लिए जाने जाते हैं। लोकनाथ स्वामी निरन्तर यात्रा करते हैं, प्रचार करते हैं, लिखते हैं और सुमधुर कीर्तन के लिए सुप्रसिद्ध हैं।

नर्मदा स्वामी ने 1976 में 48 वर्ष की आयु में जीवन के लक्ष्य की खोज के लिए अपना भरा-पूरा परिवार और गाड़ियों का व्यवसाय छोड़ दिया। वे 1981 में इस्कॉन से जुड़े और उन्होंने 1985 में संन्यास ग्रहण किया। मुम्बई में भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट में कई वर्ष तक प्रबंधक का कार्यभार संभालने के बाद 2006 की कार्तिक में वृंदावन की पवित्र भूमि में उनका देहान्त हुआ।

आर.रंगनाथन् दक्षिण भारत में पारम्परिक श्री वैष्णव कुल से हैं और अब वे दुबई रहते हैं। 1998 में उन्होंने अपनी पत्नी तथा बड़ी बेटी सहित, भक्ति विकास स्वामी से गौड़ीय वैष्णव दीक्षा ली और उन्हें रंगनाथ दास नाम दिया गया।

रसराज दास (रवि गौमतम, पी.एच.डी) भी दक्षिण भारत के वैष्णव कुल से हैं। 1974 में बिरला इंस्टीच्यूट ऑफ टैक्नालॉजी एण्ड साईंस, राजस्थान से एम.ई करने के बाद उन्होंने एअर इंडिया, मुम्बई में कार्य किया। 1977 में वे अमेरिका चले गए और जनरल मोटर्स, फोर्ड तथा अन्य मुख्य कम्पनियों के सॉफ्टवेयर बनाये। कुछ समय अमेरिकन जीवनशैली जीने के बाद 1980 में

उन्नत भविष्य के अवसरों को नकारते हुए वे श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों से प्रेरित हो इस्कॉन में शामिल हो गए। इस समय वे भक्ति वेदान्त संस्थान (इस्कॉन-अकादमी और शैक्षणिक शाखा) के अन्तर्राष्ट्रीय सचिव हैं।

पी.एच.डी के लिए उन्होंने क्वान्टम मेकैनिक्स की बुनियाद में महत्वपूर्ण योगदान दिया, आइनस्टाइन और बोहर के विचारों में समन्वय किया। बिरला इंस्टीच्यूट ऑफ टैक्नालजी एण्ड साईंस के साथ मिलकर विश्व में पहली बार चेतना अध्ययन पर एम.एस, पी.एच.डी आरम्भ की - जो आधुनिक विज्ञान में इंटरडिस्पलैनरी अध्ययन का नया क्षेत्र है, जिसके अन्तर्गत कई क्षेत्र जैसे न्यूरोसाईंस, आरटीफिशल इंटैलिजैंस, क्वान्टम फिज़िक्स, मौलिक्यूलर बायोलॉजी और कागनिटिव फिलास्फी। साईंस और धर्म पर उनके कई लेख प्रकाशित हुए हैं, जिनमें कई विद्वानों और छः नोबेल पुरस्कृत विद्वानों ने सहयोग दिया है। उन्होंने पूरे विश्व में वेदों की आध्यात्मिक शिक्षाओं को आधुनिक विज्ञान से जोड़ते हुए प्रवचन दिये हैं।

प्रस्तावना

सन् 1993 के आसपास दुबई में, जब मुझे शाम के प्रवचन के बाद मेरे एक अच्छे मित्र रंगनाथन गाड़ी में वापिस ला रहे थे तो वे मुझे दक्षिण भारत के एक पारम्परिक श्री वैष्णव गाँव[१] में अपने बचपन के बारे में बताने लगे। देरी से वापिस पहुँचने पर भी इस विषय में मेरी रुचि से उत्साहित होकर वे वार्तालाप करते रहे। बातचीत में कब आधी रात बीत गई, इसका कुछ पता ही नहीं चला। आराम करते समय मैं सोच रहा था कि उन्होंने कितना सुखद जीवन व्यतीत किया है और किस तरह लोग पुनः इस प्रकार रह सकते हैं, यदि वे इस बात के लिए सहमत हों।

मैं उन वर्षों का स्मरण करने लगा जो मैंने भारत तथा बांग्लादेश में बिताए। कृष्णभावनामृत के प्रचार के दौरान, मैंने भारतीय उपमहाद्वीप में भ्रमण किया और अलग-अलग स्थान में विविध हिन्दू संस्कृति को अनुभव किया। कई धार्मिक तथा सभ्य हिन्दुओं के यहाँ रुकने पर मैं धीरे-धीरे इस वास्तविक सभ्यता के बारे में सीख पाया। भारतीय उपमहाद्वीप में मैंने कई भद्र व्यक्तियों के बारे में सोचा जो मरणासन्न जीवनशैली के जीवित प्रतिनिधि हैं। मैंने ऐसे व्यक्तियों के साक्षात्कार पर आधारित एक पुस्तक लिखने का फैसला किया। इस पुस्तक के माध्यम से हम चर्चा करेंगे कि पुरातन भारत का जीवन कैसा था, कैसा हो सकता था और अब इसे कैसा होना चाहिए। मैं यह मनन करने लगा कि किस प्रकार मशीनीकरण के विकास की होड़ में मनुष्य भ्रमित हो गया, और पारम्परिक संस्थाओं के पास क्या था जो अब हमारे पास नहीं है, और सभ्यता की वास्तविक कसौटी क्या होनी चाहिए।

एक विकसित सभ्यता का प्रमुख लक्ष्य लोगों को उनकी क्षमता के अनुसार परम अवस्था तक उठाना है। एक सच्चा उन्नत समाज केवल आहार, निद्रा, भय और मैथुन जैसी क्षणिक आवश्यकताओं के पीछे ही नहीं भागता क्योंकि यह

---

१ श्री वैष्णव, चार प्रामाणिक वैष्णव सम्प्रदायों में से एक के अनुयायी हैं जो कृष्ण की पूजा उनके ऐश्वर्यमय नारायण रूप में करते हैं।

तो जानवर भी करते हैं। एक सही मानवीय सभ्यता ईश्वर के स्वभाव, ब्रह्माण्ड, जीवों के अस्तित्व की स्थिति के दार्शनिक प्रश्न से शुरू होती है। अतः संसार के इतिहास में आध्यात्मिक सभ्यताओं ने जीवन के वास्तविक पक्षों का अभ्यास किया है, जिसमें व्यक्ति के समाज के प्रति उत्तरदायित्व निभाते हुए — शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक सभी पहलू शामिल हैं। मानव को प्रकृति के साथ तथा उस पर आश्रित रहना पड़ता है, इसलिये कृषि पर आधारित पारम्परिक सभ्यताएँ सभी जीवों का आदर करतीं थी और प्रकृति के साथ सहयोग करके रहती थीं। ऐसी सभ्यताओं के लोग भूमि का आवश्यकतानुसार प्रयोग करते थे और उसी अनुपात में भूमि की सेवा भी करते थे।

पारम्परिक समाज के सदस्य अपनी आवश्यकताओं को सादे और पर्यावरण-अनुकूल ढंग से पूरा करते थे। बहुत अधिक संघर्ष किये बिना भौतिक आवश्यकताएँ पूरी हो जाती थीं। उस समय बनावटी जीवनशैली को बढ़ावा देने वाली कारखानों में निर्मित अनावश्यक वस्तुएँ नहीं थीं, न ही बेकार सामान की खरीदारी करने के लिये बड़े-बड़े मॉल थे और न ही लोगों को ऐसी वस्तुएँ खरीदने के लिए उकसाने के लिये विज्ञापन थे। अर्थव्यवस्था लोभ पर नहीं बल्कि जरूरत पर आधारित थी। व्यापार सीमित था और अधिकतर सामान के लेन-देन पर चलता था — ''अपनी आवश्यकता की वस्तु मुझसे लीजिये और मेरी जरूरत की वस्तु मुझे दीजिए।'' उस समय कोई शेयर बाजार का गिरना, रुपये की कीमत में उतार-चढ़ाव, बजट, महंगाई, बेहिसाब बेरोजगारी, और हड़तालें न थीं।

जीवन की मूल आवश्यकताएँ — रोटी, कपड़ा, मकान और ईंधन धरती से ही प्राप्त कर लिए जाते थे। कपड़े के लिये कपास घर पर ही बना ली जाती थी। हर गाँव में बर्तन बनाने के लिए एक कुम्हार हुआ करता था। बड़े गाँवों में एक लोहार होता था जो गैर-स्थानीय या पुनः उपयोग किए जाने वाली धातु से कृषि के सीदे-सादे औजार, खाना पकाने के बर्तन, चाकू (एक चाकू पूरा जीवन चलता था) और अन्य वस्तुएँ बनाता था। रस्सी और धागे, नारियल, जूट और पटसन हर गाँव में ही बनाए जाते थे। पानी नदियों, कुओं और तालाबों से प्राप्त होता था। जल-विभाग, सीवरेज प्रणाली, शौचालय या नलकों की आवश्यकता

नहीं थी। न ही बिजली की आवश्यकता थी क्योंकि लोग जटिल मशीनों के बिना रहने के अभ्यस्त थे। घर में बनाए वनस्पति तेल से दीए जला कर उजाला किया जाता था। गर्मियों की तपिश बांस के पंखे से थोड़ी राहत लेकर सहन कर ली जाती थी; सर्दियों में कम्बल और लकड़ी की आग का सहारा लिया जाता था। दवाइयाँ, मेकअप और रंग, पौधों, चट्टानों या अन्य प्राकृतिक चीजों से घर पर बना लिए जाते थे। फर्नीचर की आवश्यकता ही न थी, क्योंकि लोग जमीन पर बैठते, खाते, बनाते और सोते थे।

ऐसा सादगी भरा जीवन बिताने वाले लोग भोले-भाले और निष्कपट रहते थे। उनकी तीव्र नकारात्मक भावनाएँ नहीं हुआ करती थीं। कड़वाहट, तनाव इत्यादि नाममात्र थे। लोगों के पास जो कुछ होता वे उसी से संतुष्ट रहते। भौतिक साधनों को इकट्ठा करने की जगह इन वस्तुओं से विरक्त होने को प्रगति माना जाता था। इन मूल्यों पर आधारित जीवन सादा, विचारशील, सुखदायी और ईमानदारी, आदर एवं दया जैसे प्रशंसनीय गुणों को पोषित करने वाला था।

निश्चित ही गाँव में रहने भर से मन की शांति और आध्यात्मिक ज्ञान मिलने वाले नहीं हैं। गाँव के कुछ लोग आध्यात्मिक दृष्टि से अपने आसपास रहने वाले कुत्तों तथा भैंसों से ज्यादा उन्नत नहीं हैं। और जो शहरी अपनी समस्याओं से बचने के लिये गाँव का रुख करते हैं, वे अक्सर अपने साथ तनाव और मुसीबतें ले आते हैं। भौतिक जगत् स्वभावत: दु:खमय है, असली प्रसन्नता भगवद्-साक्षात्कार में है जो अत्यन्त विलासी शहरी जीवन तथा गाँव की शांति दोनों से परे है। शहर या गाँव दोनों में भगवद्-चेतना के विकास के प्रयास बिना मनुष्य-जीवन जानवरों जैसा ही है। तथापि आज के जटिल शहरी समाज की अपेक्षा भगवद्-साक्षात्कार के लिए सरल कृषिमय जीवन अधिक अनुकूल है। जिनके पास आँखें हैं वे देख सकते हैं कि प्रकृति में प्रत्येक वस्तु ईश्वर का गुणगान करती है। अत: पारम्परिक रूप से साधु शहरी जीवन के कोलाहल से दूर रहते थे। वे ताजी हवा और स्वच्छ जल पीकर शाँति से प्रकृति के कारण और पालनकर्ता भगवान् पर ध्यान लगा सकते थे।

दुर्भाग्यवश औद्योगिक व्यक्ति ऐसे निश्छल अस्तित्व से कहीं दूर भटक रहा है। आधुनिक शहरी जीवन अत्यन्त बनावटी है क्योंकि यह अपने आस्तित्व

के स्त्रोत से कोसों दूर है। किसी की आध्यात्मिक प्रवृत्ति होने पर भी शहर में रहने वालों को भगवान्, प्रकृति और मनुष्य में सम्बन्ध का बहुत ही कम ज्ञान है। वे सोचते हैं खाद्यान्न दुकान से आता है, उजाला बटन दबाने से और स्वास्थ्य गोली से। बहुदेशीय कम्पनियाँ धरती माँ का बलात्कार कर रहीं हैं, इसके स्त्रोतों का शोषण कर रहीं हैं, लोगों को नारकीय कारखानों में धकेल रहीं हैं और उन्हें हर प्रकार का कूड़ाकर्कट बेच रही हैं। औद्योगिकीकरण और उपभोक्तावाद ने — स्वार्थ, अज्ञानता और घोर भौतिकता को बढ़ावा दिया है। निरपेक्ष शिक्षा मानव को सिखा रही है कि वह स्वयं अपने भाग्य का स्वामी है और प्रकृति को पशु के समान प्रताड़ित कर काबू करने को 'प्रगति' माना जाता है।

अपनी तथाकथित उन्नति और आर्थिक प्रगति के बावजूद शांति और संतुष्टि तो दूर, शहर के लोग ताजा भोजन तक प्राप्त नहीं कर सकते। करोड़पति लोग उच्चस्तरीय मकान में सभी अत्याधुनिक सुविधाएँ होने के बावजूद भी ताजी सब्जियों तक के मोहताज हैं, जो एक गरीब गाँव वाले को आसानी से उपलब्ध हैं। आधुनिक शहरों में बोतल-बंद पानी खरीदना पड़ता है क्योंकि नल में सीवर के पानी को छानकर रसायन-युक्त पानी दिया जाता है। फिर भी बोतल-बंद मिनरल पानी में नदी या कुएँ के पानी के समान न तो शक्ति है और न ही स्वाद।

बड़े शहरों के लोग सप्ताह के अंत में मात्र ताजी हवा लेने के लिए शहर के बाहर आते हैं, जबकि गाँव में हवा का अर्थ है ताजी हवा। कितनी गन्दी है यह सभ्यता, जहाँ लोग अस्वस्थ रहते हैं, शहर अपराधों से लिप्त हैं, लोगों को बदतर हालातों में काम करना पड़ता है और बदले में उन्हें जहरीली हवा और भोजन मिलता है।

क्योंकि शहर में रहने वालों को न तो ज्यादा पैदल चलना पड़ता है, न पानी लाने जाना पड़ता है और न ही खेतों में काम करना पड़ता है अतः वे गांवों के लोगों को पिछड़ा मान कर हीन दृष्टि से देखते हैं। किन्तु सभी आधुनिक सुविधाएँ होने पर भी शहरी लोगों को बनावटी ढंग से व्यायाम करना पड़ता है, नहीं तो उन्हें मधुमेह, तनाव, हृदय-रोग, गठिया, बवासीर आदि जैसे रोगों का सामना करना पड़ता है।

ऐसा बनावटी जीवन लोगों को बनावटी बनाता है, जो बाहर से मुस्कुराएँगे किन्तु अन्दर से खोखले होंगे। आधुनिक शहरी निरन्तर सूचनाओं की बौछार, विज्ञापन और तथाकथित मनोरंजन से प्रलोभित किए जाते हैं। किन्तु उनका हृदय आध्यात्मिकता और भावनाओं से खाली रहता है। यद्यपि आधुनिक मानव कार, कम्प्यूटर, टी.वी और अन्य असीम सुविधाओं के बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकता, इन उपकरणों की बाढ़ मन की शांति के लिए एक तुच्छ विकल्प है।

विकासशील देशों के अधिकांश गाँववासी आज भी जल्दी उठते हैं, खेतों में काम करते हैं, और शायद ही घर से दूर यात्रा करते हैं। इस तथाकथित गरीबी के बावजूद वे आवश्यकता से अधिक धन वाले लोगों से कहीं अधिक सुखी हैं। भाग-दौड़ का जीवन जीने वाले लोग पारिवारिक जीवन के साधारण सुखों और आपसी सहयोग को त्याग देते हैं। गाँव के लोग ऐसे लोगों की अपेक्षा मानसिक रूप से अधिक संतुलित होते हैं।

उपभोक्ता समाज की मांग पर जैसे पूरा ग्रह तेजी से एक विशालकाय बाजार के रूप में विकसित हो रहा है। इस दबाव के कारण पूरे विश्व में ग्रामीण जीवन के अस्तित्व पर खतरा मंडरा रहा है। पारम्परिक संस्कृति और मूल्य नष्ट हो रहे हैं और लोग बड़ी आर्थिक मशीन के पुर्जे मात्र बन कर रह गए हैं। कृषि का सुख सोख लिया गया है — अब यह 'कृषि-व्यापार' बन चुका है। विवेक का सम्यता से नामोनिशान लगभग मिट चुका है।

आज लोग इन्द्रिय-तृप्ति के लिए पागलों की तरह भाग रहे हैं। धन, विलासिता, ताकत और कामवासना के पीछे अंधाधुंध भागने से आज तक किसी को संतुष्टि नहीं मिली, फिर भी आजकल के लोग कामवासना और लोभ को अच्छा ही नहीं अत्यन्त आवश्यक मानते हैं। टीवी-सिनेमा और विज्ञापनों द्वारा गलत आदर्श थोपे जा रहे हैं। जाने-अनजाने लोग फिल्मी कलाकारों की नकल कर रहे हैं। दूसरों की नकल करने के चक्कर में वे अपने ही अस्तित्व को भूल जाते हैं। किसी भी तरह से आगे बढ़ने की ललक में लोग इतने अन्धे हो जाते हैं कि उन्हें इस बात का आभास भी नहीं रहता कि आगे है क्या।

भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण — कामवासना, क्रोध और लोभ को नरक का द्वार बताते हैं। निस्सन्देह आजकल के लोग नरक पर विश्वास नहीं करना चाहते, भले ही वे पृथ्वी को ही नरक बनाने पर तुले हैं। लोगों की आदतें अनियमित, असमान, अस्वस्थ और पापयुक्त हैं, इनके पेट कूड़े-कर्कट और मरे हुए जानवरों से भरे पड़े हैं; और नैतिक-मूल्य छिन्न-भिन्न हो चुके हैं। वे अपने जीवनसाथी, बच्चों और माता-पिता पर विश्वास नहीं करते। उन्हें अपनी बड़ी इमारतों, विशाल सड़कों, विस्तृत अर्थव्यवस्था और बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों पर अभिमान है किन्तु वे इतने बेचैन हैं कि गोली खाये बिना उन्हें नींद नहीं आती। 'प्रगति', जिस पर उन्हें इतना अभिमान है, एक ऐसा छलावा है जो उन्हें इन्द्रिय-भोग के लिए जानवरों की तरह काम पर लगाए हुए है। मांस खाना, नशा करना, सैक्स के बारे में सोचते रहना, हिंसा और हजारों बेतुके खेल — यह सब आधुनिक 'सभ्य' मानव के लिए सामान्य माने जाते हैं। पागलपन, मनोविकार, अपराध, हिंसा, तलाक, समलैंगिकता, परमाणु-बम से विनाश का खतरा — यह सब रोजमर्रा की जिन्दगी का एक हिस्सा हैं।

वास्तविक आध्यात्मिक संस्कृति या भगवद्-जिज्ञासा आधुनिक समाज से लगभग गायब हो चुकी है। लोगों में (बड़े-बड़े बुद्धिजीवियों में भी) भौतिकतावादी विचार इतना घर कर चुका है कि आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचार की बात तो दूर, वे इसके बारे में सोचते भी नहीं। करोड़ों पशुओं की नृशंस हत्या इतनी आम बात हो गई है कि यह बिना विरोध के कई वर्षों से चली आ रही है। सरकार तलाक, गर्भ-निरोध, गर्भपात और समलैंगिकता को न केवल अनुमति देती है अपितु इसका समर्थन भी करती है। हमारा ईश्वरविहीन समाज प्रत्येक दृष्टि से इतना गिर चुका है कि इसके नैतिक पतन पर कई पुस्तकें लिखी जा सकती हैं। किन्तु एक शब्द इस सबको सार रूप में परिभाषित करता है — पागलपन।

जैसा कि स्वर्गीय ब्रिटिश इतिहासकार सर आरनॉल्ड टॉनबी ने लिखा है: ''संसार की सभी बीमारियों की जड़ आध्यात्मिकता है। हमने एक ऐसे लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अपनी आत्मा तक को बेच दिया है जो आध्यात्मिक दृष्टि से गलत है और जिसको प्राप्त करना लगभग असंभव है। इसी कारण हम दुःख भोग

रहे हैं। हमें अपने लक्ष्य पर विचार करके उसे बदलना चाहिए। जब तक हम ऐसा नहीं करते, हमें कभी भी अपने मन में और समाज में शांति नहीं मिल सकती।''[२]

इस बात पर काफी चर्चा हो चुकी है कि मानव ने स्वयं को और दूसरे जीवों को प्रगति के नाम पर कितना नुक्सान पहुँचाया है। अधिक से अधिक प्रभावित और भागीदार लोगों को इस विध्वंस के किसी हल पर पहुँचना होगा, जो मानव ने स्वयं और इस ग्रह को पहुँचाया है। पारम्परिक समाज और मूल्य, जिन्हें पहले पिछड़ा और बेकार समझकर त्याग दिया गया था, का कम से कम कुछ लोगों द्वारा दोबारा मूल्यांकन किया जा रहा है।

लोग पुन: प्रकृति की ओर मुड़ने की बात तो कर रहे हैं किन्तु वे यह नहीं जानते कि विश्व के अधिकतर लोगों ने कभी भी प्रकृति का साथ छोड़ा ही नहीं। उदाहरणत: यदि कोई अमरीका के कस्बे या शहर में बैलगाड़ी चलाता है तो निस्सन्देह वह स्थानीय अखबारों की सुर्खियों में होगा और उसे निश्चित ही शहरी क्षेत्र में बैल लाने के लिए पुलिस की आज्ञा लेनी पड़ेगी। तथापि भारत के अधिकतर हिस्सों में सिर्फ अच्छा दिखने वाले, पर गन्दे और शोर मचाने वाले ट्रैक्टर की ही तरह बैल का उपयोग साधारण बात है।

भारत की वास्तविक संस्कृति वैदिक ज्ञान पर आधारित है जिसमें खगोल, गणित से लेकर गृह-निर्माण विद्या, अर्थशास्त्र और युद्ध तथा कामशास्त्र का विकसित ज्ञान तक भी सम्मिलित है। वैदिक सभ्यता उन्नत आध्यात्मिक-दर्शन पर आधारित है। इस सभ्यता का सार जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्ति की खोज है, जिसका चरम लक्ष्य विशुद्ध भगवद्-प्रेम का विकास करना है। भारत में धर्म को कभी भी जीवन का केवल एक पहलू नहीं माना गया। धर्म ही जीवन था। और जीवन की प्रत्येक वस्तु का एक आध्यात्मिक लक्ष्य था। विश्व के अन्य देशों में भी धर्म है, किन्तु जिस प्रकार यह भारत में विकसित हुआ, वह अतुलनीय है।

दुर्भाग्यवश पिछली कुछ शताब्दियों में वैदिक धरोहर में अवैदिक विचारों की घुस-पैठ हुई है। धीरे-धीरे वास्तविक वैदिक सभ्यता में कई बदलाव आ

---

२ अक्तूबर 1972 में लंदन आब्जर्वर में छपे लेख से।

गए तथा यह कमजोर और दूषित हो गई। आज यह कमजोर और दूषित सभ्यता हिन्दुत्व के नाम से जानी जाती है।

फिर भी भारत में जो कुछ भी सभ्यता बची है, वह अमूल्य है और इससे काफी कुछ सीखा जा सकता है। थोड़ा बहुत ही सही पर आज भी पारम्परिक भारत जीवित है। सुंदर नक्काशी की हुई छड़ी के सहारे खड़े सौराष्ट्र के ग्वाले को देखिये– पैरों में सुंदर जूते, रौबदार मूंछे और सिर पर सफेद रंग की 50 मीटर लंबी पगड़ी।[३] और उसके पुत्र को देखिए जो प्रत्येक गाय को उसके नाम से बुला रहा है और उन्हें इकट्ठा करने के लिए बांसुरी बजा रहा है। आज भी आप तीर्थ–यात्रियों का समूह देख सकते हैं जो शायद हजारों किलोमीटर दूर से तीर्थ यात्रा पर आया है। ये तीर्थ–यात्री भजन गाते हुए चलते हैं, रास्ते में धार्मिक लोगों से मधुकरी करते हैं और किसी जगह रुक कर टहनियों और पत्तों से ही आग जलाकर रोटियाँ बनाते हैं। गाँव की औरतों के समूह पर ध्यान दीजिए जो कई किलोमीटर दूर कूँए या नदियों से पानी भरने जा रही हैं, उनके तांबे के घड़े जो उनके सिर पर एक के ऊपर एक रखे हुए हैं, उनके रंग–बिरंगे वस्त्र जो प्रात:काल के सूरज की छटा बिखेर रहे हैं; उनके मोटे–मोटे नूपुर और हाथों में पहनी हुई चूड़ियों की खनखनाहट, बच्चों जैसे भोलेपन से कृष्ण का गुणगान।

तथापि भारतीय संस्कृति का सार इन मनमोहक दृश्यों से कहीं अधिक गहरा है। यह इतना सूक्ष्म आध्यात्मिक ज्ञान है कि यदि कोई इसे गंभीरता से समझने का प्रयास न करे तो इसे समझा नहीं जा सकता। पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दो सौ वर्षों तक लगातार भारतीय संस्कृति और धर्म के विरुद्ध प्रचार के कारण इसको समझना और भी मुश्किल हो गया है।[४]

युरोपियों ने भारत की महान विरासत को एक अंधविश्वास करार दिया और 'जंगली लोगों को सभ्य' बनाने के नाम पर भारत पर जबरदस्ती कब्जा

---

३ सौराष्ट्र – गुजरात का एक क्षेत्र जहाँ पुरातन ग्वाल समुदाय के कई सदस्य अभी भी अपनी परम्पराओं से जुड़े हुए हैं।

४ ब्रतानवी विचार के लिए सत्स्वरूप दास गोस्वामी द्वारा कृत एलीमैंटस ऑफ वैदिक थॉटस एण्ड क्लचर के अध्याय ''दि फर्स्ट इण्डोलाजिस्टस'' देखें।

कर लिया। इसका उदाहरण 18वीं सदी के अंत और 19वीं सदी के आरम्भ में दक्षिण भारत में रहे एक फ्रांसीसी प्रचारक एबे डियूबॉयस की पुस्तक *'हिन्दू मैनर्स, कस्टम्स सैरमॉनिस'* में मिलता है। डियूबॉयस ने सूक्ष्मता से भारतीय जीवन की जटिलता को समझा और लिखा। उनकी 770 पृष्ठों की यह पुस्तक इतनी रुचिकर है कि आज भी छापी जा रही है। किन्तु डियूबॉयस एक कट्टर ईसाई था जिसने हृदय से न देखकर आँखों से देखा। वह स्थानीय लोगों से बहुत आत्मीयता से रहा लेकिन मन में उनसे घृणा करता था। उसका विचार था कि इन लोगों का ईसाई धर्म अपनाना ही काफी नहीं है। अपनी संस्कृति को पूरी तरह त्याग कर पाश्चात्य देशों के रहन-सहन को अपनाना ही इनके सुधार का एकमात्र उपाय है।

डियूबॉयस एक कट्टर ईसाई था। वह इतना दूरदर्शी नहीं था कि वह देख सके कि जिन असभ्य लोगों को वह सभ्य बनाना चाहता है, पश्चिम के लोग उनसे ज्यादा नास्तिक बन जायेंगे। फिर भी पाश्चात्य लोग असभ्य लोगों पर दयापूर्वक अपनी नवीनतम सनक 'विज्ञान और तकनीक' की खोजों को थोपने के लिए पूरी तरह से उत्साहित हैं।

कुछ समय पहले यह विश्वास किया जाता था कि वैज्ञानिक प्रगति ही स्वर्ग का रास्ता है। सन 1965 ई. में *यूनाईटिड स्टेटस इन्फॉरमेशन सर्विस* द्वारा छापी पुस्तक में कहा गया:''भारत ने स्वतंत्रता प्राप्त करने के थोड़े समय बाद ही अपने नागरिकों को आधुनिक जीवन की सुख सुविधाएँ प्रदान करने के लिए पूरा जोर लगाया है। स्वास्थ्य, शिक्षा, उद्योग और विकास के क्षेत्र में भारत आगे बढ़ रहा है। भारत में बदलाव आ रहा है और यह गाँवों तक भी पहुँचेगा — और यह बदलाव ग्रामीण जीवन की शाँति और गरिमा को नष्ट नहीं करेगा बल्कि इन्हें सुरक्षा और संसार की अच्छी वस्तुओं के साथ और बढ़ाएगा। बदलाव आ रहा है। गाँव में आशा की किरण जगमगा रही है।

किन्तु आजकल पश्चिम के कुछ निवासी यह महसूस कर रहे हैं कि अविकसित देशों पर अपनी अर्थव्यवस्था और मूल्यों को थोपना एक भूल थी। जब मानव, आत्मा का हनन करने वाली सभ्यता का विकल्प खोज रहा है,

भारतीय संस्कृति का महत्व उसी कीचड़ में से उभर रहा है जिसमें पश्चिम वासी उसे दफन करना चाहते थे। पश्चिम के लोग खुद ही मानव की सबसे पुरातन सभ्यता का जोर-शोर से प्रचार कर रहे हैं।

श्रील प्रभुपाद आधुनिक युग में इस्कॉन के संस्थापकाचार्य और वैदिक संस्कृति के प्रबल समर्थक थे। वे मनुष्य समाज की कमियों को अच्छी तरह जानते थे। वे वैदिक संस्कृति के प्रचार के माध्यम से पूरे विश्व में आध्यात्मिक मूल्यों को पुनः स्थापित करना चाहते थे।

> वैदिक संस्कृति मानव समाज के लिए सबसे उपयुक्त है क्योंकि यह सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है। आप इसे स्वीकार करें। तब आप सुखी होंगे। पूरी मानव जाति सुखी हो जाएगी। इससे फर्क नहीं पड़ता कि आप कहाँ रहते हैं। यह विज्ञान है जो सिखाता है कि किस प्रकार कुत्ते-बिल्लियों की तरह न बनकर मनुष्यों की तरह जीवन बिताया जाए। यह वैदिक संस्कृति है। सभी सुखी हैं। किंतु जो वैदिक सिद्धान्तों का पालन करते हैं, वे दूसरों की तुलना में अधिक सुखी हैं।
>
> यह समाज शूद्रों से भरा हुआ है इसलिए इतनी गड़बड़ हो रही है। दिमाग ही नहीं है। केवल ये चाहिए, वो चाहिए...। ब्राह्मण संस्कृति में आप देखेंगे कि एक दरिद्र ब्राह्मण जिसकी आय का कोई साधन नहीं है, खाने का ठिकाना नहीं है, फिर भी वह प्रसन्न है। वह अपने ज्ञान से खुश है। वह अपने आप में संतुष्ट है। यदि उसे किसी दिन भोजन नहीं मिलता तो वह सोचता है कि,"आज कृष्ण की इच्छा थी कि मुझे भोजन न मिले। इसी में कृष्ण की प्रसन्नता है। यह कृष्ण की कृपा है।"[५]
>
> हम असली सभ्यता को लाने का प्रयास कर रहे हैं। वास्तव में इस समय कोई भी सभ्यता नहीं है। वे मात्र कुत्ते-बिल्लियों की तरह एक दूसरे से लड़ रहे हैं। यह सभ्यता नहीं है। नास्तिक और आसुरी लोगों का बोलबाला है। और उनके पास बड़ी-बड़ी गगनचुम्बी इमारतें और गाड़ियाँ हैं, इसलिए भारत इसका शिकार हो रहा है: ओह! इस गाड़ी और बड़ी-बड़ी इमारतों के बिना हम बेकार हैं।" यही कारण है

५ श्रील प्रभुपाद के साथ 21 सितम्बर 1973 में वार्तालाप से

> कि वे नकल कर रहे हैं। वे अपनी सर्वश्रेष्ठ भारतीय संस्कृति को खो चुके हैं। अत: यह पहली बार है कि हम आसुरी संस्कृति पर वैदिक संस्कृति की विजय का प्रयास कर रहे हैं। यह पहली बार है। अत: यह बहुत ही खुशी की बात है कि आप आंदोलन में शामिल हो गए हो। यदि आप मानव समाज को सुखी बनाना चाहते हो, तो इन्हें यह कृष्ण भावनाभावित संस्कृति दो।[६]

भारत यात्रा के दौरान मैं कई लोगों के घर रूका। मैं उनके स्वाभाविक शिष्टाचार और आवभगत से हैरान रह जाता था। चूँकि मेरा पालन पोषण घृणित म्लेच्छ परिवार में हुआ है अत: जब ऐसे शिष्ट और उन्नत लोग हमारा आदर और सेवा साधु की भाँति करते तो मुझे कई बार अपने ऊपर शर्म आती थी। वे बहुत सुसंस्कृत और सभ्य थे, फिर भी विनम्र थे और उनमें कोई भी बनावटी अभिमान न था। उनका जीवन इतना सुचारु व सुखी था कि मैंने पश्चिम में ऐसा कभी नहीं देखा। उदाहरण के रूप में भारतीय बच्चे हमेशा माता-पिता का कहना मानते हैं। मैं कई बार समृद्ध व्यापारियों के यहाँ ठहरा हूँ जिनके बालिग बच्चे बिना किसी हिचकिचाहट या मनमुटाव के अपने माता-पिता के प्रति आज्ञाकारी रहते हैं।

अक्सर मैं एक संस्कृत के प्रोफैसर को मिलने जाता हूँ जिन्होंने अपने लम्बे कार्यकाल में हजारों बच्चों को पढ़ाया है। वे पूरे उड़ीसा में विख्यात हैं और आदरणीय हैं, फिर भी मेरे लाख रोकने पर भी मुझे दंडवत् प्रणाम करते हैं। जब मैं उन्हें दंडवत् प्रणाम करता हूँ तो वे मुझे रोकने का प्रयास करते हैं। उन्हें इस बात की प्रसन्नता है कि मैंने प्रणाम करने की भावना को सीख लिया है। विशेषकर उनकी तुलना में मेरी पारिवारिक पृष्ठ-भूमि और अतीत के कार्य बहुत ही निम्न और घृणास्पद हैं। मैं संस्कृत के कुछ ही शब्द बोल सकता हूँ और उम्र में उनके पुत्र के बराबर हूँ, फिर भी उन्होंने मुझमें अच्छाई देखी: ''इनका अतीत कुछ भी रहा हो, वे एक संन्यासी हैं और इसलिए पूजनीय हैं। हरि सेवा के लिए इन्होंने भौतिक सुख की सभी वस्तुओं को त्याग दिया है। इतना विद्वान होने पर भी मैं इस संसार में आसक्त गृहस्थ हूँ। मुझे प्रणाम करना चाहिए।''

---

६ श्रील प्रभुपाद के साथ 28 फरवरी 1976 में वार्तालाप से।

ऐसे लोगों के बीच रहकर मैंने भारतीय सभ्यता का जीवन्त रूप में करीब से साक्षात्कार किया। भारतीय संस्कृति मेरे लिये एक अनोखी और पुरातन रीति रिवाजों वाला ऐसा किताबी ज्ञान नहीं रह गया था जिसका इतिहासकार या जिज्ञासु लोग अध्ययन करते हैं। मैं मानव सभ्यता के वास्तविक आदर्शों के महत्व को समझ पाया। मुझे समझ आ गया कि इसके बिना मैं जिन उच्च दार्शनिक आदर्शों का पालन और प्रचार कर रहा हूँ, वे अधूरे हैं।

यहाँ उस जमाने की एक झलक प्रस्तुत की जा रही है जो बहुत पुरानी नहीं बल्कि भारत के आधुनिकी-करण से कुछ समय पहले की बात है। अधिकतर लोग संतुष्ट थे और लोगों को कोई गम्भीर सामाजिक या मनोवैज्ञानिक समस्याएँ नहीं थीं। जीवन हजारों वर्षों से सामान्य रूप से चलता जा रहा था। और सबसे महत्वपूर्ण बात थी कि समाज के नैतिक नियमों, पारिवारिक आदर्शों और शैक्षणिक मूल्यों का आधार ईश्वर और आत्मा का ज्ञान था।

यह पुस्तक, विशेषकर उन लोगों के साथ अपनी अनुभूतियाँ और अनुभव बाँटने के लिए है, जिन्हें इस महान् संस्कृति का स्वयं अनुभव करने के बहुत ही कम अवसर मिले। पारम्परिक जीवन की एक झलक भारतीय सभ्यता की जीवनशैली का विस्तृत विश्लेषण करने हेतु प्रयास नहीं है और न ही यह सलाह देने के लिए है कि किस प्रकार आज के इतने बदले हुए हालातों में इस सभ्यता को पुनः जागृत किया जाए। यह पुस्तक अतीत की जीवनशैली की एक झलक दिखलाती है। हम आशा करते हैं कि इसके द्वारा लोग नैतिक मूल्यों से रहित खतरनाक परिवेश में वैदिक संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए प्रेरित होंगे। वैदिक जीवनशैली के बारे में लिखना आसान है किन्तु पूरे संसार में इसे स्थापित करना मुश्किल है। फिर भी वैदिक जीवनशैली के प्रति जागरुकता लाने के लिये यह पहला और महत्वपूर्ण कदम है।

श्रील प्रभुपाद अक्सर बल देते थे कि जीवन की सारी जरुरतें धरती से प्राप्त की जा सकती हैं। वे पूरे विश्व में आदर्श कृषि समुदाय स्थापित करना चाहते थे। ऐसे समुदायों का आधार कृष्णभावनामृत होता; जीवन-निर्वाह करने के लिये कृष्ण, गाय और जमीन पर निर्भरता होती; सादा जीवन, उच्च विचार लक्ष्य होता,

और वैदिक संस्कृति इसकी जीवनशैली होती। **पारम्परिक जीवन की एक झलक** ऐसी संस्कृति के ऐसे समुदायों के संस्थापकों को दिशा निर्देश दे सकती है। और जो वैकल्पिक जीवनशैली की तलाश में हैं, यह उन्हें ऐसी जीवनशैली से अवगत करवा सकती है जो समय के साथ बनी रही।

इसके अलावा आशा है कि यह पुस्तक भारतीय पाठकों को भी उनकी अपनी संस्कृति और मूल्यों की गहराई का संदेश देगी और उन्हें प्रेरणा देगी कि वे मूर्खतापूर्वक पश्चिम की नकल करने की बजाए अपनी जड़ों की ओर जाएँ। इसके अतिरिक्त यह पुस्तक समाजशास्त्रियों, मानव-वैज्ञानियों या उन सबको भी आकर्षक लगेगी जो मानव जाति के बारे में अपने ज्ञान को बढ़ाना चाहते हैं।

इस पुस्तक का पहला भाग पश्चिम बंगाल और बांग्लादेश में बिताए कई वर्षों की निजी स्मृतियों पर आधारित है। दूसरा भाग भारत के विभिन्न भागों में पारम्परिक रूप से पले-बढ़े इस्कॉन के दीक्षित भक्तों के साथ साक्षात्कार है। इनसे एक समृद्ध और गहरी धार्मिक संस्कृति की छवि उभर कर सामने आती है जो पूरे महाद्वीप में समान रूप से प्रचलित है यद्यपि अलग-अलग स्थानों में कुछ विविधता भी पायी जाती हैं। जबकि कई बातें दोहराई भी गईं हैं, प्रत्येक विवरण से यह झलकता है कि साक्षात्कार देने वाले का अपना अनोखा दृष्टिकोण और अनुभूति है।

हो सकता है कि इसके कई विषयों और शब्दों से पाठक अपरिचित हो, किन्तु मैंने प्रत्येक विषय की व्याख्या नहीं की है। उदाहरणत: 'श्री वैष्णव' को पारिभाषित करना शोध का बृहद विषय हो सकता है। जैसा कि समाज-विज्ञानी मानते हैं कि किसी संस्कृति के बारे में जानने के लिये उसमें जीना आवश्यक है। फिर भी इस पुस्तक को पढ़कर पाठक भारतीय पारम्परिक जीवनशैली के बारे में थोड़ा-बहुत अवश्य समझ पायेंगे।

इस पुस्तक के प्रकाशन के बाद मैं कुछ और पुस्तकें प्रकाशित करने का प्रयास करूँगा जैसे - वैष्णव संस्कृति, सदाचार व आचरण - जिसमें भक्तों को विस्तृत रूप से मार्गदर्शन मिलेगा और कृष्णभावनामृत में पारिवारिक जीवन,

जिसमें श्रील प्रभुपाद की शिक्षाओं के अतिरिक्त वैदिक संस्कृति के विषय में व्यवहारिक मार्गदर्शन दिया होगा। मैं श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि वे मेरा मार्गदर्शन करें। मैं आशा करता हूँ कि सभी वैष्णव इस प्रयास की सराहना करेंगे और यह उनके जीवन में कुछ सहायक होगा।[७]

वार्तालापों की अंग्रेजी प्रतिलिपि बनाने के लिए नन्द कुमार दास और शोभा राधिका दासी का, अपना समय देने और अनुभूतियाँ बताने के लिए वार्लालाप करने वालों का, तथा इस पुस्तक को छापने में वित्तिय सहयोग देने वाले कई भक्तों का मैं आभारी हूँ।

अंग्रेजी संस्करण का अनुवाद करने के लिए मैं अचिन्त्य चैतन्य दास का बहुत आभारी हूँ। साथ ही साथ इसका संशोधन करने के लिए श्री बल्लभ दास व रामानुज दास का भी मैं आभार प्रकट करता हूँ। इस पुस्तक तथा कवर के डिजाइन के लिए तथा पुस्तक के प्रकाशन के प्रबंध के लिए भीष्म दास तथा वृंदावन चन्द्र दास का आभार प्रकट करता हूँ।

७ श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु—कृष्ण के अवतार जो 500 वर्ष पूर्व हरिनाम कीर्तन के द्वारा भगवान् का सर्वोच्च प्रेम वितरित करने हेतु अवतीर्ण हुए।

बांग्लादेश में ग्रामीण जीवन : निजी संस्मरण

भक्तिविकास स्वामी बांग्लादेश के ग्रामीण जीवन में अपनी स्मृतियों को बताते हैं। वे उस जीवनशैली का वर्णन करते हैं जो वास्तविक वैदिक संस्कृति के बेहद करीब है। यह उज्जवल संस्कृति, जो स्वाभाविक रूप से धार्मिक और प्रकृति के अनुकूल होने के कारण गाँव के लोगों को जीवन के संघर्ष में भी सुखी रखती है।

भूमिका

मैं बांग्लादेश पहली बार 1979 में इस्कॉन के विश्व प्रचार आंदोलन के सदस्य के रूप में गया। सात वर्षों के प्रवास के दौरान पहले मैं वहीं रहा और बाद में मैं वहाँ आता-जाता रहा। मैंने पूरे देश में जगह-जगह यात्रा की। प्रचार के दौरान मुझे कई शारीरिक कष्टों और बीमारियों ने घेरा। किन्तु इन सबसे भी मुश्किल था, उस संस्कृति से सामंजस्य बनाना जो उस संस्कृति से बिल्कुल अलग थी जिसमें मैं पला-बढ़ा।

मेरे ब्रितानवी पूर्वज भारतीयों को 'सभ्य' बनाने और ईसाई धर्म को फैलाने यहाँ आये। ब्रितानियों ने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित किया, इस पर राज किया और अंततः वापिस चले गए। अब मैं, जिसे भारतीय संस्कृति, विशेषकर गौड़ीय वैष्णवता (बंगालियों का धर्म) ने जीत लिया था, आया हूँ।[८]

---

८ यद्यपि इस लेख में बंगाल/बांग्लादेश और बंगाली/बांग्लादेशी शब्दों का उपयोग लगभग एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त हुआ है, किन्तु दोनों में अन्तर है। अब राजनैतिक दृष्टि से बंगाल दो भागों में बँट चुका है — बंगाल का पश्चिमी हिस्सा अब भारत की राज्य पश्चिमी बंगाल और पूर्वी हिस्सा अब स्वतंत्र राष्ट्र बांग्लादेश है। इसलिए कुछ अपवादों को छोड़कर सारे बांग्लादेशी बंगाली हैं किन्तु सारे बंगाली बांग्लादेशी नहीं हैं।

गौड़ीय वैष्णव, वैष्णव सम्प्रदाय का एक अंग है जिसकी स्थापना चैतन्य महाप्रभु ने की और अब यह पूरे विश्व में हरे कृष्ण आन्दोलन के रूप में फैल चुका है।

बांग्लादेश और पश्चिमी बंगाल में गौड़ीय वैष्णवों की सभ्याचार लगभग एक समान ही है।

चाहे मैंने कृष्णभावनामृत के नियमों और दर्शन को अपना लिया था फिर भी मेरा नज़रिया बहुत कुछ ब्रितानवी था। मैं अपनी संस्कृति को सर्वश्रेष्ठ मानता था और इस बात की परवाह नहीं करता था कि दूसरों की संस्कृति और आदर्श भी सही हो सकते हैं। यह समझने में मुझे कुछ वक्त लगा कि अपनी संस्कृति के प्रति मेरी राय केवल एक घमण्ड थी। तालमेल बिठाने में मुझे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। मुझे सही-गलत व्यवहार के बारे में अपनी धारणाओं का दोबारा विश्लेषण करना पड़ा। अंततः मैंने यह स्वीकार कर लिया कि बंगाली लोगों का व्यवहार और सोच केवल इसलिए हीन और गलत नहीं क्योंकि यह अलग है।

मैं बंगाल में प्रभाविष्णु स्वामी के मार्गदर्शन में प्रचार कर रहा था। बंगाली कवि माइकल मधुसूदन दत्त की पंक्तियाँ दोहराते हुए श्रील प्रभुपाद ने प्रभाविष्णु स्वामी को कहा कि उन्हें अंग्रेज़ों के साहस और बंगाली माता के हृदय के साथ बांग्लादेश में प्रचार करना चाहिए।[९] मैंने पाया कि बंगाली माता की भाँति बनना कठिन है। अंग्रेजी रूखेपन के सामने मुझे बंगाली बहुत अधिक भावुक, कामचोर और धोखेबाज़ लगते थे। जीवन के हर पहलु को प्रभावित करने वाले इतने सारे रीति-रिवाज मुझे अंधविश्वास लगते। मेरे अन्दर छिपा तर्कवादी इस घोर मूर्खता को देख बेचैन हो रहा था। तब तक मैं भी नहीं जानता था कि मैं तर्कवादी हूँ। धीरे-धीरे मैंने उनके तथाकथित दोषों को देखना बंद कर दिया और यह समझ पाया कि मैं कितनी महान संस्कृति में जी रहा हूँ। कई वर्षों तक बांग्लादेशियों के साथ रहने पर मैं इस बात की अनुभूति कर पाया कि उनकी दरिद्रता और सरलता कितनी समृद्धशाली है जो किसी भी प्रकार की आधुनिक सुविधाओं या विश्वविद्यालयों की डिग्रियों से प्राप्त नहीं की जा सकती।

जैसे ही मैंने बंगाली रीति-रिवाज़ों को और उनकी उपयोगिता को जाना, मैंने उन्हें पूरे मन से स्वीकार कर लिया। कृष्णभावनामृत आंदोलन पूरे विश्व में गौड़ीय वैष्णव संस्कृति का प्रचार कर रहा है। इस विचार से मुझे यह अनुभूति

किन्तु एक मुख्य अन्तर यह है कि गौड़ीय वैष्णव सभ्याचार बांग्लादेशी हिन्दुओं में प्रधान है जबकि पश्चिमी बंगाल में यह प्रसिद्ध है किन्तु प्रधान नहीं है।

९ श्रील प्रभुपाद के साथ वार्तालाप से, 10 अगस्त 1977

हुई कि मैं उन कुछ पश्चिमी भाग्यशाली भक्तों में से हूँ जिन्हें प्रत्यक्ष इसके बारे में सीखने को मिला।

मैंने कई तीर्थ-स्थलों की यात्रा की और कई सभ्य विद्वानों और साधुओं को मिला, किन्तु बांग्लादेश के हिन्दू मूल वैष्णव संस्कृति का पूरी गंभीरता से पालन कर रहे हैं। वे वैष्णव सदाचार को कर्म-काण्ड की तरह पालन न करके आनन्द और उत्साह से निभाते हैं। बंगालियों को अतिथि सत्कार और बड़ों को प्रणाम करने इत्यादि में प्रसन्नता होती है।[१०] दूसरों के प्रति निस्वार्थ स्नेह से भरा आनन्दमयी व्यवहार गौड़ीय वैष्णता का प्राण है। वास्तव में इसी सदाचार और स्वाभाविक प्रेम को कृष्ण को अर्पित करना जीवन की पूर्णता है।

बंगाल विशेषरूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि श्री चैतन्य महाप्रभु पाँच सौ वर्ष पूर्व यहाँ प्रकट हुए और हरे कृष्ण आंदोलन की स्थापना की। स्वभावत: उन्होंने स्थानीय भाषा में प्रचार किया तथा स्थानीय रीति-रिवाजों के अनुसार व्यवहार किया। इसलिये श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रचारित वैष्णव सिद्धान्त बंगाली संस्कृति का एक अटूट हिस्सा है। गौड़ीय वैष्णवों का अधिकतर साहित्य भी बंगाली में है। इसके अतिरिक्त लगभग सभी महान गौड़ीय वैष्णव आचायलम्बंगाल में प्रकट हुए। आज के युग के महान आचार्य और अन्तर्राष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के संस्थापकाचार्य कृष्ण कृपामूर्ति श्री श्रीमद् अभय चरणारविन्द भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद भी बंगाल में प्रकट हुए।

निश्चित ही सभी बांग्लादेशी उन्नत वैष्णव नहीं हैं: अधिकतर मुस्लिम हैं। फिर भी मुस्लिम संस्कृति भी गौड़ीय वैष्णव मत से काफी प्रभावित है। बंगाल में वैष्णव दर्शन सहजियों और दूसरे अप-सम्प्रदायों से बहुत प्रभावित है फिर भी मूल वैष्णव जीवनशैली अभी भी बची हुई है।[११] इसलिये बाकी उपमहाद्वीप

---

१० वैष्णव सदाचार में घुटनों के बल झुक कर और माथे को जमीन पर लगा कर या (और भी अधिक आदर देने के लिये) जमीन पर दण्डवत् लेट कर प्रणाम किया जाता है।

११ सहजियापन वैष्णवता में एक अप-सम्प्रदाय भी है और इससे मिलते जुलते छोटे-छोटे संघ भी हैं (सहज - आसान)। सहजियों के अनुसार आध्यात्मिक सिद्धि का रास्ता इतना सरल है कि कठोर शास्त्रीय नियमों की आवश्यकता नहीं है। सहजियापन में गोपनीय भावों का

में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत संस्कृति बची है, मैं उसकी प्रशंसा करता हूँ लेकिन मेरा निर्णय है कि पारम्परिक वैष्णव सदाचार का साक्षात् अनुभव करने के लिये बांग्लादेश सबसे अच्छा स्थान है।

फिर भी बांग्लादेश में रहना कठिन है इसलिये मैने वहाँ से जाने का फैसला किया। लेकिन मुझे पता है कि मैने बंगाल में रहकर जीवन, लोगों और संस्कृति के बारे में कितना कुछ सीखा। बांग्लादेश में रहने से जीवन के प्रति मेरे नज़रिये में उतना ही बदलाव आया जितना शुरु में कृष्णभावनामृत में आने पर आया था। बांग्लादेश में मेरे अनुभव ने मेरी चेतना को एक नए स्तर पर ला खड़ा किया जहाँ मैं समझ पाया कि कृष्णभावनामृत एक दर्शन, विश्वास या धर्म न होकर एक पूर्ण जीवनशैली है।

गाँव में विदेशी

जब हम पहली बार बांग्लादेश गए तब हिन्दू इस प्रचार से प्रभावित थे कि हिन्दू धर्म समाप्त होने की कगार पर है और पूरा विश्व मुस्लिम बनता जा रहा है। बंगाली स्वभावतः उदार हृदय, बर्हिमुख और हंसमुख होते हैं। अतः बांग्लादेश में जहाँ कहीं भी हमारे विदेशी भक्त जाते, स्थानीय हिन्दू इन विदेशी वैष्णवों का उत्साहपूर्वक स्वागत करते।

अक्सर पूरा गाँव ही कीर्तन, शोभायात्रा और फूलों की बौछार के साथ हमारा स्वागत करने आ जाता। वे हमारे माथे पर चन्दन लगाते —सम्माननीय व्यक्ति को आदर प्रकट करने के लिए — फूल माला पहनाते और हमारे पैरों तथा सिर पर फूल बरसाते। औरतें जीभ को तालू के साथ लगा कर उलू लू की ऊँची आवाजें निकालतीं, जिसे मंगलकारी माना जाता है।

लोग हमारे पाँव छूने के अवसर में रहते और हमारी चरण-रज लेकर अपने सिर पर तथा जीभ पर रखते। हम कई बार अपने आप को उन्मत्त लोगों के बीच

प्रदर्शन और आधारभूत आध्यात्मिक सत्यों को गलत ढंग से प्रस्तुत किया जाता है। उदाहरण के लिये शास्त्रीय आदेश है कि गुरु की सेवा करनी चाहिए। सहजियों ने इसका गलत इस्तेमाल किया और केवल जन्म के आधार पर गुरु के पद का दावा किया और दूसरों की कीमत पर आरामदायक जीवन व्यतीत किया।

पाते जो हमारे पास आना चाहते। जब गाँव का प्रत्येक व्यक्ति स्त्री, पुरुष और बच्चे हमारे पैर छू लेते, तो हमारे पैर धोए जाते। यह लज्जाजनक होता क्योंकि हम स्वयं अभी-अभी माया से आए थे। निश्चित रूप से हम ऐसी पूजा के अयोग्य थे किन्तु इसे मना करने का कोई रास्ता ही नहीं होता था। गाँव के सरल लोग न केवल हमें देखने के लिए अपितु हमारी आवभगत करने के लिये लालायित रहते। वे सोचते थे कि हम विदेशों का वैभव त्याग कर उन्हें उनकी संस्कृति और धर्म के प्रति जागरुक बनाने आए हैं इसलिए ये बहुत ही उच्च जीव हैं। वे हमसे कहते कि उनके घर, गाँव और जीवन हमारी उपस्थिति से पवित्र हो गए।

हम शाम को वहाँ एक कार्यक्रम रखते जिसमें लम्बे समय तक कीर्तन किया जाता या फिल्म अथवा नाटक दिखाया जाता। स्थानीय लोग उत्साह से हमें बांस या लकड़ी से मंच बनाने में सहायता करते, जहाँ से हम उन्हें अंग्रेजी, जर्मन, फ्रांसीसी और स्पेनिश भाषा में भगवद्गीता ऊपर उठा कर दिखाते। जब हम उन्हें 30 से भी अधिक भाषाओं में भगवद्गीता दिखाते जाते, वे हैरानी से आपस में दबे स्वर में बात करते। अंत में हम उन्हें अरबी में गीता दिखाते जिससे उनमें कोलाहल मच जाता क्योंकि बांग्लादेश में मुस्लिमों की प्रधानता है। कार्यक्रम के बाद कई लोग अरबी भाषा में गीता निकट से देखना चाहते ताकि उन्हें विश्वास हो जाए कि यह सच है।

प्रत्येक रात्रि को हम संसार भर में इस्कॉन की गतिविधियों की फिल्म दिखाते, और जब भी बड़ी सी घी की कढ़ाई में पूरी तलने का दृश्य आता, तो लोग लम्बी साँस लेते और फुसफुसाते। घी विलासिता का चिह्न है, और वे यह सोच भी नहीं सकते कि कई टन घी तलने के लिए है।

कार्यक्रम अक्सर देरी से ही शुरु होता और लगभग सारी रात चलता। बांग्लादेश में समय पर काम शुरु करने जैसी कोई चीज़ नहीं है। जब हम पूछते कि कार्यक्रम कब शुरु करें तो हमसे कहा जाता, ''शाम को'' या ''जब सब आ जाएँ।'' बंगाल में कार्यक्रम शुरु करने का समय है जब हर कोई आ जाए और आराम से बैठ जाए। हम कितना ही कार्यक्रम शुरु करने का समय निश्चित करने का प्रयत्न करते, फिर भी यह तब शुरु होता जब हर कोई आ जाता। और सबके

इकट्ठे होने पर भी किसी को जाने की जल्दी नहीं होती थी। यदि कुछ धार्मिक या मनोरंजक चल रहा होता तो वे सारी रात भी बैठने को तैयार होते।

लोगों को एक दूसरे से सुन कर हमारे कार्यक्रम का पता चल जाता। गाँव-गाँव हमारे आने का समाचार पहुँच जाता और लोग धीरे-धीरे अपना काम खत्म करके आते। हर रोज सैकड़ों लोग होते। पहले से प्रबन्ध किए हुए कार्यक्रम में हजारों लोग होते जो बीस-बीस किलोमीटर चल कर आते। इस प्रकार के विशेष कार्यक्रमों के लिए महिलाएँ अपनी सर्वोत्तम साड़ियाँ पहनती और थोड़ा बहुत शृंगार करती — किन्तु कोई फिज़ूलखर्ची नहीं होती थी। गाँव के साधारण लोग होने के नाते वे अपनी आय के अनुसार कपड़े पहनते।

गाँव के प्रतिष्ठित लोग एक एक करके कृष्णभावनामृत को पूरे विश्व में फैलाने की प्रशंसा करते। हमारे बार- बार मना करने के बावजूद वे हमारा गुणगान करते जाते। मेरे बार-बार मना करने पर भी ढाका विश्वविद्यालय का एक छात्र मेरा परिचय करवाते समय कहता कि मैंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय से डबल पी.एच.डी की हुई है जबकि मैं कभी विश्वविद्यालय ही नहीं गया। स्थानीय वक्ता हमें परमहंस, महाभागवत इत्यादि नामों से सम्बोधित करते।[१२] कई बार वे थोड़ा बहुत तत्व ज्ञान की चर्चा भी करते, जो कई बार अच्छा होता क्योंकि बांग्लादेश में अधिकांश हिन्दुओं को कम से कम गौड़ीय वैष्णव मत का प्राथमिक ज्ञान है जैसे — चैतन्य महाप्रभु हरिनाम द्वारा कलियुग के पतितों का उद्धार करने हेतु आए। पर कई बार वे इसमें अपनी मनोकल्पनाएँ मिलाकर खराब कर देते।

कई बांग्लादेशी हिन्दुओं के लिए विदेशी साधुओं को अपने शान्त घरों में देखना एक अदभुत स्मृति होती जो उनके जीवन में पहली बार हुआ। कोई भी विदेशी उनके गाँव में पहले कभी नहीं आया, किन्तु अब उनके यहाँ विदेशी आ गये हैं जो कृष्ण-भक्त हैं! हम विदेशी उनका धर्म अपना रहे थे और हरे कृष्ण का जप कर रहे थे, उनकी वेशभूषा धोती पहन कर, उनके यहाँ का भोजन, दाल चावल उनके साथ उन्हीं की भाँति नीचे बैठकर हाथों से खा रहे थे।

---

१२ परमहंस और महा-भागवत उपाधियाँ अत्यंत उन्नत भक्तों के लिए प्रयोग की जाती हैं।

सुबह कई लोग अकेले बात करने के लिए तत्पर रहते। वे यह देखकर मंत्रमुग्ध हो जाते कि हम किस प्रकार तिलक लगाते, आरती करते, माला पर जप करते और प्रवचनों में संस्कृत और बंगाली शास्त्रों से प्रमाण देते।[१३] हम उनके साथ बंगाली में बात करते, उन्हें अपनी परम्परा को बचाए रखने के लिए प्रोत्साहित करते और उन्हें भरोसा दिलाते कि वैष्णव संस्कृति पश्चिम की चकाचौंध करने वाली मूर्खतापूर्ण समृद्धि से बेहतर है। हमारे मेजबान बिना हिचकिचाए अपने भावों को बताते कि वे हमसे बहुत प्रसन्न हैं।

वे लोग जो बिल्कुल सादा भोजन खाते और अधिक धन खर्च नहीं कर सकते, फिर भी अपनी सामर्थ्य से बढ़कर हमारे लिए विशेष प्रसाद बनाते और प्रेमपूर्वक हमें खिलाते। वे घर में बने देसी घी की छोटी सी बोतल लेकर आते (उनका सारा जमा किया हुआ देसी घी) और उसे चावलों पर उड़ेल कर पहले से ही स्वादिष्ट व्यंजनों का स्वाद और बढ़ा देते।

तब मैं समझ पाया कि श्रील प्रभुपाद का 'बंगाली माता' कहने का क्या तात्पर्य था। वृद्ध महिलाएँ हमें और अधिक खाने के लिए बार-बार आग्रह करतीं — हमारे सामर्थ्य से भी परे। वे कहतीं *गला प्रजन्तो* अर्थात 'गले तक खाओ'। वे बार-बार हमारी थालियाँ भरती रहतीं ताकि हमारी थाली में इतना उच्छिष्ट भर जाए कि उसे गाँव के उत्सुक लोगों में बाँटा जा सके।

कई बार हमारे मेजबानों का उत्साह इतना बढ़ जाता कि वे सब हमें खिलाना चाहते और वे चाहते कि हम उनके घर आएँ, उन्हें आशीर्वाद दें और आशा करते कि हम उन सबके साथ एक-एक करके बात करें। अपितु वे इस पर बहुत ही बल देते जिससे हम पर और हमारी पाचन-शक्ति पर बोझ पड़ जाता। पर वह सब उन सब लोगों के स्वाभाविक आनन्द और सुन्दर कीर्तन से समाप्त हो जाता। जहाँ कहीं भी हम जाते यह आनन्दमय भाव बना रहता। हमें यह झलक मिल रही थी कि यदि पूरा विश्व कृष्णभावनाभावित होता तो कैसा होता।

---

१३ इस पूरी पुस्तक में ग्रन्थ शब्द शास्त्र के लिये प्रयोग किया गया है जिसकी अर्थ है मूल वैदिक ग्रन्थ तथा उन पर आधारित बाद में लिखे गये ग्रन्थ हैं जिनमें वैदिक शिक्षाओं की ही अनुमोदन किया गया है।

पूर्वी और पश्चिमी बंगाल

बंगाल पारम्परिक रूप से पूर्वी और पश्चिमी भागों में विभक्तहै। यह आंशिक रूप से इसलिए भी है क्योंकि पूर्वी बंगाल कई नदियों और पहले जंगलों की भरमार के कारण अलग-थलग और अनछुआ रहा। श्री चैतन्य चरितामृत में पूर्वी बंगाल को बंग और पश्चिमी बंगाल को गौड़ कहा गया है। पूर्वी बंगाल अब बांग्लादेश है और बंगाल का पश्चिमी हिस्सा अब भारत का राज्य, पश्चिमी बंगाल है।

यद्यपि पूर्वी और पश्चिमी बंगाल की एक ही भाषा तथा संस्कृति है फिर भी उनमें अन्तर है। यह अन्तर बंगाल विभाजन पर हुआ जिसकी मांग मुस्लिम जनता ने इसलिए की क्योंकि उनकी आबादी अधिक थी। लेकिन सन 1947 में भारत के विभाजन के समय पूर्वी बंगाल में मुसलमानों की जनसंख्या हिन्दुओं से बहुत ज्यादा नहीं थी। तब से लगातार पूर्वी बंगाल से भारत में प्रवासियों के आने पर भी बांग्लादेश में हिन्दुओं की आबादी भारत को छोड़कर अन्य देशों के मुकाबले बहुत बड़ी है।

ऐतिहासिक रूप से पश्चिमी बंगाल का शाक्त-मत (दूर्गा-पूजा) की ओर अधिक झुकाव है जबकि बांग्लादेश में लगभग सभी हिन्दू श्री चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन आन्दोलन — गौर-निताई और राधा-कृष्ण की पूजा मृंदग-करताल के साथ करने वाले वैष्णव मत को मानते हैं। पारम्परिक तौर पर पश्चिम बंगाल उन्नत संस्कृति के लिये, जबकि पूर्वी बंगाल ग्रामीण संस्कृति के लिये जाना जाता है। पूर्वी बंगाल की राजधानी ढाका को उच्च संस्कृति के रूप में जाना जाता था, फिर भी इसका अधिकतर भाग देहाती है। चैतन्य भागवत में वर्णन आता है कि चैतन्य महाप्रभु अपनी युवावस्था में अपने मित्रों के संग पूर्वी बंगालियों के उच्चारण का मजाक उड़ाते और उनकी नकल करके बताते थे। आज भी पश्चिम बंगाली, पूर्वी बंगालियों को हीन दृष्टि से देखते हैं मानो वे अनपढ़ और बेढंगे हों।

कुल मिलाकर बांग्लादेशी पश्चिमी बंगाल के लोगों से अधिक आदर देने वाले, आतिथ्यपूर्ण, मैत्री भाव से संपन्न और प्रसन्न हैं। सीमा-रेखा पार करते ही आप इसका अनुभव कर सकते हैं। औद्योगिकीकरण, शहरीकरण और साथ ही

नास्तिक विचारों ने पश्चिम बंगालियों के स्वभाव में बहुत ही बदलाव ला दिया है और उनकी उन्नत संस्कृति को तहस-नहस कर दिया है। किन्तु बांग्लादेश में आज भी पारम्परिक जीवनशैली है। इसे अभी भी पाश्चात्य देशों के उद्योगों और जन संचार माध्यमों द्वारा आरम्भ किए वैश्विक संस्कृति ने निगला नहीं है।

जलवायु और ऋतुएँ

कठिन जलवायु बंगाल के जीवन की स्वाभाविक विशेषता है। वर्ष छः ऋतुओं में बाँटा गया है और आशा की जाती है कि दो महीने चलने वाली प्रत्येक ऋतु समय पर आरंभ होगी। अदभुत बात यह है कि मौसम नियमित रूप से लगभग संवत (चन्द्रमास) महीनों के अनुसार ही बदलता है। इसी कारण से बंगाली पंचांग (कैलेण्डर) का आज भी विस्तृत रूप से उपयोग होता है। इसके महीनों का आरम्भ तथा अंत अंग्रेजी महीनों के बीच में होता है। अंग्रेजी तथा मुस्लिम पचांग का भी उपयोग किया जाता है, किन्तु बंगाली पंचांग किसानों के लिए सबसे ज्यादा उपयोगी है। इसके महीनों को चन्द्रमास, चन्द्र के घटने (कृष्ण पक्ष) और बढ़ने के (शुक्ल पक्ष) अनुसार, दो पक्षों में बांटा गया है। उपयोगिता के कारण, गाँव के लोग इन पक्षों से भलीभाँति परिचित होते हैं।

चन्द्रोदय की हर रात के साथ, खेत-खलिहान धीरे-धीरे इसकी कोमल चांदनी से नहाते प्रतीत होते हैं। पूर्णमासी की रात खेत इतने स्पष्ट दिखाई देते हैं कि घरेलू नौकाएँ पानी की छोटी धाराओं में बिना किसी लालटेन के चलाई जा सकती हैं। किन्तु जैसे ही चन्द्रमा घटने लगता है रातें स्याह काली होकर तारों की विलक्षण सृष्टि को इस प्रकार प्रकट करती हैं मानो यह ईश्वर की महानता को दर्शाते हों। मानसून की रातों में हवाओं के बीच चन्द्रमा बादलों के बीच लुका छुपी करते हुए नृत्य करता प्रतीत होता है। किन्तु अमावस्या के दिन जब बादल घने होते हैं, तो काला स्याह रंग इतना गहरा हो जाता है कि अपना हाथ भी मुश्किल से दिखाई देता है।

प्रत्येक ऋतु का अपना ही स्वभाव तथा गंध है। गर्मी और वर्षा ऋतु में अपने आप को बचा पाने पर ही ऐसा लगता है कि कोई उपलब्धि प्राप्त कर ली है। जबकि सुहावनी सर्दियाँ संतुष्टि की भावना लाती हैं।

ऋतुएँ अचानक बदल जाती हैं। कई बार दिन गर्म किन्तु रात सुहावनी ठण्डी होती है तो दूसरे ही दिन असहनीय गर्म दिन तथा बेचैन कर देने वाली रात होती है। वर्षा जून के मध्य तक शुरु होकर चार महीनों तक चलती रहती है। वर्षा के रुकने पर राहत तो मिलती है किन्तु फिर से थका देने वाली उमस के साथ गर्मी बढ़ जाती है। उस समय पूरा देहात असाधारण रूप से मनोहर और हरा-भरा दिखता है।

मानसून का अंत शरद ऋतु के आरम्भ के साथ हो जाता है और यह ऋतु अक्तूबर के मध्य तक रहती है। इसके पश्चात् हेमन्त ऋतु (ओस की बूंदों वाली) आती है जो दिसम्बर के मध्य तक रहती है। यह समय सुहावना होता है जिसकी रातें बहुत ठण्डी और दिन गर्माहट वाले होते हैं। इस समय दिन का तापमान 30 डिग्री सैल्सियस तक ही रहता है। फल- सब्जियाँ बहुतायत में मिलते हैं। सुबह के समय कभी कभार धुँध या हल्की सी बारिश होती है। शरद ऋतु के आगमन के साथ दिन सुहावने और रातें ठंडी होती हैं। चाहे यह साइबेरिया जैसी ठंडी नहीं होतीं किन्तु रात होते ही ठण्ड से बचने के लिए लोग जल्दी सो जाते हैं।

फरवरी के मध्य तक दिन पुन: गर्म होने शुरु हो जाते है और थकान भरी गर्मी का एहसास शुरु हो जाता है। इस समय कुछ महीनों तक ज्यादा वर्षा नहीं होती, इसलिए भूमि सूखी और धूल भरी हो जाती है। जैसे-जैसे बसन्त बीतती जाती है यह गर्म होती जाती है और जब मध्य अप्रैल में गर्मियाँ आती हैं तो यहाँ इतनी गर्मी हो जाती है कि कुछ भी करना मुश्किल हो जाता है।

गर्मियों के दिनों में दोपहर के समय हर चीज रुक जाती है। कस्बों में दुकानें बंद हो जाती हैं और गलियाँ सुनसान हो जाती हैं। हर कोई अन्दर चला जाता है और दरवाजे बंद कर लेता है ताकि गर्म हवा अन्दर न आए। लोग तब तक आराम करते हैं जब तक भंयकर गर्मी का प्रकोप कुछ कम न हो जाए। पशु आराम करने के लिए पानी के पास कुछ छायादार जगह ढूँढते रहते हैं, और गर्मी कम होने का इंतजार करते हैं। मधुमक्खियाँ अपने छत्ते से बाहर आ कर घण्टों छाया के नीचे बैठ कर अपने पंखों से अपने आप को ही हवा करती हैं। पंछी पेड़ों पर बिना चहचहाए बैठे रहते हैं कि किसी तरह से जिन्दा रह पाएँ। कोई

भी आवाज सुनाई नहीं देती। सब कुछ मानो रुक सा गया हो। यहाँ तक की पत्ते भी नहीं सरसराते। शाम होने से कुछ देर पहले ही थोड़ा सा तापमान कम होता है और जीवन लौट आता है।

चाहे रातें इतनी कठोर नहीं होती किन्तु कई बार गर्मी के कारण सोना मुश्किल हो जाता है। गाँव में यदि कोई नाट्य या कीर्तन नहीं होता तो लोग बाहर चटाई पर लेटे लेटे हाथ के पंखे से हवा देते हुए देर रात तब तक बातें करते रहते हैं जब तक नींद आने जितनी ठण्डक न हो जाती। कई बार हम अपने आप को ठण्डा करने के लिए नदी या तालाब में डुबकी लगाते। दिन में नहाने से इतनी ठण्डक नहीं मिलती थी क्योंकि पोंछने के तुरन्त बाद ही हम पसीने से दोबारा भीग जाते।

अक्सर कई बार गर्मी से तब राहत मिलती जब लम्बे शुष्क दिन के बाद *बोइशाकी झार* अर्थात् वैशाख की आंधी आती।[१४] तेज हवाओं के बाद भारी वर्षा से निष्ठुर गर्मी से राहत मिल जाती। आंधी दस मिनट ही चलती, किन्तु यह बहुत ही भयावह हो सकती है। केले के वृक्ष गिर जाते हैं और जो कुछ भी बाहर पड़ा होता वह सब हवा में उड़ जाता है।

एक बार वैशाख के दिन जब मैं किसी के यहाँ बरामदे में बैठा था तो दूर से हल्की सी बिजली की गड़गड़हाट सुनाई दी। घर के सबसे बुजुर्ग ने कहा, ''उसने कहा, 'मैं अभी आ रहा हूँ।''' तुरन्त घर के सभी सदस्य जल्दी से हर चीज हटाने लग गए। वहाँ धूप में हवा लगवाने के लिए चादरें, गद्दे और सुखाने के लिए दाल बोरि पड़ी थी।[१५] हर चीज शांत थी और आसमान बिल्कुल नीला था। किन्तु 'उसने कहा, मैं आता हूँ' और पन्द्रह मिनटों में आसमान काला हो गया और बिजली कड़कने के साथ ही बारिश की बौछारें शुरू हो गई।

किन्तु वैशाख के बाद गर्मी का एक और महीना आता है जिसमें गर्मी से कोई भी राहत नहीं मिलती; जैसे ही सूर्य चमकता है, यह आग उगलने लगता है।

---

१४ बोइशाकी – बैसाख महीने की अर्थात् गर्मियों के दो महीनों में से एक; झार – तूफान।

१५ एक प्रकार का पकवान।

जब न तो बारिश होती है और न ही ट्यूबवैल से खेतों में पानी दिया जा सकता है, पीने का पानी मिलना भी मुश्किल हो जाता है, जिससे मनुष्यों और जानवरों में कई रोग फैल जाते हैं। फसलें बर्बाद होने से हालात और भी खराब हो जाते हैं। अक्सर सूखा पड़ने के बाद बाढ़ आती है जिससे तकलीफें और भी बढ़ जाती हैं।

एक बार मुझे हरिनाम कीर्तन दल के साथ किसी गाँव में जाने का न्यौता मिला। यह दिन विशेष रूप से गर्म और लम्बा था, मानसून में देरी थी और सारे जीव त्रस्त थे। हम पूरी सुबह घर-घर जाकर बच्चों के साथ कीर्तन करते रहे। हर घर में लोग अपने आँगन में कीमती पानी की बाल्टी उड़ेल देते और बालक इस प्रकार पानी गिराने से बनी कीचड़ में लोटपोट होते। मुझे यह बहुत ही अजीब लगा (कुछ भी हो वहाँ और भी कई अजीब चीजें थीं)। कई वर्षों बाद मुझे मालूम हुआ कि पारम्परिक रूप से एक विशेष प्रकार का हरिनाम वर्षा बुलाने के लिए किया जाता है।

जैसे जैसे गर्मी बढ़ती जाती है, पूरी धरती दोपहर को रात में बदल देने वाले गहरे मानसून के बादलों की राह देखती है। तब तूफान आते हैं। जब आँधी आती है और अंधेरा छा जाता है तो बीच बीच में चमकती बिजली में हर वस्तु जगमगा उठती है। बादल गड़गड़ाते और गरजते, बारिश की कुछ बूँदे गिरती और थोड़ी ही देर में तेज वर्षा शुरू हो जाती। मानसून में सिर्फ बूंदाबांदी नहीं होती बल्कि रिमझिम बारिश होती और सब जगह आनन्दमय वातावरण हो जाता है।

बारिश के धावा बोलते ही अचानक सूखी हुई धरती फिर से हरी-भरी हो जाती। गायें जगह-जगह उगी नई ताजी घास का आनन्द लेतीं। मेंढक भी उत्साहित हो जाते; रात को ऐसा लगता मानो हजारों मेंढक टर्रा रहे हों और वे सोने भी नहीं देते।

किन्तु वर्षा को अधिक समय तक पसंद नहीं किया जाता क्योंकि ये गर्मियों से भी कठिन हो सकती है। कई बार यह कई दिन तक लगातार बरसती रहती है। हर चीज चिपचिपी और गीली हो जाती है। कपड़े ढंग से नहीं सूखते और घरों में सड़ांध की बदबू आने लगती है। सूखी धरती जिसमें दरारें पड़ चुकी

थीं अब कई जगहों पर बुरी तरह से फिसलन भरी बन जाती है और कई जगहों पर बदबू से भरी इतनी कीचड़ हो जाती है कि यदि कोई उसमें पैर रखे तो उसी में फँस जाता है। मानसून में स्वास्थ्य खराब होने का खतरा बना रहता है।

घनी उमस वाला वातावरण, लगातार बारिश और तापमान में बार-बार बदलाव से पाचन और पेट में गड़बड़ी हो जाती है। पीने का गन्दा पानी भी अक्सर परेशानी पैदा कर देता है, क्योंकि कीचड़ और सीवरेज को नदियों और तालाबों में मिलने से रोकना असंभव हो जाता है। मच्छरों की आबादी बुरी तरह से बढ़ जाती है। वे निरन्तर काटते और तंग करते हैं और कई बार वे भिनभिनाते हुए बादल सा बना लेते हैं। कई इलाकों में मलेरिया महामारी का रूप ले लेती है। मानसून में त्वचा पर दाद-खाज के निशान पड़ जाते हैं। गर्मी, उमस और पसीने से हर कोई खुझली कर रहा होता है। विशेष रूप से बच्चे फोड़े फुन्सियों के शिकार होते हैं। कुल मिलाकर यह मौसम बहुत ही दु:खदायी होता है। फिर भी बांग्लादेशी इसे सहन करते हैं; वे और कर भी क्या सकते हैं ? तब भी मानसून में अच्छाइयाँ भी हैं। घर में बैठकर बाहर तूफान देखना बहुत ही अच्छा लगता है। यहाँ तक कि कई पारम्परिक राग भी हैं जो विशेष रूप से वर्षा ऋतु के मौसम की प्रशंसा करते हैं।

कई तेज तूफान बंगाल की खाड़ी, बांग्लादेश, पश्चिम बंगाल और उड़ीसा में शुरू होते हैं और इनमें से अधिकतर भयंकर रूप धारण कर लेते हैं। बांग्लादेश खासतौर पर इनका शिकार बनता है। बवण्डर साल में किसी भी समय आ सकते हैं, यद्यपि ये अक्सर वर्षा ऋतु के समय पनपते हैं। कई हजारों लोगों का इन तूफानों में मर जाना एक आम बात है। पिछले दो सौ सालों में हर साल कम से कम एक बवण्डर जरूर आता है, जिनमें लाखों लोग और अनगिनत पशु मर गए तथा फसलें, असंख्य घर तथा इमारतें बर्बाद हो गईं।[१६]

---

१६ हाल ही के इतिहास में नवंबर 1970 और दिसंबर 1971 में दो विनाशकारी तूफान आए थे जिनमें क्रमश: 500,000 और 140,000 लोगों के मारे जाने का अंदेशा था। बाद वाले तूफान में देश का लगभग 80 प्रतिशत पशुधन नष्ट हो गया था। इन विपदाओं की प्रकृति के कारण इन अनुमानों को सटीक नहीं माना जा सकता। निस्संदेह इन तूफानों का सामना करने वाले लोगों को अंदेशा है कि सरकारी आंकड़ों को कम करके बताया गया है।

नदियाँ और बाढ़ें

बांग्लादेश का अधिकांश भाग गंगा नदी के मुहाने पर बना है जहाँ तेज नदी की धाराएँ कई भागों तथा छोटी धाराओं में बँट जाती हैं। यहाँ गंगा को पद्मा नदी के नाम से जाना जाता है और यह ब्रह्मपुत्र तथा अन्य तेज नदियों से मिलकर बंगाल की खाड़ी की ओर से समतल भूमि से होते हुए तेजी से बढ़ती है। यहाँ धीरे-धीरे कई पुल बन चुके हैं फिर भी कई नावें हैं जो नदियों और सड़कों को मिलाती हैं। नदियाँ भी सड़कों का काम करती हैं, यहाँ उतने ही जलमार्ग हैं जितनी की सड़कें। लोग नदियों और जल-धाराओं के बीच तीन, पाँच और बारह यहाँ तक कि चौबीस घंटे की भी यात्रा करते हैं। जब वे मुख्य घाट पर आते हैं तो वे अपने गाँव के लिए छोटी नौका ले लेते हैं या पैदल चले जाते हैं।

बांग्लादेश उपमहाद्वीप के राजस्थान जैसे सूखे इलाके से बिल्कुल अलग है। चाहे बंगाल गर्मियों में शुष्क और धूल भरा होता है फिर भी अधिकांश भाग हरा भरा रहता है। लगभग सारा इलाका समुद्री सतह से थोड़ा ही ऊपर है और बिल्कुल सपाट है। वर्षा ऋतु के समय सभी बड़ी नदियों में उफान आ जाता है और ये हिमालय से उत्तर और उत्तर-पूर्व से बढ़ती हुईं बांग्लादेश से होती हुईं सागर में जा गिरती हैं। इस प्रकार नदियों का तांडव जो बांग्लादेश में प्रचुर वर्षा से दुगना हो जाता है, हर साल देश में भयंकर बाढ़ को न्यौता देता है और लगभग सारा क्षेत्र ही जलमग्न हो जाता है।

वर्षा ऋतु में बांग्लादेश के ऊपर से उड़ान भरने पर पूरा देश एक बड़ी झील की तरह प्रतीत होता है, जिसमें पेड़ों और गाँवों के झुरमुट इधर-उधर बिखरे दिखाई पड़ते हैं। गाँव, ऊँची भूमि पर बनाए जाते हैं। यदि कोई भी ऊँची भूमि न हो तो गाँव वाले मिलकर भूमि को ऊँचा बनाकर घर बनाते हैं। इसका एक अन्य किन्तु कम प्रचलित ढंग है कि घर बाँस या लकड़ी के मचान पर बनाए जाते हैं। किन्तु ऐसे कमजोर ढांचे तेज धाराओं के सामने टिक नहीं पाते। गाँव, कस्बों और खेतों को बचाने के लिए नदियों के किनारे कीचड़ से तट बांधे जाते हैं। ये कुछ रक्षा जरूर करते हैं किन्तु प्रकृति के प्रकोप को मानवीय प्रयास नियंत्रित नहीं कर सकते। किन्तु जब नदियों का उफान अपने किनारों को तोड़

देता है तो फसलें और घर, यहाँ तक कि कई बार बड़े-बड़े कस्बे भी तबाह हो सकते हैं।

एक बार मैं मानसून के दौरान बांग्लादेश के उत्तरी-पूर्वी जिले सिल्हट में यात्रा कर रहा था। बांग्लादेश में सिल्हट में सबसे कठोर जलवायु रहती है — गर्मियों में बहुत गर्मी तो सर्दियों में बहुत सर्दी और बारिशों में बहुत नमी। धूल भरे रास्ते दलदल बन जाते हैं जिससे वहाँ से गुजरना असंभव हो जाता है, इसलिये हम नाव द्वारा सचना जा रहे थे। यह कस्बा समुद्र के बीच टापू की तरह है जिसके चारों ओर जहाँ तक भी आपकी नजर जाती है पानी में डूबे खेत ही खेत हैं। बड़ी-बड़ी लहरें कस्बे के किनारों को इस प्रकार धो डालती हैं कि मानो अभी निगल जाएँगी। भयंकर बारिश अभी भी हो रही थी। उस दिन हमने जगन्नाथ, बलदेव और सुभद्रा के अर्चा-विग्रहों के समक्ष मन्दिर में कीर्तन किया। हम अपने साथ ग्रंथों का एक बड़ा बक्सा लेकर आए थे और लगातार बारिश में इसे किसी तरह गीला होने से बचा रहे थे। एक-एक कर बारिश का सामना करते हुए लोग साधुओं का दर्शन करने के लिये इकट्ठे हो गये। दिन के अंत तक हमने सारी पुस्तकें बाँट दीं।

बारिश के मौसम में नई नदी की धाराएँ बन जाती हैं। कई बरसाती नदियाँ इतना विशाल रूप धारण कर लेती हैं कि इसमें नियमित रूप से नौका चलाई जा सके, जबकि सड़कें कीचड़ भरी दलदल बन जाती हैं। कई मौसमी नदियाँ जो मोटरबोट के लिए छोटी होती हैं उन्हें चप्पू वाली नाव से पार किया जाता है। यदि धाराएँ इतनी संकीर्ण हों कि इसमें नौका भी नहीं चल सकती तो, नाविक अपनी नौका को बाँस के डण्डे को उथले पानी में डाल कर चलाता है।

इसी प्रकार की एक मानसून धारा में यात्रा करते हुए मुझे और मेरे साथियों को धाराएँ बहा कर कई किलोमीटर दूर जंगल में ले गई। हमें चिलचिलाती धूप में केवल पत्तों से बनी छाँव का ही सहारा था जिसमें से कई प्रकाश की तेज किरणें चमक रही थीं। जब नाविक नदी के कई मोड़ों से जूझ रहा था और हम नीचे की ओर झुके पेड़ों की टहनियों और पत्तों को हटा रहे थे।

नौका से यात्रा करना एक मनमोहक दृश्य होता है विशेषकर जब वर्षा के बाद चारों ओर घनी हरियाली छा जाती है, आसमान साफ हो जाता है और ऊँची नदियों से आकर्षक दृश्य दिखाई देता है। बड़ी नदियों में कई प्रकार की नौकाएँ देखने को मिलती हैं — छोटी नौकाएँ, नौकाएँ जिनके बड़े फटे हुए पाल होते हैं किन्तु फिर भी वे सुन्दरता से तैर रही थीं, छोटी मोटरबोट और कभी कभी बड़ी स्टीमर (भाप से चलने वाली) नौकाएँ देखने को मिलती है।

छोटी नौकाएँ यात्रियों को धूप और वर्षा से बचाने के लिए अक्सर उल्टे आधे गोले जैसे बेंत आदि से ढकी, किन्तु दोनों सिरों से खुली होती हैं। जब नाविक अपना काम खत्म कर लेता है तो वे भी इनमें आराम कर सकते हैं।

वे अधिक भाग्यशाली नहीं होते जिन्हें पाल वाली नौकाएँ खेनी पड़ती हैं और हवाएँ भी साथ नहीं देती। ताकतवर व्यक्ति किनारे पर नौका से लगी लम्बी रस्सी खींचते हैं। तपते सूरज में आगे की ओर झुकते हुए, उनकी आँखें अपने रास्ते पर गढ़ी होती हैं, तन काला तथा पसीने से सना हुआ और लम्बी साँसे लेते हुए वे नौका को आगे धकेलते हैं।

बंगाल में संसाधन सीमित और लोग अधिक हैं इसलिए इसका भीड़ भरा होना तथा सुविधाओं का अत्यधिक उपयोग आम बात है। जैसा कि बस तथा ट्रक, यात्री और समान ढोने वाली नौकाएँ अक्सर खचाखच भरी होती हैं। कई बार तो नौका में इतना अधिक सामान लदा होता है कि नौका सामान के बोझ से पानी में इतनी डूब जाती है कि दिखाई भी नहीं देती। यह विशेषकर जूट की रस्सियों के गट्ठर लादने से होता है जो नौका से काफी बड़े होते हैं। इसमें हैरानी नहीं है कि अधिक लदे होने से दुर्घटनाएँ हो जाती हैं। विशेषकर वर्षा के मौसम में शायद ही कोई ऐसा दिन बीतता हो जिस दिन पानी ने कोई जिन्दगी न लील ली हो; यह भी आम बात है कि सैकड़ों लोग इन दुर्घटनाओं में मारे गए।

मैं एक बार नदी में वर्षा ऋतु में यात्रा कर रहा था। चलने से पहले नौका मजबूत प्रतीत हो रही थी, किन्तु विशाल और तूफानी नदी के बीच में, और तेज मूसलाधार बारिश में यह छोटी और कमजोर लगने लगी। जैसे ही तूफान और

गहरा गया तो नाविक इस पर अपना नियंत्रण खोने लगे। तब कप्तान नौका को उस किनारे की ओर ले गया जहाँ नदी का बहाव कम था और लंगर डाल दिया। एक सज्जन जिनकी दाढ़ी मुसलमानों की भाँति थी, ने अपने साथी से चमकती आँखों के साथ कहा, ''जरा देखो, अल्लाह की माया।'' मेरे लिए यह एक अनुभूति थी कि एक अविकसित प्रतीत होते धर्म में भी व्यक्ति का ईश्वर पर कितना विश्वास था और वह प्रत्येक वस्तु में उसका हाथ देखता था।

एक बार जब मैं वर्षा के मौसम में सिल्हट जिले में यात्रा कर रहा था, तब हम ऊपर की ओर तेज धार में कमजोर स्थानीय नौका में जा रहे थे, तो जैसे जैसे तेज बारिश हो रही थी पानी का बहाव और बढ़ता जा रहा था। संघर्ष करने के बावजूद नाविक आगे नहीं जा पा रहा था। दूसरी ओर से बहती हुई लाश देखने के बाद हम यह जान गए कि अब हमें रुक जाना चाहिए। इसलिए हम नाव को पास के गाँव में ले गए जो कि मात्र भूमि का छोटा सा ऊँचा टीला था। उस टीले पर कुछ घर बने हुए थे। किन्तु जैसे ही पानी का स्तर बढ़ा तो भूमि भी गायब होने लगी। उस शाम जब हम सोए तो हम यह नहीं पता था कि हम रात को बह जाएँगे या नहीं। सौभाग्यवश जब हम सुबह उठे तो बारिश रुक चुकी थी। पानी का स्तर धीरे-धीरे कम होने लगा तो हमने अपनी यात्रा फिर से आरम्भ कर दी।

सादा जीवन

बांग्लादेश का अर्थ है ग्राम्य जीवन। और गाँव का जीवन सतोगुण को बनाए रखने के लिए अनुकूल है इसलिए ग्राम्य जीवन, शहरी जीवन जिसमें सारे आराम होने पर भी निम्न गुणों की प्रधानता है, से अधिक श्रेष्ठ है।[१७] बांग्लादेश चाहे संसार में सबसे घनी आबादी वाला देश है जिसमें बारह करोड़ लोग ब्रिटेन से भी आधे क्षेत्र में रहते हैं, फिर भी अधिकतर आबादी गाँव में रहती है।[१८] यहाँ लोगों के पास आधुनिक जीवन की सुविधाओं को प्राप्त करना मुश्किल है जिसका कारण यह भी हो सकता है कि असली बंगाली संस्कृति अभी नष्ट नहीं हुई।

---

१७ जैसा भगवत् गीता में बताया गया है कि शांति, संयम और आध्यात्मिक ज्ञान सतोगुण के लक्षण हैं। रजोगुण और तमोगुण निम्न श्रेणी के गुण हैं।

१८ कई छोटे देशों जैसे सिंगापुर में बांग्लादेश से भी घनी आबादी है।

कई मायनों में बंगाल का जीवन अनन्त काल से नहीं बदला। अधिकतर रास्ते कच्चे हैं। लोग पक्की सड़कों से मीलों दूर रहते हैं और उन्हें दूर-दूर तक पैदल चलने या साईकिल चलाने की आदत है। हवा स्वच्छ है। यहाँ फैक्टरी से बनी वस्तुएँ अधिक नहीं हैं। अधिकतर घर मिट्टी तथा घास फूस के बने होते हैं। नारियल, खजूर, केला और ताम्बूल के वृक्ष बहुत हैं। नीला आकाश, विशाल नदियाँ और जल-मार्ग भरी जीवनशैली पूरे वातावरण में व्याप्त है। पेड़ों के झुरमुट में से निकलते चैतन्य महाप्रभु के संकीर्तन दल की कल्पना करना कितना सरल है।

जितना समय भी मैं बांग्लादेश में रहा वहाँ अधिकतर गाँव में बिजली ही नहीं थी। और जहाँ तारें थीं भी, वहाँ एक दिन में मात्र एक या दो घंटे के लिए बिजली आती वो भी कम वोल्टेज पर।

बांग्लादेशी आधुनिक सुविधाओं को स्वयं प्राप्त नहीं कर सकते, इसलिए वे इनके बुरे प्रभावों से भी बचे हुए हैं। जनसंचार माध्यम अभी बांग्लादेश पहुँचे नहीं हैं और अधिकतर लोग सिनेमा से कोसों दूर हैं। इसके अतिरिक्त बांग्लादेश में दिखाई जाने वाली फिल्में इतनी घटिया नहीं जितनी कि भारत में, जिन्होंने उनके (भारतीयों के) मन में घोर कामवासना और हिंसा कूट-कूट कर भर दी है। सैंसर के नियम इस्लाम के प्रभाव के कारण कठोर हैं जो इतना बदनाम होने के बावजूद लाभप्रद पाबंदियाँ लगाता है।[१९]

कई गाँव तो इतनी दूर हैं कि उन्हें इस बात का बहुत कम ज्ञान है कि इसके बाहर क्या हो रहा है। रोजमर्रा की बातें और गप्पे ही महत्वपूर्ण समाचार हैं। सीधे-सादे बंगाली कार्यक्रमों को बैटरी पर चलने वाले रेडियो पर सुनना आम बात है और इसी से लोग बड़े देशों की खबरें सुनते हैं। भटक कर पड़ोसी के खेतों में घुसी एक बकरी के पीछे झगड़ा होना अधिकतर गाँव वालों के लिए ज्यादा महत्वपूर्ण है।

एक लेखक ने लिखा है कि जब भारत आजाद हुआ तो इसका जश्न मनाया जा रहा था तो किसी ने एक वृद्ध गाँव वाले से छुट्टी मनाने की जगह खेतों

१९ इस पुस्तक के अंग्रेजी संस्करण छपने के बाद बांग्लादेशी गांवों के घरों में बिजली और टीवी आम सुविधाएँ बन चुके हैं और भारतीय फिल्में वहाँ दिखाई जातीं हैं जिससे वहाँ नैतिक मूल्य कम हो रहे हैं।

में काम करने का कारण पूछा, ''आप जश्न क्यों नहीं मना रहे?'' उत्तर आया, ''जश्न किस बात का?'' तो उन्हें बताया गया, ''आज अंग्रेज चले गए हैं!'' उस वृद्ध ने पूछा, ''कौन?'' उसने कभी अंग्रेजों के बारे में सुना भी नहीं था।

मैं देश विदेश की खबरें गाँव से ढाका आकर जानता। शिखर सम्मेलन, डॉलर संकट, मिसाइल परीक्षण विरोध, जर्मनी में चुनाव, सॉकर हिंसा इत्यादि सब एक स्वप्न की तरह वास्तविकता से परे लगता है जो कभी स्पष्ट था अब लगभग भुला दिया गया है, संसार की आवाजें जैसे बहुत दूर चली गईं हो और बिल्कुल भी उपयुक्त प्रतीत नहीं होतीं।

आधुनिक टैक्नालॉजी से अनभिज्ञ बांग्लादेश का ग्राम्य जीवन पश्चिम के औद्योगिकीकरण से सर्वथा भिन्न है। गाँव वालों को तो इस बात का भी ज्ञान नहीं है कि अटैच बाथरूम, मोटरगाड़ियाँ या अन्य असंख्य आधुनिक सभ्यता की आवश्यकताएँ होती क्या हैं। ऐसा लगता है कि जब तक उन्हें कोई इस बारे में न बताए, तब तक वे इन सुविधाओं के बिना सुखी हैं। उन्होंने कभी कपड़े धोने वाली मशीन, टायलेट पेपर, बर्तन धोने के लिए स्पंज, हवा ताजा करने वाला, डिब्बा बंद या बर्फ में जमा हुआ भोजन, चाकू तथा काँटेदार चम्मच आदि के बारे में सुना ही नहीं।

हमारे कीर्तन से आकर्षित होकर कुछ गाँव के लड़के हमारे साथ ढाका में एक किराए के मकान में आ गए जिसे हमने आश्रम बना रखा था। बांग्लादेश में जितनी आशा की जा सकती है उस हिसाब से घर में सारी आधुनिक सुविधाएँ थीं: दरवाजों में हत्थे थे, पानी नगरपालिका के नलों से आता था, बिजली के बल्ब थे वगैरह वगैरह। लड़के बार-बार दरवाजे खोलते और बंद करते तथा इसके धीरे से बंद होने को देखकर हैरान होते और बार-बार बल्ब जला कर देखते। वे नल को खुला छोड़कर चले जाते और पानी बहता रहता। क्योंकि वे सोचते थे कि यह नदी की तरह स्वभावत: ही बहता रहता है।

एक बार ढाका में, मैंने गाँव के एक लड़के को फोटोकापी करने को कहा किन्तु उसे इस बारे में जरा भी नहीं पता था कि यह होता क्या है। जब

मैंने उसे बताने की कोशिश की तो वह इसे समझ भी नहीं पा रहा था। शहरी इस अज्ञानता को पिछड़ा हुआ मानेंगे किन्तु वे स्वयं भी देहात की कला से अनजान हैं। उन्हें इस बात का तनिक भी अंदेशा नहीं है कि खेतों में हल कैसे चलाना है या धान की बुआई कैसे होती है, न ही उन्हें अलग-अलग प्रकार की फसलों, पेड़ों, कीड़ों या पंछियों के नाम पता हैं। बांग्लादेशी यह सोचकर कि हमें सब समझ में आ रहा है, कई प्रकार के चावलों की किस्मों के बारे में बताते। किन्तु हमें चावलों की किस्मों और गुणों या उन्हें कब बोया जाए, मवेशियों के स्वास्थ्य तथा स्वच्छता के बारे में कुछ भी मालूम नहीं था। गाँव के लोग शायद कंकरीट के जंगल की भाग-दौड़ भरी जीवनशैली को न अपना पाएँ किन्तु शहरी बाबूओं को यह मालूम ही नहीं कि किस प्रकार गाँव के जीवन के साथ तालमेल बिठाएँ।

ऑस्ट्रेलिया से एक भक्त, जिन्होंने मेरे साथ कुछ समय यात्रा की, यह देखकर हैरान थे कि मैं किस प्रकार एक विदेशी होकर ऐसे कष्टप्रद जीवन में जी रहा हूँ जहाँ गाँव में पक्की सड़कें नहीं हैं या बिजली नहीं है, ट्यूबवैल पर नहाना इत्यादि। किन्तु मुझे यह बिल्कुल भी मुश्किल नहीं लगा। यह कोई बड़ी बात नहीं कि नहाने के लिए चल कर ट्यूबवैल पर जाएँ, अपनी बाल्टी में पानी भरें और नहाएँ। बड़े शहर की आलीशान इमारत में सोने तथा गाँव के मिट्टी के घर में सोने में क्या अन्तर है? लाखों लोग इस प्रकार रह रहे हैं, इसके बारे में जरा भी नहीं सोचते, तो हम क्यों नहीं कर सकते? यदि इसमें कोई कष्ट है तो भी यह मजेदार है। असल में यह एक बहुत रोमांचकारी है कि एक युवक पश्चिम की एक ही ढर्रे पर चल रही जीवनशैली को छोड़कर इतनी दूर प्रचार कर रहा है।

वातावरण के अनुकूल जीवन

गाँव का तथाकथित कठोर जीवन अधिकतर एक धारणा मात्र है। आधुनिक सुविधाओं का न होना अधिक लाभकारी है क्योंकि इन सुविधाओं के साथ कई प्रकार के रोग भी हैं। कम से कम सांस लेने के लिए हवा तो शुद्ध है। प्रदूषण बहुत ही कम और जीवन वातावरण के अनुकूल है, किन्तु बहुत कम गाँव वाले ही इस विषय में जानते हैं।

कई लोग पत्ते की थालियों तथा मिट्टी के कसोरों में खाते हैं, जो एक बार उपयोग करने के बाद फैंक दिए जाते हैं और ये अपने आप ही वातावरण में मिल जाते हैं। खाना बनाने वाले या पुन: उपयोग में आने वाले बर्तनों को मिट्टी और नारियल की छाल या घास से साफ कर लिया जाता है। चिकनाहट, दाग हटाने और धातु के बर्तनों को चमकाने के लिए प्रभावशाली तथा मुफ्त में उपलब्ध मिट्टी या रेत, सादा और प्राकृतिक ढंग है। साबुन बनाने के लिए बड़े उद्योग लगाने की कोई आवश्यकता नहीं है जो प्रदूषण भी फैलाते हैं। पानी नलों से नहीं अपितु सीधा नदियों, झीलों, तालाबों या कुओं से लिया जाता है। खाना हाथ से खाया जाता है इस प्रकार कांटे और छुरियों की भी कोई आवश्यकता नहीं।

गाँव के लोग एक प्रकार से कोई भी फैक्टरी में बनी वस्तु का उपयोग नहीं करते। वे सादे जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रकृति के संसाधनों का उपयोग करना अच्छी तरह जानते हैं। उदाहरणत: वे नारियल के वृक्ष का हर हिस्सा उपयोग करते हैं। ब्रश नारियल की सख्त टहनियों से बनाए जाते हैं; डोरी नारियल के रेशों या छिलकों से बनाई जाती है; नारियल का आधा खोल जिसके साथ लकड़ी का हत्था लगा दिया जाता है, का उपयोग कलछे के रूप में किया जाता है। नारियल का गूदा सबसे ज्यादा पौष्टिक होता है तथा असंख्य मीठे तथा नमकीन पकवानों का जायका और पौष्टिकता बढ़ा देता है। नारियल की गिरी से निकाले तेल को सिर पर लगाकर बालों को चमकाया और तालु को ठण्डा किया जाता है।

बांग्लादेश में केले की दर्जनों किस्में उगाई जाती हैं। इनमें से अधिकतर पश्चिम की तुलना में छोटी और मीठी होती हैं, कुछ तो तीन सैंटीमीटर से ज्यादा बड़े नहीं होते, तो कई खट्टे या बीजों से भरे होते हैं जो खाने में अच्छे नहीं होते। कईयों को पकने से पहले काट लेना अच्छा होता है और इन्हें सब्जी की तरह पकाया जाता है। यह पेट और हाजमें के लिए बहुत ही बढ़िया होता है। केले का पेड़ फल के अलावा भी कई उपयोगी वस्तुएँ देता है। केले के पत्तों को उच्च कोटि की थालियाँ माना जाता है। केले के पत्ते पर गर्म खाना रखने से इसमें कई ऐसे तत्व मिल जाते हैं जो पाचन में सहायक होते हैं। नास्तिक यह बात समझाने पर भी नहीं समझ सकते। वृक्ष के तने के अन्दर स्वादिष्ट और पौष्टिक सब्जी छुपी

होती है और कुछ केले के पेड़ों के फूल से अतुलनीय स्वादिष्ट कढ़ी बनती है। केले के पेड़ से कागज भी बनाया जा सकता है।

बांस भी बंगाल के जीवन का अभिन्न हिस्सा है। कई प्रकार की किस्में हर जगह उगती हैं, विशेषकर दक्षिणी समुद्री तट के इलाके में। कच्चे बांस को मोड़ कर कई प्रकार के साधारण फर्नीचर, टोकरियाँ बनाई जाती हैं — जैसे कि एक छड़ी के सहारे दोनों सिरों पर भार रखने के लिए टोकरियाँ और बड़ी किसान टोपियाँ जो उन्हें धूप और वर्षा से बचाती हैं। पके हुए सख्त और मजबूत बांस से बाड़, अस्थाई ढांचे, बांग्लादेश की छोटी जलधाराओं के ऊपर पुल और मचान बनाए जाते हैं। गर्मी से राहत पाने के लिए हाथ से हवा करने वाले पंखे भी बांस से बनाए जाते हैं।

आजकल कुछ बांग्लादेशी ही अपने घर में कपड़ा बनाते हैं। किन्तु पश्चिम बंगाल में हाथ से बने कपड़े का व्यवसायिक उत्पादन आज भी मुख्य घरेलू उद्योग है। और कुछ समय पहले तक बंगाल के अधिकतर गाँव में लोहार होता था जो कृषि के औजार, बाल्टियाँ, पकाने के बर्तन इत्यादि बनाता था। अब फैक्टरी की विशाल स्तर पर उत्पादित वस्तुएँ धीरे-धीरे अपना प्रभुत्व बनाती जा रहीं हैं।

आधुनिक समाज में बेकार वस्तुओं को फैंक दिया जाता है। यह दोष बंगाल के गाँवों में नहीं है। हर वस्तु का उपयोग किया जाता है। जैसे पुराने कपड़े फैंके नहीं जाते अपितु इन्हें फाड़कर पट्टियों की तरह या फटे हुए गद्दों को सिलने के काम लाया जाता है।

सरल ग्राम्य जीवन का एक और आकर्षक पहलू है कि गाँव के लोग अधिकतर कार्य दरवाजों में अन्दर बन्द न होकर, बाहर करते हैं। नहाना, कपड़े धोना, शौच जाना, बैठना और लोगों से बातें करना या चुपचाप पढ़ना, यह सब कार्य अधिकतर जगहों में बंद कमरे में किए जाते हैं, किन्तु बंगाल के गांवों में यह सब बाहर किया जाता है। यहाँ तक कि खाना भी बरामदे या घर के आंगन में खाया जाता है। जो इस सादगी से भलीभाँति परिचित हैं वे ही इस बात की सराहना कर सकते हैं कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् ने अपने पूर्ण प्राकट्य में शाही ऐश्वर्य की जगह गाँव के जीवन को क्यों पसंद किया।

प्रातः स्नान

गाँव में दिन सुबह जल्दी ही शुरु हो जाता है। अधिकतर लोग सूर्योदय से पहले या उसके साथ ही उठ जाते हैं। पौ फटने से पहले हमें स्थानीय मस्जिद से अरबी में औपचारिक लयबद्ध पुकार सुनाई देती, जो श्रद्धालुओं को प्रार्थना के लिए बुलाती। कई बार यह अनौपचारिक ढंग से बंगाली में होती, ''आ जाओ, उठ जाओ! प्रार्थना नींद से ज्यादा महत्वपूर्ण है!'' सुबह देर तक सोते रहना बहुत ही अजीब लगता किंतु शहरों में टी.वी. लोगों की जीवनशैली बदल रहा है।

सुबह उठने के बाद गाँव में लोगों का पहला काम होता शौच के लिए जाना। उनका शौच का समय नियमित होता। वे शौच के लिए या तो खेतों में जाते या शौचालय में। आमतौर पर शौचालय भूमि में एक छेद होता जिसकी कोई निकासी नहीं होती। गर्मी से पैदा हुई मल-मूत्र में बदबू, लाखों कीड़ों और मक्खियों को आकर्षित करती। यहाँ तक कि पानी से मल बहाने वाले शौचालय भी फर्श के स्तर के बराबर होते, जिससे मल त्यागते समय मुद्रा प्राकृतिक बनी रहती। जिससे पेट अच्छी तरह साफ हो जाता। यह पश्चिमी ढंग के शौचालयों से अधिक अच्छा है।

शौच के बाद नहाना अनिवार्य है। गाँव के लोग नलकों पर जाते हैं या खुले कुएँ पर। वे पानी की बाल्टी भर कर लोटे से पानी उड़ेलते हैं, या वे नदी या तालाब में नहाते हैं। कृष्ण की कृपा से सर्दियों में खुले कुएँ या नलकों का पानी गर्म होता है जबकि इन्हीं कुएँ या नलकों का पानी भीषण गर्मी में ठण्डा होता है। यह बात गहरे कुओं में और भी प्रभावशाली रहती है। जब हम थका देने वाली यात्रा से किसी गाँव में दोपहर में पहुँचते, तो कोई न कोई उत्साहपूर्वक हैंडपम्प चला कर एक के बाद एक बाल्टियाँ ठण्डे पानी से भर देता जिसे हम अपने ऊपर डाल लेते। गर्मी के शुष्क दिन में इससे बेहतर थकान दूर करने वाला तथा तरोताजा कर देने वाला कुछ भी नहीं।

मानव निर्मित तालाब (पुकुर) बंगाल की महत्वपूर्ण सुविधाएँ हैं; लगभग हर गाँव में एक पुकुर होता है और कुछ गाँवों में तो कई होते हैं। कई अपेक्षाकृत

समृद्ध परिवारों के अपने निजी पुकुर हैं। पुकुर आमतौर पर वर्गाकार या आयताकार होते हैं। इन्हें नहाने, कपड़े धोने और खाना पकाने के बर्तन धोने के लिए उपयोग किया जाता है। कुछ पुकुर सिर्फ पीने के पानी के लिए ही रखे जाते हैं। पुकुर के किनारे पर नहाने के घाट बने होते हैं जिनकी सीढ़ियाँ मिट्टी या विशेष रूप से पत्थर और ईंटों से बनी होती हैं। उत्तम पुकुर गहरे और विशाल होते हैं इसलिए वे गर्मियों में सूखते नहीं। अधिक लोगों के नहाने पर भी ये पुकुर दूसरे पुकुरों से अपेक्षाकृत ज्यादा स्वच्छ भी रहते हैं। हमारे भक्त अक्सर गाँव के अन्य लड़कों के साथ पुकुर के गहरे और ठण्डे पानी में तैरने और कूदने का मजा लेते।

पुरुष और महिलाएँ अलग-अलग पुकुर में या अलग समय पर एक ही पुकुर के अलग घाटों पर स्नान करते हैं। नहाते समय पुरुष लुंगी या गमछा पहनते और औरतें साड़ी पहनतीं।

सुबह औरतों का झुण्ड पुकुर या नदी के पास के घाट पर इकट्ठा हो जाता। जैसे ही वे कपड़े धोने के लिए उन्हें पत्थरों पर मारती हैं तो थ्वाक! थ्वाक! की आवाजें आती हैं। औरतें अक्सर अपने घर के बर्तन पुकुर या नदी पर धोती हैं और साथ ही दिन में पकाने के लिए पानी भी ले जाती हैं।

सूर्योदय के बाद पुकुर के पास ही पुरुषों का जमावड़ा हंसते हुए बतियाता है और नहाने से पहले नीम की दातुन चबाते या अपने शरीर पर सरसों का तेल लगाता है।[२०] वे अपनी नाक में भी थोड़ा सा तेल डाल देते हैं जिससे नाक की गंदगी भी साफ हो जाए। सर्दियों में सरसों का तेल लगाने से शरीर गर्म रहता है और त्वचा को रूखी होने से भी बचाता है। इसमें कई विटामिन और पोषक तत्व भी होते हैं जो रोमछिद्रों द्वारा शरीर में चले जाते हैं।

संध्याकालीन कार्य

हिन्दू घरों में सूर्यास्त की घोषणा स्त्रियों के घंटा तथा शंख बजाने और उलु-लु की ध्वनियों से होती है। यह मंगलकारी ध्वनियाँ अन्धेरा होते समय, जब भूत और बुरी आत्माएँ सक्रिय हो जाती है, के अशुभ प्रभाव को हटाती हैं।

२० नीम की टहनियाँ एक प्राकृतिक कीटाणुनाशक दांत साफ करने की ब्रश हैं।

इस समय अशुभकारी प्रभाव को दूर करने के लिए परिवार के अर्चा-विग्रहों की आरती की जाती है और इस प्रकार हर वस्तु को शुभ किया जाता है। सूर्य छुपने के बाद भी धून — मिट्टी या तांबे के बर्तन में एक अगरबती तथा नारियल के रेशे जलाए जाते हैं। इससे उत्पन्न शुद्ध करने वाला धुआँ सूक्ष्म बुरे प्रभावों को दूर करता है तथा संध्या के समय सक्रिय हुए मच्छरों के समूहों को भी बाहर भगा देता है।

संध्या के समय दीए भी जला दिए जाते हैं जो या तो जुगाड़ करके उपयोग की गई खाली डिब्बियों से बने होते या थोड़े सुन्दर शीशे से ढके लैम्प। यहाँ तक कि जिन घरों में बिजली होती वे भी आमतौर पर लैम्प ही जलाते क्योंकि बिजली अक्सर चली जाती थी। जब हर कोई रात को सो जाता तो एक या दो लैम्प धीमी बत्ती पर चलने दिए जाते ताकि भोर होने से पहले उठने में दिखाई दे।

सामाजिक ढांचा और व्यवहार

बंगाल का दृश्य आमतौर से सपाट खेत जिनमें इधर-उधर ऊँचे स्थानों पर कई पेड़ों के जैसे नारियल, पान और ताड़ के झुण्ड होते हैं। फिर भी हर जगह लोग होते हैं। प्रत्येक पेड़ों के झुण्ड के नीचे कई झोपड़ियाँ होतीं, जो घर के कई सदस्यों को अपनी शरण देतीं। कई बार हम खुले खेतों में एकान्त स्थान दिखने वाले स्थान पर अपनी वैन रोक देते किन्तु कुछ ही मिनटों में हम जिज्ञासु गाँव वालों की भीड़ से घिरे होते जो यह देखने आते कि अचानक उनके बीच में कौन 'साहिब' आ गए हैं।

बांग्लादेश में गोपनीयता कम है; एक का काम हर किसी का काम है। साधारण गाँव के लोगों को इकट्ठे एक समूह में खड़े होकर घूरते रहने में कोई संकोच नहीं होता। एक विदेशी जो कुछ भी करता वे उससे आकर्षित हो जाते। मेरे अलावा कई विदेशी भक्त इससे काफी विचलित हो जाते। कई बार मुझे लगता कि मैं चिड़ियाघर में एक पशु हूँ। किन्तु समय के साथ मुझे इसकी आदत हो गई।

नहाने के बाद हम लोगों से भरे कमरे, जिसमें औरतें भी होतीं, में ही कपड़े पहनते। अधिकतर परिवारों में निजी कमरों का प्रश्न ही नहीं है, यहाँ ज्यादा जगह नहीं है। इसलिए लोगों ने पुरुष या स्त्री के खड़े होने पर भी, इस प्रकार से कपड़े पहनना सीख लिया है कि कपड़े बदलते समय उनके शरीर भी ढके रहते हैं।

अकेलापन बंगाल में है ही नहीं, इसलिए नहीं कि लोग भीड़ में गुम हो जाएँगे अपितु इसलिए कि लोगों को एक व्यक्ति की तरह रहना आता है। बंगालियों को इकट्ठे बैठकर बातें करना सबसे अच्छा लगता है चाहे उनकी बातों का शायद ही कोई मूल्य हो। बोरियत भी उन्हें नहीं पता। बंगाली इकट्ठे काम करते हैं और इस बात को पसंद भी करते हैं। हर कोई शामिल हो जाता है और अपनी भूमिका निभाता है। आधुनिक समाज की धारणा के अनुसार असंख्य बनावटी उत्तेजित करने वाले पदार्थों की तुलना में यह अलग प्रकार का आनन्द है।

विकास चाहने वाले पश्चिमी अक्सर बांग्लादेशी की बाहरी मूर्खता पर व्यथित हो जाते हैं, कि उसे अपने हित की भी समझ नहीं है। बांग्लादेशी समाज व्यक्तिगत स्वार्थों, प्रतियोगितावाद या तकनीकी विकास के लिए आवश्यक योग्यता को प्रोत्साहित नहीं करता। अपितु एक बांग्लादेशी, जिसकी रुचि आर्थिक विकास में भी है, इस बात के लिए अधिक आतुर रहता है कि सामूहिक स्वदेशी संस्कृति बनी रहे जो आपसी मेलजोल और सहयोग को प्रोत्साहित करती है और यह पारम्परिक श्रम-साधित कृषि समाज के लिए आवश्यक है।

मैं एक गाँव में था जो कुछ ही समय पहले बवण्डर से तबाह हो गया था। वहाँ के लोग मिट्टी से दोबारा मकान बनाने में खुशी-खुशी एक दूसरे की मदद कर रहे थे। गाँव का जीवन इसी प्रकार चलता है। लोग पूरा वर्ष एक दूसरे की मदद के लिए आतुर रहते हैं और वे खुशी से फसल काटने, सिंचाई करने, त्योहार मनाने या उफनती नदी का पानी रोकने के लिए दीवार बनाने में एक दूसरे की मदद करते हैं।

एक दूसरे पर निर्भरता के कारण अपने पड़ोसियों के साथ अच्छे सम्बन्ध रखना जरुरी होता है। अधिकतर लोग आर्थिक रूप से समृद्ध नहीं होते, इसलिए जिनके पास अधिक धन होता है उनसे आशा की जाती है कि वे दूसरों की मदद करेंगे। यह सहयोग और दूसरों के प्रति जिम्मेवारी की संस्कृति है। राजनीतिज्ञों द्वारा हिन्दू और मुसलमानों में बुरी भावनाएँ पैदा करने पर भी आज कई गाँवों में ये दोनों समुदाय मैत्री से रहते हैं — चाहे यह मैत्री सतर्कता से मिश्रित होती है।

बंगाली एक दूसरे के साथ, विशेषकर अपने ही समूह के लोगों में, स्वयं को करीब महसूस करते हैं। वे परिचय बढ़ाने और प्रश्न पूछने में बहुत ही आतुर रहते हैं। मेरी विदेशी समझ के कारण, शुरु शुरु में मुझे लगा कि बार-बार प्रश्न पूछ कर ये मेरी गोपनीयता में घुसपैठ कर रहे हैं जैसे — ''आपकी उम्र कितनी है ?'' ''आपके कितने भाई बहन हैं ?'' ''आप शादीशुदा हैं ?'' क्योंकि मुझे यह समझ नहीं थी कि किसी में इस प्रकार निजी रुचि भारतीय संस्कृति में प्रशंसा और आदर का सूचक है।

पाश्चात्य संस्कृति व्यक्ति को रूखा बना देती है जो इस क्रूर संसार में अकेला संघर्ष करता है। बांग्लादेशी एक दूसरे पर निर्भरता और समूह में अस्तित्व की भावना पर बल देते हैं । वे प्राय: ''मेरा घर'' ''मेरा देश'' कहने की बजाए कहते हैं ''हमारा घर'' ''हमारा देश।'' बांग्लादेशी व्यक्तिगत पहचान बनाने को पसंद नहीं करते। अपितु वे समूह के सदस्य के रूप में जाने जाने से प्रसन्न होते हैं।

पहला और उत्तम समूह जिसके द्वारा बांग्लादेशी अपनी पहचान बनाते हैं वह है परिवार; फिर जाति और गाँव। किसी बंगाली को ठेस पहुँचानी हो तो उसके समुदाय पर आरोपर लगा दो क्योंकि वो अपने समुदाय के साथ होता है और इसके द्वारा ही उसकी सुरक्षा होती है। समूह की घनिष्ठता ही इसके सदस्य पर किसी भी प्रकार के हमले से उसकी रक्षा करती है। यहाँ तक कि पूरा गाँव भी एक सदस्य के लिए बदला लेता है।

नैतिक, सामाजिक या आर्थिक रूप से पूरा समुदाय अपने सदस्य की मुश्किलों में उसका साथ देता है। इस प्रकार सदस्य परस्पर समूह के आभारी रहते हैं। असल में समूह का पालन करने का दबाव बहुत ही अधिक होता है। इस प्रकार समूह अपने सदस्यों के व्यवहार को नियमित करता है और उन्हें सीमा में रखता है। एक व्यक्ति जो करता है वह पूरे समुदाय की झलक देता है। एक व्यक्ति का गलत कार्य पूरे समुदाय के लिए शर्म की बात होती है तो सफलता पूरे समुदाय को सम्मान दिलाती है। यदि कोई सही से व्यवहार नहीं करता तो उसे घर के बड़े या गाँव वाले कहते हैं, ''तुम अपने परिवार को (गाँव को) बदनाम करोगे।'' यह बात उसे अपना व्यवहार सुधारने के लिए काफी होती है।

बंगाली सम्मान और आदर बनाए रखने के लिए उत्सुक रहते हैं। वे समाज में दूसरों के साथ (विशेषकर बड़े) सम्बन्ध बनाए रखकर अपना हैसियत बनाए रखते हैं। वे जितना हो सके अपने कपड़े साफ सुथरे रखते हैं, चाहे उनके पास कम या ज्यादा अच्छे कपड़े न भी हों।

खासतौर पर बांग्लादेशी सदाचार को बहुत महत्व देते हैं। एक बांग्लादेशी के लिए यह कहना कि उसका व्यवहार अच्छा है बहुत बड़ी प्रशंसा की बात है। दूसरी ओर यह कहना कि उसे नहीं मालूम कि किस प्रकार व्यवहार करना है कड़ी असहमति दर्शाता है। उदाहरण के तौर पर यदि कोई अपने धन या हैसियत के कारण दूसरों के प्रति उपेक्षा और हीन भावना रखता है तो उसे पीठ पीछे बहुत ही धिक्कारा जाता है।

हर संस्कृति में कुछ चीजें निन्दनीय और घृणित मानी जाती हैं। एक विदेशी के लिए अपनी संस्कृति से भिन्न किसी दूसरे सांस्कृतिक मूल्यों में रहना कई बार बहुत ही मुश्किल हो जाता है। उदाहरणत: बंगाली लोग कई बार मित्रता दर्शाते हुए एक दूसरे का हाथ पकड़ कर चलते हैं। जबकि विदेशों में इसे समलैंगिकता का संकेत माना जाएगा, कम से कम पहले यह बहुत ही घृणित माना जाता था। किन्तु बंगाल में ऐसा कुछ भी नहीं है। और यदि किसी बड़े के डाँटने पर किसी बंगाली को शर्म महसूस होती है तो वह पश्चाताप से अपने दाँतों तले जीभ पकड़ लेता है। किन्तु ब्रिटिश या अमेरिकी संस्कृति में इस प्रकार जीभ दिखाना अभद्र माना जाता है। और कई बार मैं अगूँठा दिखाने पर मुसीबत में फँस गया। पाश्चात्य देशों में यह दोस्ती और सकारात्मक संकेत है किन्तु भारतीय संस्कृति में यह अभद्र है।

बंगाली संस्कृति में एक नौसिखिए को कई अच्छी बातें और निषेध सीखने चाहिए। उदाहरण के तौर पर किसी की ओर पैर करके बैठना अभद्र माना जाता है। अत: जब कुर्सी पर बैठे हों तो पैर नीचे की ओर झुके हों ताकि किसी की ओर न हों। पश्चिम की तरह किसी को उंगली का इशारा करके बुलाना बंगालियों में अभद्र माना जाता है। वे पूरे हाथ के सौम्य इशारे से किसी को बुलाते हैं। बंगाली तथा भारतीय संस्कृति में सिर को दोनों ओर हिलाना सहमति जताना है जबकि पाश्चात्य देशों में यह असहमति जताता है।

बाएँ हाथ से गिलास पकड़ कर पानी पीना भी गलत माना जाता है क्योंकि बायाँ हाथ सिर्फ अमंगलकारी तथा गन्दे कार्यों के लिए किया जाता है जैसे मल त्यागने के बाद साफ करने आदि, जबकि दायाँ हाथ हर स्वच्छ और शुभ कार्य के लिए उपयोग किया जाता है। कोई भी वस्तु बाएँ हाथ से लेना या देना अपमान माना जाता है। एक बार जब मैं श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें वितरित कर रहा था तो मैं हमेशा की तरह एक व्यक्तिको बाएँ हाथ से खुले पैसे देने लगा। लोगों की भीड़ के बीच उसने पैसे लिए और मेरे दाएँ हाथ में थमाकर प्रतीक्षा करने लगा कि मैं उसे दाएँ हाथ से दूँ। यह बहुत ही शर्मिंदगी भरी, किन्तु शिक्षा देने वाली घटना थी।

म्लेच्छ देश से आने के कारण मैं आसानी से बांग्लादेशी सभ्याचार और व्यवहार में रम नहीं पाया। संस्कृति से अपरिचित होने के कारण मैं अक्सर गलतियाँ कर देता था और कई लोग, अक्सर मुझसे बड़े, मुझे इस पर टोक देते। अहंकार वश मेरे लिए उस संस्कृति की इन सब अच्छी बातों को सीख पाना बहुत कठिन था जिसे मेरे आसपास के लोग बचपन से ही सीख रहे थे। मेरे लिए यह स्वीकार करना तब और भी मुश्किल हो गया जब वे लोग मुझे समझाते जो शायद इससे भी महत्वपूर्ण आध्यात्मिक जीवन के नियमों का पालन नहीं कर रहे थे।

बंगालियों में निजी व्यवहार बहुत ही सूक्ष्म होता है। उन्हें चाहे भावुक कहा जाता है किन्तु वे सदैव अपनी भावनाओं को व्यक्त नहीं करते। इस प्रकार एक विदेशी को बंगालियों के हाव-भाव, आँखों की झलक, झुकना और अप्रत्यक्ष भाषा इत्यादि के सूक्ष्म अन्तरों को समझना चाहिए। स्पष्टवादिता और सीधे-सीधे कह देना जहाँ अंग्रेजों को पसंद हैं वहीं बंगाली इसे रूखापन और दुराचार मानते हैं।

बंगाली संस्कृति विशेषरूप से गलतफहमी और डाँटने के मामले में बहुत ही कोमल होती है। बंगाली लोग परिवार तथा घनिष्ठ मित्रों में सीधे और सरल होते हैं किन्तु यदि वे झगड़े या गुस्से में न हों तो दूसरों से व्यवहार करते समय वे बहुत ही पेचीदा होते हैं। बड़े मतभेदों वाले मुद्दों को अप्रत्यक्ष ढंग से निपटा जाता है और हर तरह से अपमान, गुस्सा, अनबन या अनावश्यक सम्बन्धों में

दरार आदि से बचने का प्रयास किया जाता है। यह गाँव में व्यवहारिक है जिसमें लोग साथ रहते हैं और सहयोग करते हैं।

यदि एक बांग्लादेशी दूसरे को समझाता है तो वह अलग से मृदु भाषा में दिलासा देते हुए ऐसा करता है। चाहे आपस में असहमति है फिर भी दूसरों को संतुष्ट करना भी जरूरी है। आमतौर पर समझाने का काम बड़ों द्वारा किया जाता है। यहाँ तक कि झिड़कियाँ भी बहुत ही ढंग से दी जाती हैं कि यह उसके परिवार की भलाई के लिए है। यदि कोई कड़वी बात कहनी हो जो सुनने वाले को अच्छी नहीं लगेगी तो बात शुरु करने के लिए एक मशहूर पंक्ति कही जाती है – किछु मने कोरबेन न अर्थात् बुरा मत मानना।

समझाने वाला पहले निजी प्रश्न पूछता है ताकि असहमति के रूखेपन को कम किया जा सके तथा यह संकेत दे दिया जाता है कि गलत व्यवहार करने वाला अभी भी पहले की तरह स्वीकार्य है किन्तु उसे अपना व्यवहार ठीक करने की चेतावनी दी जा रही है। फटकारने वाला बहुत ही मधुर आवाज में इस तरह से बोलेगा कि भूल करने वाला अच्छा महसूस करे चाहे जो कुछ उसे कहा जाए वह अच्छा न हो।

बंगाली अपने मन के गम्भीर विषयों से पहले बैठकर किसी हल्के फुल्के विषय पर बात करने में निपुण होते हैं। तब भी वे कई बार सीधे-सीधे न कहकर बात को घुमाकर कहते हैं। यदि दो लोगों में मतभेद की भावना हो, तो उसे बहुत ही सूक्ष्म संकेतों द्वारा दर्शाया जाता है। और यदि असंतोष का कारण पैदा करने वाला इन अप्रत्यक्ष संकेतों का जवाब नहीं देता तो असंतुष्ट व्यक्ति दोनों द्वारा आदरणीय किसी व्यक्ति को निवेदन करता है कि वह उसका रोष उसे बता दे।

यदि दुर्व्यवहार पर क्षमा मांगी जाए तो इसके उत्तर में कहा जाता है, ''नहीं, नहीं। आपने कुछ गलत नहीं किया। मैंने आपके बारे में गलत नहीं सोचा।'' जबकि दोनों जानते हैं कि गलत काम हुआ था।

यद्यपि बंगाली संस्कृति आदर और दूसरों को ठेस न पहुँचाने पर आधारित है, फिर भी संत कम होते हैं। और बंगाली कई बार दूसरों की भावनाओं को

आहत करने का कोई न कोई रास्ता खोज निकालते हैं। सामाजिक सीमाओं को भी अक्सर लांघ लिया जाता है जिससे तेज आवाज में वाद-विवाद हो जाता है और यह बंगाल में आम है। दो लोगों की बहस में हमेशा भीड़ इकट्ठी हो जाती है और यह सामूहिक बात बन जाती है।

वरिष्ठता

बंगाली संस्कृति में वरिष्ठ का अर्थ है पिता, माता, दादा, दादी या अन्य वृद्धजन। बड़े भाई का सत्कार पिता की तरह ही किया जाता है। अध्यापकों का भी बहुत सम्मान किया जाता है। छोटों को बड़ों के साथ तर्क करने की आज्ञा नहीं दी जाती। यदि किसी छोटे (कनिष्ठ) को कोई विवाद करना भी है तो आमतौर पर वह नहीं करता। यदि किसी को अपने बड़े को शिकायत करनी है तो वह इसे बहुत ही आदर से करता है और यदि वह जिद्द के कारण नहीं मानता तो छोटा स्वीकार कर लेता है। यदि कोई वरिष्ठ किसी कनिष्ठ को बुलाता है तो वह कहता है, ''आज्ञा।''

जब भी मैं अपने से छोटों जैसे मेरे गुरु भाइयों के शिष्यों के कमरे में आता चाहे वे बैठे हों या आराम कर रहे हों, तो वे आदर भाव से तुरन्त खड़े हो जाते। यदि कोई बड़ा खड़ा होता तो वे उनके सामने बैठते नहीं थे। जब भी मैं ढाका विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग के प्रधानाचार्य को उनके घर मिलने जाता, तो मैं देखता कि विद्यार्थी प्रवेश करते समय उनके पाँव छूते और वे विद्यार्थियों के सिर पर हाथ रखते।

स्नेह और पारिवारिक जीवन

स्नेहिल भावनाएँ बंगाली जीवन में सम्मान की तरह एक अंग है। पुरुषों को यह कहते हुए कोई शर्म नहीं होती कि वे किसी दूसरे पुरुष को प्रेम करता है या दूसरे पुरुष उनको प्रेम करते हैं : आमाके भालोभाशे। जब मित्र या सम्बन्धी मिलते हैं तो भावुक होकर एक दूसरे को तीन बार गले लगाते हैं। पहली बार गले लगाने पर सिर बाएँ कंधे पर होता है और दूसरी बार दाएँ और फिर दोबारा बाएँ कंधे पर। निश्चित ही यह दो पुरुषों या दो स्त्रियों के बीच होता है। पुरुष और स्त्री

कभी भी एक दूसरे को सरेआम गले नहीं लगाते चाहे वे पति–पत्नी ही क्यों न हों। यदि पुत्र बहुत छोटा न हो तो पुत्र भी अपनी माता की बाजू मात्र पकड़ता है।

एक बंगाली परिवार एक साथ रहता है। शायद पांच भाई एक साथ रहते हैं और उनकी पत्नियाँ और बच्चे भी साथ रहते हैं। हरेक पुरुष अपने भाइयों के बच्चों को अपने बच्चों की तरह ही स्नेह करता है। बड़ों के पास प्यार करने के लिये कई बच्चे होते हैं और छोटे बच्चे कइयों से स्नेह प्राप्त कर बड़े होते हैं।

बंगाल में एक व्यक्तिको तब तक पुरुष नहीं माना जाता जब तक वह तीस वर्ष का न हो जाए। तब तक उसे एक बच्चे की तरह माना और पुकारा जाता है। यदि वह शादीशुदा और बच्चे वाला हो तब भी उसे सीमित स्वतंत्रता होती है।

बांग्लादेशी समाज में पुरुष और स्त्री की बिल्कुल ही अलग भूमिकाएँ होती हैं। उनका पहरावा, स्वभाव, सामाजिक पद और कर्तव्य बिल्कुल स्पष्ट और निश्चित होते हैं। औरतें सामाजिक रूप से पुरुषों के अधीन होती हैं, फिर भी उनका पूरा सम्मान, देखभाल और रक्षा की जाती है। पूरे भारत में तथा बांग्लादेश में अभी भी औरतें पश्चिम के पागलपन से प्रभावित नहीं हुईं, जहाँ औरतें पुरुष बनने के लिए प्रयासरत हैं। कठोर परिश्रम और बहुत ही कम आय के साधन होने के बावजूद स्त्रियाँ स्वयं को आकर्षक ढंग से रंगदार साड़ी, चूड़ियाँ, गहने, सिन्दूर, बिन्दी और आल्ता लगा कर अपना स्वाभाविक नारीत्व बना कर रखती हैं।[२१]

बंगाल या किसी भी पारम्परिक संस्कृति में नारियों की भूमिका पत्नी और माताओं की तरह है न कि एक कामुक वस्तु की, जो उसकी दृष्टि में आए हर पुरुष को आकर्षित करने का प्रयास करे। बंगाली स्त्रियों का आनन्द अपने परिवार और अतिथियों की सेवा करने में होता है। वे विशेषरूप से सामाजिक और धार्मिक उत्सवों के लिए उत्साहित रहती हैं। उत्सवों के लिए पकवान बनाना, तैयार होना और अपनी सहेलियों से मिलते समय उनकी खुशी का ठिकाना नहीं रहता।

---

२१ सिंदूर – एक प्राकृतिक लाल रंग है जो विवाहित स्त्रियाँ मांग में लगाती हैं; बिंदी – वही लाल रंग माथे के बीचोबीच बिन्दू के रूप में लगाया जाता है; आल्ता – लाल रंग जो पैर के तलवों में लगाया जाता है।

बंगाल के गांव में सुबह स्त्रियों का पहला काम होता है अपने घर तथा आंगन के फर्श बुहारना। इसके बाद वे इसे गाय के गोबर तथा पानी से लीपती हैं। इसके बाद भी उनके कई कार्य होते हैं; गायें दोहना, खाना बनाना, परिवार को खिलाना, गेहूँ पीसना, बर्तन धोना इत्यादि। इन सब कार्यों के साथ वे चौबीस घण्टे बच्चों का ध्यान भी रखती हैं। घर का इतना सारा काम घर की कई स्त्रियों में बँटा होता है इसलिए बोझ नहीं लगता।

बंगाली स्त्रियाँ बच्चों को कभी बोझ नहीं समझतीं। अपितु उन्हें बच्चों का ध्यान रखने और पालन–पोषण में परम आनन्द मिलता है। आमतौर पर बंगाली माताएँ अपने बच्चों के प्रति विशेषकर पुत्रों के प्रति बहुत ही स्नेहिल होती हैं। ज्यादातर बंगाली माताओं के कई पुत्र होते हैं किन्तु यदि किसी का एक पुत्र हो तो उनकी सारी आसक्ति उसमें चली जाती है और वे उसी से बंध जाती हैं। माता का अधिक स्नेह सबसे छोटे पुत्र में होता है। बड़े होने पर भी पुरुष अपनी माता से प्रगाढ़ स्नेह अनुभव करते हैं। प्रत्येक गांव का व्यक्ति जो शहर काम करने जाता है, वह अपने घर में अपनी माता की तस्वीर जरूर लगाता है।

गाँव में औरतें मुझसे समूह में मिलने आतीं, वे कभी भी अकेली नहीं आतीं थीं। वे हमेशा मुझसे मेरे घर और परिवार के बारे में पूछतीं, बंगालियों के लिए यह महत्वपूर्ण होता, विशेषकर महिलाओं के लिए। जब मैं उन्हें बताता कि मैं इकलौती संतान हूँ तो उनके लिए यह कल्पना करना भी मुश्किल होता कि मैं किस प्रकार अपनी माता को छोड़ आया हूँ और इतने वर्षों तक उन्हें देखा भी नहीं। और वे यह सोचकर कि मेरी माता को जरूर विलाप हो रहा होगा, दु:खी हो जातीं। उन्हें यह पता ही नहीं था कि आधुनिक पश्चिमी समाज में भावनाएँ और स्नेह इतना कम हो चुका है कि अक्सर माताएँ स्वयं ही अपनी संतान को घर से बाहर निकाल देती हैं: ''तुम यहाँ काफी समय से हो, निकल जाओ।'' तो मैं उन्हें सच सच बताता कि चाहे मैंने एक माता को छोड़ा है किन्तु मुझे बांग्लादेश में कई माताएँ मिल गई हैं। यह सुनकर उनके हृदय पिघल जाते और वे प्रेम से मुझे अपना पुत्र स्वीकार कर लेतीं।

एक बार ढाका में मैंने एक परिवार को सड़क के किनारे प्रतीक्षा करते हुए देखा। उनमें ज्यादातर औरतें और बच्चें थे और साथ एक दो पुरुष थे। वे परेशान थे और ट्रैफिक तथा शहर की भीड़ से घबराए हुए थे। इससे यह स्पष्ट था कि वे गांव से आए हैं। बच्चे इधर-उधर घूम रहे थे, जबकि एक बच्चा सड़क पर चला गया। यह देख कर एक वृद्ध औरत भागकर उस बच्चे को वापिस पकड़ कर ले आई और उसे अपनी छाती से लगा लिया। और उसने एक नवयुवती को डाँटा जो उस बच्चे के नजदीक थी और उसने बच्चे का ध्यान नहीं रखा, ''तुमने उस बच्चे को इस तरह सड़क पर कैसे जाने दिया?''

इस प्रकार का मातृत्व और गृह-वृत्तियाँ वे बचपन में ही सीख जाती हैं। चार या पाँच साल की आयु में ही लड़कियाँ पानी लाने, खाना बनाने, भोजन देने और छोटे बच्चों की देखभाल करने में मदद करने लगती हैं। पश्चिम से बिल्कुल अलग जहाँ लड़कियाँ गुड्डियों और खिलौनों से खेलती हैं वहीं बांग्लादेश के गाँव में लड़कियाँ असली गुड्डे और गुड्डियों को उठाती और ध्यान रखती हैं। वे अपने से छोटे बच्चों या चाची और पड़ोस के बच्चों का ध्यान रखती हैं। पाँच साल की लड़कियाँ आमतौर पर लगभग अपने ही जितने बच्चे उठाती हुई दिखाई दे जाती हैं। इस प्रकार जीवन के प्रारम्भ में ही बच्चे एक नहीं, कई माताओं के साथ बड़े होते हैं। जब बड़ी बहन का विवाह हो जाता है और उसके भाई-बहन बड़े हो जाते हैं तब भी उसमें अपने भाई-बहनों के प्रति मातृत्व की भावना रहती है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि बंगाली अपनी बड़ी बहन का बहुत ही आदर करते हैं।

बच्चों को डाँट कर या सामाजिक दबाव द्वारा समझाया जाता है। मैंने कभी भी बंगाली माता-पिता को अपने बच्चों को थप्पड़ मारते या पीटते न देखा है न ही सुना है। बंगाल के बच्चे ज्यादा रोते नहीं और आत्म-विश्वास तथा बिना किसी रोक-टोक के साथ बड़े होते हैं।

बुरा बर्ताव क्या है, इसके बारे में बच्चों को छि: छि: करके बताया जाता है। बंगाली संस्कृति में कई नियमों को बचपन से ही सिखाया जाता है। एक छोटे बच्चे को इस प्रकार सावधान किया जाता है, ''अपना पैर किसी पर मत रखो, किसी भी पवित्र वस्तु पर नहीं।'' ''बाएँ हाथ से कोई चीज़ मत दो।'' ''अपने से बड़े को

उनके नाम से मत बुलाओ और उन्हें आदर से बुलाओ।'' ''गाय की रस्सी के ऊपर से मत कूदो।'' जैसे जैसे बच्चा बड़ा होता है तो वह कई विधि-निषेध सीख जाता है जैसे बड़ों के सामने न बोलना या बात करते समय उस व्यक्ति को नहीं घूरना।

मुझे याद है एक महिला अपने छोटे बच्चे को हमारे आश्रम ले आई थी। माताएँ अपने छोटे बच्चों का सिर जमीन पर रखकर भगवान् को माथा टिकवातीं और उनके मुँह में *चरणामृत* डालतीं।[२२] बच्चों को पता भी नहीं होता कि क्या हो रहा है किन्तु उनकी माताएँ इस बात का ख्याल रखतीं कि वे पुण्य करने का लाभ लें। माताएँ अपने छोटे बच्चों का सिर हमारे आगे भी नवा देतीं और बड़े बच्चों से प्रणाम करने को कहतीं। इतना कहते ही बच्चे हमारे आगे झुक जाते। पहले से ही प्रशिक्षित बच्चे बिना कहे ही प्रणाम करने लगते।

बंगाली औरतों का बच्चों के साथ प्रेम अपने पतियों के साथ-साथ ही चलता है। युवा लड़कियाँ उन सारे गुणों को अपना लेती हैं जो एक स्त्री के लिए महत्वपूर्ण माने जाते हैं जैसे: सतीत्व, समर्पण और पतिव्रता बने रहना। एक बार मैं एक बंगाली परिवार के यहाँ था जब एक वृद्ध स्त्री अपने बीमार और वृद्ध पति के बारे में, जो हमसे कुछ ही ऊपर बैठा था, कहने लगी, ''हम सब कृष्ण से प्रेम करते हैं, किन्तु मेरे पति मेरे भगवान् हैं। पूरा जीवन उन्होंने मेरी रक्षा और पालन किया है। वे कृष्ण के महान् भक्तहैं और मैं सदैव इनकी आभारी रहूँगी।'' उसकी आवाज फटने लगी और कहने लगी, ''अब वे कृष्ण के पास जा रहे हैं, मैं भी कृष्ण के पास जाना जाती हूँ , लेकिन सिर्फ उनके साथ।''

बंगाली विवाह का तरीका पश्चिम की धारणा से बिल्कुल अलग है। हम एक आधुनिक युवक को जानते है जो पश्चिम देशों के फैशन वाले कपड़े पहनता था और अच्छी अंग्रेजी जानता था। फिर भी वैष्णवता में पला बढ़ा होने के कारण उसमें अभी भी यह भावनाएँ मजबूत थीं। वह मृदंग बजाने में निपुण था और ढाका में हमारे आश्रम में हर शाम कीर्तन में नियमित रूप से आता था। बाद में उसे अमेरिका जाकर पढ़ाई करने का अवसर मिला। जाने से पहले वह बहुत ही

२२ चरणामृत - वह जल जिससे भगवान् के अर्चाविग्रह के चरणकमलों का अभिषेक किया गया है। बाद में भक्त इस जल को ग्रहण करते हैं।

उत्साहित था, किन्तु जब वह एक वर्ष बाद आया तो उसने अमरीकन शैली पर निराशा जताते हुए कहा,''वे प्रेम का बड़ा-बड़ा दिखावा करते हैं,'' घृणा भाव से उसने फिर कहा, ''जब कोई व्यक्ति अपनी पत्नी को काम के लिए भेजता है तो बहुत बड़ा चुम्बन करता है।[२३] फिर वे झगड़ते हैं और उतनी ही आसानी से तलाक ले लेते हैं जितनी आसानी से चुम्बन करते हैं। हमारे देश में हम प्रेम की बात भी नहीं करते और न ही इसका कोई दिखावा करते हैं। इसकी कोई आवश्यकता नहीं है; यह स्वाभाविक ही रहता है। पत्नी अपने पति से प्रेम न करे इसका कोई प्रश्न ही नहीं है। वह अपने पति से स्वाभाविक ही प्रेम करती है क्योंकि वह उसका पति है। कई अमरीकियों ने मुझसे माता-पिता द्वारा तय विवाह के बारे में पूछा; 'तुम किस प्रकार उससे विवाह कर सकते हो जिससे तुम कभी मिले ही नहीं? आप उससे कैसे प्रेम कर सकते हैं? मैं उनसे कहता, 'आपकी पद्धति है शादी से पहले प्रेम करना, किन्तु हम शादी के बाद प्रेम करते हैं। अन्तर केवल इतना है कि जितनी जल्दी आप प्रेम करते हैं उतनी ही जल्दी छोड़ भी देते हैं। और आप सोचते हैं कि विवाह को छोड़ना भी बड़ी बात नहीं। किन्तु हम ऐसा नहीं करते।'''

सम्बोधन

बंगाल के गाँव में यदि दो लोग एक ही उम्र के हों तो भाई कहलाते हैं। प्रारम्भ में मैं इस बात से परेशान हो गया जब कोई मुझे एक ही उम्र के लोगों को भाई की तरह मुझसे मिलवा रहा था किन्तु बाद में मुझे पता चला कि बंगाल में भाई का क्या अर्थ होता है। भाई का अर्थ एक ही जिले का व्यक्ति, दोस्त, पुराना स्कूल का सहपाठी इत्यादि होता है। वे बचपन में एक साथ भाई बहनों की तरह बड़े होते हैं इसलिए नवयुवकों को अपने ही गाँव में विवाह करने की आज्ञा नहीं होती।

बड़ों को सीधा उनके नाम से नहीं बुलाया जाता। उन्हें दादा (बड़ा भाई), या दीदी बुलाया जाता है। मेजो भाई का अर्थ होता है मझला भाई, जो बड़ा तो होता है किन्तु सबसे बड़ा नहीं। कोई भी व्यक्ति जो थोड़ा सा भी बड़ा होता है उसके नाम के अंत में दा लगाकर विशेष नाम से बुलाया जाता है जिसका अर्थ है

२३ बांग्लादेश में पति-पत्नि द्वारा प्रेम प्रदर्शित करते के लिये सार्वजनिक रूप से चुम्बन लेने के बारे में सोचा भी नहीं जा सकता।

बड़ा भाई। उदाहरणत: यदि किसी का नाम नृपेन्द्रनाथ है तो उसे नृपेन्–दा, कमल भूषण कमल–दा इत्यादि के नाम से बुलाया जाता है।

सभी पुरुषों के लिए सदाचार है कि वे अपनी पत्नी को छोड़कर अन्य सभी स्त्रियों को माँ कहकर बुलाते हैं। किन्तु अब इसमें समझौता करके पुरुष अन्य स्त्रियों को दीदी सम्बोधित करते हैं जैसा कि अन्य स्त्रियाँ एक दूसरे को करती हैं।

स्त्रियों को अपने सबसे बड़े पुत्र की माँ कहकर बुलाया जाता है। यदि किसी स्त्री के सबसे बड़े पुत्र का नाम गोकुल चन्द्र है तो उसे *गोकुलेर माँ* कहकर सम्बोधित किया जाता है। स्त्री का अपना नाम जैसे भावना, प्रीति या राधिका इत्यादि धार्मिक उत्सवों या आधिकारिक मामलों को छोड़कर शायद ही उपयोग किया जाता है। उसके गाँव दूसरे लोग शायद ही उसके असली नाम को जानते हों।

बंगाली अपने परिवार से बाहर दूसरों के साथ अपने सम्बन्ध बताने के लिए अलग–अलग नामों का उपयोग करते हैं। वे अपने से बड़े से मित्रतापूर्ण सम्बन्ध बनाने के लिए उन्हें मामा, मामी, काका (चाचा), काकी (चाची) इत्यादि कहेंगे। मुस्लिमों में बड़ों को वे चाचा या चाची कहेंगे। छोटे लड़कों को खोका और छोटी लड़कियों को खुकी कहते हैं।

भाषा

भाषा और संस्कृति आपस में जटिलता से जुड़े हैं। बिना स्थानीय भाषा बोले कोई व्यक्ति एक विदेशी ही बना रहता है, और वह उनसे सीधे न तो बात कर सकता है और न ही उनकी जीवनशैली को समझ सकता है। इसलिए हमारे अधिकतर पश्चिम के भक्तों ने जो यहाँ अधिक समय तक रहे, बंगाली सीख ली ताकि वे लोगों के साथ अच्छी तरह घुल–मिलकर रह सकें।

बंगाली भाषा जानने से गौड़ीय वैष्णव संस्कृति के साहित्य के दरवाजे भी खुल जाते हैं। आज बहुत कम बंगालियों को ही इन सांस्कृतिक महान धरोहरों के बारे में पता है। किन्तु श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने भविष्यवाणी की थी कि समय आएगा जब पूरे संसार के लोग *श्री चैतन्य चरितामृत* पढ़ने के

लिए बंगाली सीखेंगे।[२४] आज श्री चैतन्य चरितामृत तथा कई गौड़ीय वैष्णव गीतों तथा कविताओं का अंग्रेजी में अनुवाद किया जा चुका है। फिर भी बंगाली की प्रारम्भिक समझ भी आध्यात्मिक रचनाओं की बारीकियों को प्रकट करती है और इसकी मधुरता की समझ को बढ़ाती है।

अधिकतर भारतीय भाषाएँ विशेषकर बंगाली संस्कृत पर आधारित है। इसलिए संस्कृत की ही तरह बंगाली वेदों के सूक्ष्म दर्शन को प्रस्तुत करने में बहुत ही उचित है। रस-विचार (मुक्तात्माओं का ईश्वर के साथ निजी सम्बन्ध का विश्लेषण) के लिए बंगाली बहुत ही अनुकूल है। आध्यात्मिक जगत में सर्वोच्च सम्बन्ध कृष्ण और वृन्दावन-वासियों और श्रीचैतन्य महाप्रभु तथा उनके पार्षदों का है। उस स्तर पर प्रेम, ज्ञान को लांघ जाता है। ऐसे प्रेमपूर्ण भावों को व्यक्त करने के लिए बंगाली सबसे अधिक अनुकूल भाषा है। यह सटीकता से नि:स्वार्थ प्रेम और भावनाओं को दर्शाती है जो अंग्रेजी या पश्चिमी भाषाओं के लिए संभव ही नहीं है क्योंकि ये भाषाएँ कामुक संस्कृति से अलग नहीं हैं।

जैसा कि महान् गौड़ीय आचार्य श्रील भक्ति सिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने लिखा है:

> गौड़ीय केवल गौड़ (पश्चिम बंगाल) के वासी नहीं हैं अपितु गौड़ीय भाषा (बंगाली) की सहायता से वे नित्य सिद्ध गोलोकवासियों की भाषा में निपुण हो गए हैं और इस प्रकार उन्होंने भगवान् के भक्त के रूप में अपना स्वरूप जान लिया है।[२५]

बंगाली कीर्तन का ढंग भाषा से प्रगाढ़ सम्बन्ध के साथ विकसित हुआ है। जिस प्रकार वे शब्दों का उपयोग और संगीत का प्रयोग करते हैं, वह पूरी तरह से आध्यात्मिक भावों को जगाता, व्यक्त करता और बढ़ाता है। बंगाली में हजारों पदावलियाँ हैं जो कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु और उनके पार्षदों के रूप, लीलाएँ, गुण,

---

२४ श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर - एक महान भक्त और श्रील ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के गुरु।

२५ चैतन्य भागवत की टीका, भूमिका।

भावनाएँ इत्यादि व्यक्त करती हैं।[२६] इनमें से चाहे कुछ भजनों को अंग्रेजी तथा अन्य भाषाओं में अनुवादित किया गया है किन्तु इनके असली रस का आस्वादन उड़िया या मैथिली में ही किया जा सकता है जो बंगाली से बहुत मिलती जुलती हैं। यहाँ तक कि हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में भी यह बात नहीं है।

बंगाली मधुर भाषा के रूप में जानी जाती है। बांग्लादेश में बंगाली के बोलने का ढंग विशेषरूप से शुद्ध है और बाहर की बोलियों से बहुत ही कम प्रभावित है। यदि कोई इसे न भी समझ पाए तब भी वह इसकी सुन्दरता, संगीतमय स्वर की जरूर प्रशंसा करेगा विशेषकर जब यह किसी सुसंस्कृत व्यक्ति द्वारा बोली जाए। शब्दों की लयबद्ध ध्वनि, आदर और स्नेह व्यक्त करती है और भाषा का ढांचा इस प्रकार है कि एक साधारण दिनचर्या की बात भी मन और हृदय को मोहित कर देती है। यह आध्यात्मिक जगत का स्मरण दिलाती है, जहाँ बोलना गान है।

किन्तु जब अशिष्ट लोग झगड़ते हैं, जो अक्सर वे करते हैं, तो यह असभ्य और गन्दा लगने लगता है। नीची जाति की औरतें विशेषरूप से झगड़तीं हैं। ये अपने प्रतिद्वन्द्वी को आवाज, धृष्टता, गालियों और अपनी चातुरी से हराने में अभ्यस्त होती हैं। जब मैंने एक औरत को इस प्रकार गालियाँ देते सुना, ''वह सोचती है कि सूरज उसके चूतड़ों से उगता है।'' मैं अपनी हँसी पर काबू न कर सका। वहाँ की अश्लीलता भी अनोखी है।

बंगाली लिपि भी बहुत आकर्षक होती है। कई बंगाली लिखने में बिन्दियों, अक्षरों की बनावट तथा उनको मिलाने का बहुत ध्यान रखते हैं ताकि यह मोतियों में पिरोई (जैसा चैतन्य महाप्रभु ने रूप गोस्वामी की लिखावट की तुलना की) प्रतीत हो।

हिन्दू धार्मिक जीवन

दस करोड़ से भी अधिक मुसलमानों की आबादी के साथ बांग्लादेश, इंडोनेशिया और पाकिस्तान के बाद तीसरा मुस्लिम आबादी वाला घना देश है।

२६ पदावली कीर्तन – कविताओं के रूप में रचना।

और यह हिन्दू जनसंख्या में दो करोड़ आबादी के साथ दूसरा सबसे बड़ा देश है।[२७] यहाँ कुछ ईसाई और बौद्ध भी हैं। बांग्लादेश में धर्म औपचारिकता से बढ़ कर है। यह प्रत्येक के जीवन में, सामाजिक ढांचे में और देश भावना में मूल शक्ति है। लगभग हर बांग्लादेशी धार्मिक नियमों का किसी न किसी रूप में पालन करता है। पूरे देश में शायद ही कहीं नास्तिक मिले। यदि कहीं हो भी तो दृढ़ सामाजिक दबाव के कारण वह खुलकर नहीं कह सकता। विशेषकर गाँव में हर किसी का सांस लेने की तरह स्वाभाविक रूप से ईश्वर में दृढ़ विश्वास होता है।

मैं एक गाँव में जाया करता था जहाँ एक वृद्ध बंगाली सज्जन ने मुझे अपने पिता द्वारा दी श्रील प्रभुपाद की उक्ति को याद करवाया। वे सज्जन रोज घण्टों अपने छोटे से राधा-कृष्ण के अर्चा-विग्रहों की पूजा करते थे। वे बूढ़े थे और झुक गए थे, उनके सफेद घने बाल थे और बिना छड़ी के चल भी नहीं पाते थे फिर भी वे अडिग थे। किसी को भी अर्चा-विग्रह को भोग लगवाए बिना खाने की आज्ञा नहीं थी। उनकी गाँव में अपनी तांबे की दुकान थी जहाँ वे कुछ घण्टे जाया करते थे किन्तु अधिकतर वे पूजा करके प्रसन्न प्रतीत होते थे।

एक शाम ऐसा हुआ कि उन्हें और मुझे छोड़कर घर में कोई भी नहीं था। उन्होंने श्री चैतन्य चरितामृत की प्रति मेरे हाथ में दी और मुझसे लालटेन की रोशनी में पढ़ने को कहा। पूरा जीवन लगातार पढ़े जाने के कारण ग्रंथ बहुत ही जीर्ण-शीर्ण हो चुका था और अब उनकी आँखों की रोशनी भी लगभग जा चुकी थी, आँखें पलकों तथा सफेद भौंहों से ढक चुकी थीं इसलिए वे पढ़ने में असमर्थ थे। मैंने उनसे पूछा की कहाँ से पढ़ूँ तो उन्होंने कहा, ''कहीं से भी।'' जैसे ही मैंने उच्चारण किया, उन्होंने भी मेरे साथ श्लोकों का उच्चारण शुरु कर दिया और ऐसा प्रतीत होता था कि उन्हें सब जुबानी याद है।

एक अन्य घर जहाँ मैं ठहरा था, उनके सबसे छोटे बेटे का नाम था विष्णु। सारा दिन उसकी माता ''विष्णु, विष्णु, विष्णु'' बुलाती रहती। ऐसा

२७ सरकारी जनगणना के अनुसार हिन्दूओं की जनसंख्या करीब 1 करोड़ है। लेकिन इस देश के पढ़े-लिखे अधिकतर हिन्दुओं का मानना है कि जानबूझ कर हिन्दुओं की संख्या कम बताई गई है। मेरे अनुभव के अनुसार यह सही है क्योंकि मैंने इस देश में काफी भ्रमण किया है और अधिकतर जगहों पर बड़ी मात्रा में हिन्दू देखे हैं।

लगता कि मानो जब तक उनका बेटा बगल में न होता वे प्रसन्न नहीं होती। मुझे *श्रीमद्भागतम्* की अजामिल की कथा का स्मरण हो आया।[२८] वह स्त्री चाहे पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् का स्मरण नहीं कर रही थी, उसे, उसके बेटे और पड़ोस में हर किसी को विष्णु सुनकर लाभ मिल रहा था।

बंगाल में कई कस्बों तथा गाँवों का नाम वहाँ के स्थानीय कृष्ण के अर्चा-विग्रह के नाम पर होते हैं। जैसे गोपालगंज, गोपालदी, नृसिंहदी और माधवदी। पश्चिम बंगाल में कृष्ण नगर नामक स्थान है जो कृष्ण नाम के राजा के नाम पर रखा गया है।

बंगाली समाज में धार्मिक तत्त्व सादे और अशिक्षित लोगों तक सीमित नहीं है। इसका आभास मुझे तब हुआ जब मैं ढाका विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष परेश मण्डल से पहली बार मिला। जब मैं उनके यहाँ पहुँचा तो वे अपने विद्यार्थियों के साथ बैठे थे। मेरे नीचे बैठने के बाद उन्होंने कई नास्तिकतावादी तर्क दिए और पूछा कि हमें क्यों भगवान् को मानना चाहिए और कृष्ण ही भगवान् क्यों हैं। विनम्रता से दस पन्द्रह मिनट प्रश्नों के उत्तर देने के बाद मैं थोड़ा परेशान हो गया और कहा, ''मैं हैरान हूँ, एक विद्वान तथा हिन्दू समाज में आदरणीय होने के बाद आप शास्त्रों को स्वीकार नहीं कर रहे हैं अपितु इन अजीब सिद्धान्तों का समर्थन कर रहें हैं।'' तब उन प्रोफैसर और उनके विद्यार्थियों ने जोर से कहकहा लगाया और मुझे अनुभव हुआ कि हल्के-फुल्के तथा हंसी मजाक में ही सही, किन्तु वे मेरे ज्ञान, विश्वास और धैर्य की परीक्षा ले रहे थे। और उनकी हँसी से मैंने अनुमान लगाया कि मैंने परीक्षा पास कर ली।

प्रत्येक बड़े गाँव में *हरि सभा* होती है।[२९] कम से कम गाँव के लोग सप्ताह में एक बार जरुर इकट्ठे होकर कीर्तन करते हैं और शायद *श्रीमद्भागवतम्* या *श्री चैतन्य चरितामृत* पढ़ते हैं। श्रील प्रभुपाद बताते हैं, ''बंगाल में अभी भी कई ऐसी जगहें हैं

---

२८ अत्यंत पापी होने पर भी अजामिल नरक जाने से बच गया क्योंकि उसने नारायण के पवित्र नाम की उच्चारण किया था। नारायण नामक अपने पुत्र के प्रति आसक्त होने और हमेशा उसका नाम पुकारने के कारण वह ऐसा कर पाया।

२९ हरि - कृष्ण का नाम; सभा - मिलना।

जिन्हें *हरि सभा* कहा जाता है, जहाँ पर वहाँ के स्थानीय लोग इकट्ठे होकर हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करते हैं और भगवान् कृष्ण की लीलाओं की चर्चा करते हैं।[३०]

आठ महीनों के शुष्क मौसम में धर्म सभाएँ प्रचलित रहती हैं। विशेषकर गर्मियों में, लोग पूरी रात घण्टों बैठकर अलग अलग प्रवचन-कर्त्ताओं से धार्मिक विषयों पर प्रवचन सुनते हैं। बांग्लादेश में आज भी राजनीति, स्थानीय मामले, खेल या ऐसे ही इधर-उधर के विषयों की तुलना में धार्मिक विषय ज्यादा रुचिकर तथा ज्यादा भीड़ जुटाने वाले होते हैं।

प्रत्येक औपचारिक वैष्णव समागम चन्दन का लेप लगाने से शुरु होता है। पत्थर को गीला करके उस पर सूखी चन्दन की लकड़ी अच्छी तरह से बार-बार रगड़ी जाती है, इससे धीरे-धीरे एक हलका पीला और खुशबुदार पेस्ट बन जाता है जो लगाने पर बहुत ही ठण्डक देता है। इसे तांबे के एक छोटे से बर्तन में डाल लिया जाता है। तब एक भक्त(पुरुष) इसमें फूल डुबोकर पूजनीय अर्चा-विग्रह की तस्वीरों, ग्रंथों, कीर्तन के लिए उपयोग होने वाले मृदंग और करतालों, सबसे वरिष्ठ भक्तों और अंत में वहाँ पर पधारे सभी भक्तों को लगाता है। पुरुषों को लगाने के बाद यह चन्दन प्रसाद महिलाओं को दे दिया जाता है, इसी तरह एक महिला सब महिलाओं को लगा देती है।

बड़े-बड़े समागमों में समाज का एक वरिष्ठ और प्रभावशाली सदस्य चन्दन लगाने की सेवा लेता है। अधिकतर जिन्हें वह लगाता है वे लोग उन सज्जन को गले लगा लेते हैं और उनसे चन्दन लेकर उन्हें भी लगाते हैं। चन्दन आमतौर पर माथे पर लगाया जाता है किन्तु कई बार विशेषकर प्रभावशाली भक्तों के बाजुओं और छाती पर भी लगाया जाता है।

दुर्भाग्यवश बांग्लादेशियों की भगवान् पर स्वाभाविक श्रद्धा के बावजूद कुछ लोग ही आत्म-साक्षात्कार के लिए गम्भीर हैं और शायद इसलिए भी कि बंगाली संस्कृति लोगों को शांति और सुरक्षा का आभास कराती है। वे महसूस करते हैं कि जीवन इतना बढ़िया चल रहा है और निश्चय ही इस प्रकार जीने में

---

३० चैतन्य चरितामृत मध्य लीला, 1.227 व्याख्या।

क्या बुराई है। बंगाली संस्कृति के इतने उच्च स्तर होने के बावजूद भी यह धर्म के सार को समझने में तब तक मदद नहीं करता जब तक कोई प्रचारक इस बात पर बल न दे कि जीवन गम्भीरतापूर्वक भगवान् को समझने के लिये है। जैसा कि *श्रीमद्भागवतम्* (1.2.10) में वर्णित है: ''जीवन की इच्छाओं को कभी भी भोग की ओर नहीं जाने देना चाहिए। व्यक्ति को स्वस्थ जीवन या मात्र जीवित रहने की इच्छा ही करनी चाहिए क्योंकि मनुष्य जीवन परम सत्य की जिज्ञासा के लिए है। कार्य का और कोई उद्देश्य नहीं होना चाहिए।

मुस्लिम

जल यात्राओं में मैं देखा करता कि मुसलमान चुपचाप अपनी माला पर अल्लाह का नाम जप कर रहे होते। प्रार्थना के समय जैसे दोपहर या शाम के समय वे अपनी नाव के पिछले भाग में चले जाते, अपना बिछौना बिछा लेते, नदी से पानी भर लेते, अपने हाथ और पैर धो लेते और नाव पर ही *नमाज़* अदा करते।[३१] अधिकांश विदेशियों के बिल्कुल विपरीत उन्हें अल्लाह पर विश्वास दिखाने में कोई शर्म नहीं । एक बार शाम के समय जब हम कहीं जा रहे थे तो देहात में खेतों में हमने देखा कि एक युवा बालक अकेला बहुत ही नाटकीय ढंग से धरती पर लेट कर प्रार्थनाएँ कर रहा है।

पूर्वी बंगाल में मुसलमान कई प्रकार से वैदिक संस्कृति का पालन भारत में अधिकतर हिन्दुओं से भी अधिक करते हैं। उदाहरणत: ढाका में हमारे पड़ोस में हमने एक बार देखा कि एक मुस्लिम परिवार, गाँव से आ रहे अपनी जाति के वरिष्ठ सदस्यों के चरण छूने के लिए गली में जा रहा था।

कई बांग्लादेशी मुसलमान इतने सभ्य हैं कि वे हिन्दू साधुओं का भी आदर करते हैं, जबकि उन्हें यह नहीं मालूम होता कि 'विदेशी-हिन्दुओं' से किस प्रकार व्यवहार करें। कई बार जब मैं बांग्लादेश में गाँवों के रास्तों पर चल रहा होता, तो मुसलमान जो साईकिल पर दूसरी दिशा से आ रहे होते वे आदरभाव

---

३१ नमाज़ - मक्का की ओर प्रणाम करते हुए मुसलमानों द्वारा प्रतिदिन पाच बार की जाने वाली प्रार्थनाएँ।

से साईकिल से उतर जाते। उस समय मैं बीस के आसपास का था जबकि वे मेरे दादा की उम्र के होते। किन्तु सुसंस्कृति उनमें इतनी बस गई है कि वे उतर कर मुस्लिम तहजीब से आदर प्रकट करने के लिए अदब से प्रणाम करते।

सन् 1971 में स्वतंत्रता युद्ध में, नरसंहारक पश्चिमी पाकिस्तानी पंजाबी मुसलमान सिपाहियों ने विशेषकर हिन्दुओं को मारा किन्तु उन्होंने लाखों बांग्लादेशी मुसलमानों को भी मार डाला। उनका तर्क था कि, ''ये मुसलमान नहीं हैं। इनकी भाषा हिन्दू लिपि में है और अधिकतर संस्कृत का बहुत प्रभाव है। इनके रीति-रिवाज हिन्दू हैं।'' यहाँ तक कि बांग्लादेश में शायद ही कोई मुसलमान अपने दिए हुए नाम का उपयोग करता है जैसे — मनजुरुल ख़ान की जगह वह हिन्दू के घरेलू नाम कमल या दिलीप से जाना जाता है।

मुसलमानों में एक अन्य प्रथा जो हिन्दू संस्कृति से ली गई है वो है 'ज्योतिष'। जो इस्लाम में मनाही के बावजूद भी अपनाई जाती है। कई बांग्लादेशी मुसलमान राजनीतिज्ञ और व्यापारी महत्वपूर्ण फैसले लेने से पहले ज्योतिषी से सलाह लेते हैं। हिन्दुओं की ही तरह विवाह से पहले ज्योतिष परामर्श जरुर लिया जाता है।

किन्तु कुछ बांग्लादेशी मुसलमान अरबी शैली को अपनाना चाहते हैं और वे बांग्लादेश में अपने हिन्दू पूर्वजों (क्योंकि बंगाल में मूलत: हिन्दुओं से ही मुसलमान बने हैं) की जीवनशैली को पसंद नहीं करते। विशेषरूप से मूलभूत मुसलमान बांग्लादेश में मुसलमानों के बीच गुरुओं की सफलता पर दु:ख जताते हैं। कुछ मुस्लिम धार्मिक नेताओं, जिन्हें पीर कहा जाता है और जो आर्शीवाद और परामर्श देते हैं, का आदर हिन्दू गुरुओं की ही तरह होता है।

मैंने मुसलमानों को अल्लाह की प्रशंसा में कीर्तन करते हुए देखा है, भले ही यह अल्लाह के लिए है, किन्तु इस्लाम में गाना-बजाना मना है। किन्तु यह बंगाली जीवन का इतना हिस्सा बन चुके हैं कि इस्लाम द्वारा संगीत पर पाबंदी किसी न किसी ढंग से नहीं मानी जाती। नाटक भी इसी तरह से इस्लाम में मना है किन्तु बंगाल में यहाँ तक कि मुसलमानों में भी यह जीवन का केन्द्र है।

फिर भी मुसलमानों तथा हिन्दुओं की आदतों और पहरावे में बहुत अन्तर है। सबसे मुख्य है मुसलमान गौ हत्या करते हैं किन्तु हिन्दू इसे महापाप मानते हैं। वे कई अन्य चीजें भी विपरीत करते हैं। उदाहरण के तौर पर केले का पत्ता, जो बड़ा, सीधा और लगभग आयाताकार होने के कारण प्राकृतिक पत्तल का काम करता है। हिन्दू केले के पत्ते की पत्तल में गहरे हिस्से को ऊपर की ओर रखते हैं जबकि मुसलमान नीचे की ओर। और बाल्टी और डिब्बे से नहाते समय हिन्दू सिर से शुरु करते हैं जबकि मुसलमान पैरों से।

जब मैं बांग्लादेश में नया था तो हमने एक बार सरकार के उच्च अधिकारियों से एक बैठक रखी, और गलती से सोचा कि वे हमारे प्रचार कार्यों से प्रसन्न होंगे। जब हमने उनको कहा कि हमारा आंदोलन बंगाली संस्कृति का प्रचार पूरे संसार में कर रहा है तो उन्होंने उत्तर दिया,''हाँ, किन्तु बांग्लादेशी संस्कृति का प्रचार नहीं हो रहा।'' वे अन्तर बना रहे थे चाहे उस समय बांग्लादेश बने दस साल भी नहीं हुए थे।

संगीत और कीर्तन

व्यवहारत: बंगाल की सारी आबादी ही संगीत पसंद करती है। बंगालियों के लिए विशेषकर सीधे-साधे गाँव वाले के लिए बिना किसी आडम्बर के कोई भी समय या स्थान गाने के लिए अच्छा है। नाविक विशेषकर अपनी नाव को खेते समय ऊँचा गाने के लिए विख्यात है । एक बार ढाका में रिक्शा पर जाते समय, मैं धीरे से एक भजन गुनगुनाने लगा और रिक्शा चलाने वाला बड़ी सी मुस्कान लेकर पीछे की ओर मुड़ा। मुझे गाता देखकर वह बहुत खुश हुआ।

बांग्लादेशियों में दृढ़ धार्मिक विश्वास और संगीत के प्रति प्रेम स्वाभाविक होता है इसलिए उनके लिए संगीत और गाने के द्वारा ईश्वर से नाता बनाना स्वाभाविक है। चैतन्य महाप्रभु का आन्दोलन चाहे सृष्टि में हर प्राणी के लिए है किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि यह विशेषकर बंगालियों के लिए उचित है जो उत्साह तथा भावना से ओत-प्रोत हैं और सहज ही एक साथ हँसते तथा रोते हैं।

चैतन्य भागवत् में वर्णन है कि पूर्वी बंगाल का सौभाग्य था कि चैतन्य महाप्रभु के पूर्वी बंगाल पहुँचने पर उनका भव्य स्वागत हुआ और वहाँ के वासी

आज भी श्रीकृष्ण संकीर्तन करते हैं। यह सौभाग्य कम से कम हिन्दुओं में ही सही, आज भी दिखाई देता है। निस्सन्देह चरित्रहीन ढोंगी 'गुरुओं' द्वारा काल्पनिक मन्त्र भी आ गए हैं, फिर भी बंगाल में सबसे अधिक प्रचलित हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, महामन्त्र का कीर्तन है।

अन्य वैष्णव मत चाहे मन्दिर में पूजा पर बल देते हैं किन्तु गौड़ीय रीति कीर्तन पर केन्द्रित है। बंगाल में विमोहित कर देने वाला कीर्तन होता है जिसे शब्दों में बताना मुश्किल है। उदाहणत: गाने के मध्य में एक पंक्ति को समझाने के लिये दूसरा गाना शुरू हो जाता है। और पूरा गाना समाप्त करने के बाद, गायक वापिस मूल रचना पर आता है और इस प्रकार विस्तृत रूप से कई लयों को एक साथ करके मन को मोहित करने वाले रस, तत्त्व, भाव, सुर और ताल का संगम कर देते हैं। बंगाल में कुशल संगीतज्ञ भारतीय संगीत की जटिलताओं पर घण्टों चर्चा कर सकते हैं वह भी संस्कृत के तकनीकी शब्दों में जो एक आम आदमी की समझ से भी बाहर है।

कई बार हम शाम को गाँव पहुँचते तो उस समय वहाँ के लोग कीर्तन कर रहे होते जबकि उन्हें नहीं पता होता था कि हम उनके यहाँ आ रहे हैं। एक बार मैं सिल्हट कस्बे के एक आश्रम में कार्तिक के महीने में कुछ दिन ठहरा, जब वैष्णव विशेष नियमों का पालन करते हैं और कई कीर्तन सम्मेलन होते हैं। मैं शाम के समय अलग-अलग घरों में जाता और जब मैं वापिस आश्रम में पैदल या रिक्शा पर आता तो मुझे वैष्णव मन्दिरों तथा घरों से कीर्तन की आवाज सुनाई देती जहाँ भक्त इकट्ठे होकर भगवान् का गुणगान कर रहे होते। जैसे ही एक कीर्तन की ध्वनि कानों में आनी कम हो जाती तो दूसरी शुरु हो जाती। यह तब तक चलता रहता जब तक मैं रात के 11 बजे अपने आश्रम न पहुँचता।

दुर्भाग्यवश कई पारम्परिक बंगाली कीर्तन शैलियाँ लुप्त हो चुकी है। फिर भी जो कुछ भी बचा है वह अद्भुत और मन को भाने वाला है। जब मायापुर गुरुकुल के बालक विशेष बंगाली शैली में हरे कृष्ण महामंत्र गाते तो श्रील प्रभुपाद बहुत खुश होते।[३२] किन्तु उन्हें दूसरी आम बंगाली तकनीक पसंद न थी

३२ मायापुर – श्री चैतन्य महाप्रभु का जन्मस्थान और इस्कॉन के विश्व मुख्यालय की जगह।

जिसमें बनावटी ढंग से गाने में हरे कृष्ण महामन्त्र को इतना लम्बा कर दिया जाता कि हरे कृष्ण इसमें गुम ही हो जाता। प्रभुपाद इसे 'चिल्लाना' कहते।

लगभग हर गाँव में उच्च स्वर की बंगाली शैली में गाने में कोई न कोई निपुण व्यक्ति अवश्य होता है। सुबह घरों में गाने और हारमोनियम के अभ्यास की आवाजें आना आम बात है। बांसुरी बजाना भी प्रचलित है। सस्ती बांस की बांसुरियाँ शहर की गलियों तथा स्थानीय मेलों में बेची जाती हैं। यहाँ तक कि बड़े शहरों में भी एक व्यक्ति को बांसुरी बजाते हुए जाते देखना अजीब नहीं है। बंगाली संगीत में अन्य वाद्य वायलिन और एकतारा भी प्रचलित हैं।

कई हिन्दू गाँवों में कम से कम दो या तीन बहुत ही अच्छे मृदंग बजाने वाले जरुर होते हैं। एक असली उस्ताद मृदंग के दो सिरों में से सौ से भी अधिक ध्वनियाँ निकाल सकता है। एक मृदंग बजाने वाले को हम जानते हैं जो मृदंग को 'हरे कृष्ण' बुलवा सकता है। कई पाँच या छः साल के बालक, जिनके हाथ मृदंग के सिरों तक भी मुश्किल से पहुँचते हैं, मृदंग में बहुत कुशल होते हैं। जब मैं बांग्लादेश में नया नया था तो मैं यह देखकर दंग रह गया कि मन्दिर में कीर्तन में एक छोटा बच्चा आराम से करताल को इतने अद्भुत ढंग से बजा रहा था कि मैंने पहले कभी ऐसा न सुना और न ही सोचा था।

हमारा ढाका का आश्रम कीर्तन स्थली बन गया। कुछ भक्त जो हमें सहयोग कर रहे थे, संगीत में निपुण थे और किसी भी समय हारमोनियम, मृदंग और करताल के साथ अद्भुत कीर्तन करने लग जाते थे। शाम का समय कीर्तन के लिए मुख्य समय था जब बाहर से लोग आते और हमारे मन्दिर का छोटा सा कमरा पूरी तरह से भर जाता। कीर्तन धीमी ताल और सौम्य ढंग से शुरु होता और धीरे-धीरे तेज हो जाता। या कई बार यह एकदम तेज हो जाता और ताल बदल जाती।

ओह नाचना और कूदना! यह बहुत ही शानदार होता है। हम घण्टों एक साथ मिलकर गाते। हमारा पूरा शरीर और हमारे कपड़े पूरी तरह से पसीने में भीग जाते और हमें इस बात का भान भी नहीं रहता। कई बार ऐसे कीर्तनों के

बाद मुझे अपनी धोती निचोड़नी पड़ती। इसके बाद हम उस इमारत की छत पर जाकर रात की ठण्डी हवा लेने जाते। अंततः देर रात में आराम करते समय भी मृदंगों की सुमधुर ताल और सुन्दर लय मन में गूँजती रहती।

पश्चिमी ईसाई मिशनरी कई बार अपने बंगाली बन्धुओं के उच्च स्वर में गाने और बजाने पर सतर्क हो जाते हैं कि कहीं ये दोबारा 'पुराने गैर-ईसाई' तौर तरीकों की ओर तो नहीं मुड़ रहे। आदर्श ईसाई ईश्वर तक पहुँचने के लिए गम्भीर रहते हैं किन्तु बंगाली के हिसाब से ईश्वर पूजा उत्साह पूर्वक करनी चाहिए। बंगाली ईसाई मृदंग और करताल के साथ ईश्वर की पूजा नहीं छोड़ सकते।[३३]

सिल्हट जिले में मणिपुरी वैष्णवों का एक समुदाय रहता है जो कुछ सौ वर्षों पूर्व यहाँ पर आ बसे थे। वे गौड़ीय वैष्णवता का अपने स्थानीय ढंग से पालन करते हैं। वर्ष में किसी निश्चित समय पर वे अनुष्ठान करते हैं जिसमें बच्चे राधा-कृष्ण और गोपियों की तरह कपड़े पहनकर बहुत ही सुन्दर ढंग से भजनों पर नृत्य करते हैं।[३४] मणिपुरी थोड़े बहुत चीनियों की तरह दिखते हैं: उनके गौर-निताई अर्चा-विग्रहों की भी तिरछी आँखें और मन को मोहित कर देने वाली सुन्दरता होती है।

बंगाली कीर्तन की तुलना में मणिपुरी कीर्तन अधिक सूक्ष्म किन्तु कम तीव्र होता है। मणिपुरी कीर्तन बहुत ही जटिल लयों और विस्तृत दीर्घ ताल के साथ कोमल और मन को छूने वाला होता है। बंगाली कीर्तन में मुख्यतः दो ताल या तीन ताल अपनाए जाते हैं किन्तु मणिपुरी कीर्तन अक्सर बहुत ही जटिल होता है कि इसकी ताल पकड़ना भी मुश्किल हो जाता है। कई बार 14वीं ताल पर बल दिया जाता है। मणिपुरी एक प्रकार का साज उपयोग करते हैं जो मृदंग की तरह

३३ बांग्लादेश में हमारे शुरुआती दिनों में एक हिन्दू नेता ने हमें बताया कि बांग्लादेश में जहाँ कहीं पाश्चात्य भक्त जाते हैं, वहाँ पर हिन्दुओं के ईसाई बनने की प्रवृत्ति पूरी तरह खत्म हो जाती है। जब हिन्दू ग्रामीण लोगों को पता चलता है कि कृष्णभावनामृत पूरे संसार में फैल रहा है और पश्चिमी ईसाई इसे स्वीकार कर रहे हैं, तो उन्हें अपनी संस्कृति और भी गर्व होता हैं और कई भौतिक प्रलोभन (गरीब देशों में ईसाई बनाने के लिये आमतौर पर प्रयोग किया जाता है) मिलने पर भी वे इसे नहीं छोड़ते।

३४ गोपी - गोप बालाएँ। वृंदावन की दिव्य गोपियाँ भगवान् कृष्ण की माधुर्य लीलाओं में प्रमुख हैं।

दिखता है, किन्तु यह लकड़ी का बना होता है जबकि मृदंग मिट्टी से बना होता है। और यह साज मृदंग की तुलना में कम ध्वनि देता है। मणिपुरी कीर्तन उनकी अपनी भाषा में किया जाता है, जो बंगाली कीर्तन से बहुत ही अलग होता है।

वैष्णव संस्कृति में नाम यज्ञ महत्वपूर्ण कार्य है। प्रत्येक बांग्लादेशी हिन्दू चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाएँ जानता है कि कलियुग का युग धर्म है — नाम यज्ञ। अखण्ड कीर्तन, जिसमें समूह बारी-बारी से बदलते रहते हैं, पूरा दिन, तीन दिन या सात दिन तक चलते रहते हैं। दुर्भाग्यवश ये कीर्तन यज्ञ लाभ कमाने का साधन बन गए हैं। ऐसे व्यपारियों के समूहों में इस बात की होड़ होती है कि कौन सबसे भड़कीला, बड़ी भीड़ जुटाने वाला और लोगों को खिलाने वाला कीर्तन करता है। पेशेवर कीर्तन दल पवित्र नाम के द्वारा मनोरंजन का व्यापार चलाते हैं।

पहले नाम यज्ञ छोटे स्तर पर केवल धार्मिक उद्देश्य के लिए किया जाता था। गायक स्थानीय निवासी होते, जो नाम कीर्तन करने और सुनने का आनन्द लेते। इसके प्रबन्धक प्रसन्नतापूर्वक हर किसी को बिना किसी दिखावे के खिलाते। ऐसे नाम यज्ञ आज भी कई गाँवों में होते हैं जहाँ लोग ऐसे पेशेवरों को पैसा देकर बुलाना नहीं चाहते या धन देने में समर्थ नहीं हैं या फिर स्वयं ही नाम कीर्तन करना चाहते हैं।

बंगाली लोग नाटक को भी बहुत पसंद करते हैं। विशेषकर गाँव में गर्मियों में पूरी रात यह आयोजन चलता रहता है। वे संवाद बहुत ही अच्छी तरह से प्रकट करते हैं, मुद्राएँ भी व्यवस्थित होती हैं और आवाज कारुणिक और भावभीनी होती है। कलाकार अविश्वसनीय ढंग से भड़कीले वस्त्र पहनते हैं और श्रृंगार करते हैं। मुझे पूरी नाट्य शैली हंसी से भरी लगती है, किन्तु बंगाली इसे बहुत ही गम्भीरता से लेते हैं। मंच सादा या खुला मैदान होता है। कुछ संगीतकार नाटक के पीछे संगीत देने के लिए होते हैं जो धीरे-धीरे गाते हैं।

भोजन

नदियों द्वारा वार्षिक बाढ़ से आई मिट्टी से बंगाल की भूमि काली और उपजाऊ बन जाती है। उपजाऊ मिट्टी, भरपूर वर्षा और गर्म तापमान पूरे क्षेत्र

को तरोताजा और हरा-भरा कर देता है। यह हरी-भरी भूमि कई प्रकार के पत्ते, कोंपले, जड़ें, डंठल, लताएँ और फूल इत्यादि उत्पन्न करती है। इनमें से कुछ अपने आप उग जाते हैं तो कुछ उगाए जाते हैं। और ऐसा लगता है मानो यह कभी समाप्त ही नहीं होंगे। उदाहरण के लिए शाक (पत्तेदार) बहुत ही पौष्टिक और बंगाल का पसंदीदा व्यंजन है जिसकी कम से कम तीस किस्में हैं। कुछ को उगाया जाता है और अन्य अपने आप उग जाती हैं जिन्हें नदियों के तट तथा जंगलों से इकट्ठा किया जाता है।

बांग्लादेश में सालों यात्रा करने के बाद भी जब भी मैं वहाँ जाता हूँ तो मुझे कोई न कोई ऐसी सब्जी मिल जाती है जिसे मैंने पहले कभी देखा-सुना नहीं होता या फिर प्रचलित सब्जी को अप्रचलित ढंग से बनाया जाता है। बांग्लादेशी विभिन्न प्रकार की सब्जियों को मिलाने में निपुण होते हैं। ऐसा लगता है मानो इन पकवानों का कोई अंत ही नहीं है। इनके पकाने के ढंग बहुत ही साधारण होते हैं, किन्तु यह स्वाभाविक ही स्वादिष्ट होते हैं क्योंकि चीजें (जब मैं वहाँ था) अच्छी भूमि में उगाई जाती हैं, जिसमें किसी भी प्रकार की खाद या कीड़ेमार दवाइयों का उपयोग नहीं किया जाता।

आर्थिकता के सीमित स्त्रोत होने के बावजूद बंगाली कई प्रकार के पकवानों को पसंद करते हैं। पहले नियमित भोजन होता था — चावल, दाल और तीन सब्जियाँ जिसमें एक सूखी, दूसरी गीली और तीसरी न गीली न सूखी होती। इसके अतिरिक्त पापड़, चटनी या अचार भी दिया जाता था। भोजन के पन्द्रह मिनट बाद दूध के साथ फल या खीर दी जाती। यह कम समृद्ध परिवारों में भी नियमित भोजन था।

'दाल-चावल खाना' का अर्थ होता था कि परिवार बहुत ही दरिद्र है। अधिकतर लोग चाहे इतने गरीब नहीं हैं और कम से कम इन वर्षों में कोई भी भूखा नहीं रहता, फिर भी कुपोषण फैला हुआ है। बच्चों के फूले पेट, दुबले अंग— सिलिअक बीमारी के लक्षण, एक लम्बा पुराना कुपोषण—एक आम दृश्य है।

जहाँ कुछ लोग ही भरपूर भोजन कर सकते हैं, वहाँ मोटापा प्रतिष्ठा और स्वास्थ्य की निशानी माना जाता है। बांग्लादेश में यदि कोई 'स्वस्थ' दिखता है तो पश्चिमी दृष्टिकोण से बहुत ही मोटा माना जाएगा।

चावल बंगालियों का मुख्य भोजन है और इसे उनके जीवन और संस्कृति से अलग नहीं किया जा सकता। यह सुबह, दोपहर और रात को खाए जाते हैं। अब कई शहरी लोग रात के समय चावल की जगह चपाती खाते हैं, किन्तु आदर्श बंगाली भोजन में ढेर सारे चावल और बगल में थोड़ी सी कोई और चीज़। सब्जियों या दाल को बहुत ही तेज छौंक लगाया जाता है इसलिए बहुत सारे चावलों के साथ थोड़ी सी सब्जी या दाल ली जाती है। आमतौर पर पके हुए चावल दोपहर और रात को खाए जाते हैं। एक ग्रास खाते खाते बंगाली दूसरा ग्रास हाथ से चावल, दाल या सब्जी मिलाकर बनाते जाते हैं। वे कहते हैं इससे भोजन और स्वादिष्ट बन जाता है। सुबह ग्रामीण लोग अक्सर पंतभात (बचे हुए पिछले दिन के चावलों को पूरी रात पानी में भिगो कर रख दिया जाता है, सुबह ये थोड़े खट्टे हो जाते है) खाते हैं। पंतभात नमक और मिर्च के साथ लिया जाता है या थोड़ी बहुत तरी इत्यादि के साथ। इसकी तासीर ठण्डी होती है इसलिए यह सर्दियों या मानसून में नही लिया जाता।

भोजन की आदतें अधिकतर धंधे पर निर्भर करती हैं। कार्यालय जाने वाले सुबह ज्यादा नहीं खाते, जबकि खेतों में काम करने वाले मजदूर दिन में चार बार ढेर सारे चावल खा सकते हैं। कद-काठ में छोटे होने पर भी गाँव के लोग खेतों में भरपूर मेहनत करते हैं और भारी चीजें उठाते हैं। उनकी भूख उनके परिश्रम पर निर्भर करती है।

कई सूखे चावल के पकवान जैसे मूरी, चिड़ा और खोई बंद डिब्बों में रखे जाते हैं और कभी भी खाए जा सकते हैं। मूरी बनाने के लिए चावलों को पहले छिलके समेत उबालकर धूप में सुखाया जाता है और फिर कढ़ाई में गर्म रेत में भूना जाता है। रेत बिल्कुल काली हो जाती है और जैसे ही चावल गर्म होने लगते हैं तो ये फूलते जाते हैं। चावलों के फूलने के बाद छलनी से रेत हटा ली जाती है। ये पश्चिम के कुरकुरे चावलों की तरह हो जाते हैं किन्तु ये स्वभावत:

सफेद होते हैं। यदि ये ताजे बने हुए खाए जाएँ तो इनका सुगंधित स्वाद कई महंगे पकवानों को मात देता है। खोई भी इसी प्रकार बनाया जाता है किन्तु ये कुरकुरा न होकर नर्म होता है।

चावल को चिरा में भी बदला जाता है। चावल को पहले उबाला जाता है और फिर छिलका निकालकर लकड़ी की ओखली में दबाकर सपाट कर दिए जाते हैं और अंत में सुखाकर संभाल लिए जाते हैं। यदि पानी में थोड़ी देर भिगो कर रख दें तो बिना पकाए ही चिड़ा खाया जा सकता है।

मूरी, खोई और चिड़ा अक्सर गुड़ के साथ लिया जाता है और यह गाँव की पसंदीदा मिठाई होती है। यदि इनमें गर्म दूध या मीठी दही और साथ में कुछ ताजा पीसा हुआ नारियल तथा अदरक मिला दिया जाए तो साधारण सामग्री से बने होने के बावजूद यह शाही नाश्ता बन जाता है। पिसे नारियल में मिले गुड़ के लड्डू गाँव की दूसरी पसंदीदा मिठाई होती है।

ऐसी ही दर्जनों साधारण किन्तु सुस्वादु व्यंजनों में से एक है — दाल बोरि। जिसमें भिगाई हुई दाल को कुछ मसालों के साथ पीसकर पेड़े बना लिए जाते हैं और फिर इन्हें धूप में सुखा लिया जाता है। तली हुई बोरि सब्जियों में और गीली दाल में मिलाई जाती हैं।

नदियों और तालाबों का देश होने के कारण, बंगाल मछलियों से भरा है। और बंगाली लोग मछली खाने के लिए प्रसिद्ध भी हैं। गरीबी चाहे अधिकतर लोगों को शाकाहारी भोजन खाने के लिए मजबूर करती है किन्तु जो सक्षम हैं वे चावल, दाल और सब्जियों के साथ माँस और मछली खाते हैं। जब हमारे भक्त पहली बार बांग्लादेश गए तो वहाँ वैष्णव और गुरुओं के लिए भी मछली खाना आम और स्वीकार्य था। अब यह बदल चुका है। कई बांग्लादेशी हिन्दुओं ने अपने जीवन की आदतों को बदल लिया है और लोग जान चुके हैं कि एक सच्चा वैष्णव मछली या अन्य माँस इत्यादि नहीं खाता।

यदि अचानक मेहमान आ जाएँ और मेजबान उन्हें विशेष भोजन करवाना चाहता है तो उन्हें प्रतीक्षा के लिए कहा जाता है और बहुत ही जल्दी पूरियाँ तल

ली जाती हैं। तले हुए आलू या बैंगन भी पूरी के साथ दिए जाते हैं जो स्वादिष्ट होते हैं और जल्दी बन जाते हैं।

आमतौर पर कम तेल में तला जाता है जो कि स्वास्थ्य के लिए अच्छा और सस्ता भी होता है। पारम्परिक रूप से सरसों के तेल में चीजें तली जाती थीं किन्तु आजकल कई लोग इसके लिए समर्थ नहीं होते इसलिए वे बाहर के सस्ते सोयाबिन तेल और ताड़ के तेल का उपयोग करते हैं। इसे अब बहुत लोग उपयोग करते हैं किन्तु यह कम स्वादिष्ट होता है।

अधिकांश बंगाली रोजमर्रा के जीवन से संतुष्ट रहते हैं। फिर भी उत्सवों या विशेष अतिथियों के लिए औरतें कई पकवान बनाने में प्रसन्नता अनुभव करती हैं। ऐसे विस्तृत भोज में —जो अक्सर हम जहाँ जाते, हमें दिए जाते — बंगाली ढंग है कि ढेर सारे चावलों के बगल में थोड़ी-थोड़ी मात्रा में अन्य व्यंजन। विशेष भोज में दो या तीन तले हुए पकवान, कटु सब्जी, शायद दो या तीन प्रकार की शाक और दो या तीन प्रकार की सब्जियाँ होती हैं। या कई प्रकार की सब्जियाँ थोड़ी थोड़ी मात्रा में दी जाती है।

बंगाली दूध की मिठाईयाँ पूरे भारत में सुविख्यात हैं। यह कई प्रकार की होती हैं जैसे रसगुल्ला, रसमलाई, चमचम, रबड़ी, शरभाजी और कई प्रकार के संदेश इत्यादि।

कई मिठाइयों के नाम होते हैं जलखाबर (पानी पियो)। बंगाल में गर्म जलवायु के कारण यह आम है कि यात्री स्थानीय गाँव वालों से पानी मांगते हैं। परम्परा यह थी कि पहले अकेला पानी नहीं साथ में मिठाई भी दी जाती थी। आज भी कई समृद्ध घरों में अतिथि को पानी के साथ मिठाई भी दी जाती है। कई लोग परम्परा बचाए रखने के लिए पानी के साथ चीनी के कुछ दाने देते हैं।

मिश्री-दही आनन्द देने वाली मिठाई है, जो मीठे दूध में खट्टा दही लगाकर बनाई जाती है। और सर्दियों की पसंदीदा है गर्म दूध को तब तक धीमी आंच पर उबाला जाता है जब तक उसमें मलाई न आ जाए और इसे चीनी या खजूर के गुड़ के साथ लिया जाता है। किन्तु अब दूध इतना सुखद नहीं जितना

पहले होता था। एक वृद्ध सज्जन ने मुझे बताया कि जब वह छोटा था तो गाँव में दूध बेचा नहीं जाता था, क्योंकि हर किसी के पास भरपूर दूध होता था। यदि किसी को अधिक चाहिए होता तो वह अपने पड़ोसी से माँग लेता।

दक्षिणी बंगाल में नारियल और खजूर भरपूर मात्रा में होते हैं। सर्दियों में खजूर के पेड़ों से इनके तने में छेद करके इसमें लकड़ी की नली डाल कर रस निकाला जाता है। यह मीठा रस पेय के रूप में लिया जा सकता है, किन्तु यह जल्दी ही सड़ कर खट्टा होने लगता है इसलिए रस को उबाल कर गुड़ बना लिया जाता है जिसे बहुत मात्रा में बनाया जाता है। किन्तु सबसे मीठा गुड़ पामयरा रस से आता है, और सबसे स्वादिष्ट खजूर के रस से। पिसे और तले नारियल में खजूर के गुड़ को मिलाने मात्र से (जो बहुतायत उपलब्ध हैं) अवर्णनीय स्वादिष्ट मिठाई बन जाती है।

गर्म दिनों में डाब (कच्चे या थोड़े पके नारियल) का पानी प्यास मिटाने के लिए सबसे अच्छा है। कच्ची डाब में गूदा नहीं होता किन्तु इसमें हल्का नमकीन पानी होता है। कच्ची डाब अधिक ठण्डक देने वाली होती है और इसमें अमूल्य इलैक्ट्रालाईटस होते हैं जो पसीने में बह जाते हैं। थोड़े पके डाब में क्रीम और जैल की तरह सफेद गूदा खोल के साथ चिपका होता है और पानी भी मीठा होता है। कुछ डाब के ऊपर छुरे से दक्षता के साथ छेद कर देते हैं ताकि पानी पिया जा सके। इसके बाद डाब को आधा फाड़ दिया जाता है और इसके बगल से खोल का छोटा सा टुकड़ा काटकर चम्मच बना लिया जाता है जिससे इसका गूदा खाया जा सके।

मुझे याद है एक बार मैं लम्बी गर्म यात्रा से जब एक गाँव पहुँचा तो एक घर के आँगन में, जहाँ मुझे ठहरना था, मेरे मेजबान ने मुझे छाया में लकड़ी की कुर्सी पर बैठाया। उनका लगभग आठ साल का बालक आया और बिना कहे मुझे प्रणाम करने लगा। तब पिता ने उससे कहा कि डाब लेकर आओ। इसके लिए वह तुरन्त पास के 15 फुट ऊँचे नारियल पेड़ पर चढ़ गया। तीन या चार तेजी से चोट करने के बाद शांति छा गई और फिर कुछ क्षणों बाद हरी मिसाइल तेजी से नीचे गिरती नजर आईं, धड़ाम की आवाज के साथ, वे लुढ़कती हुई गिर पड़ी और रुक गईं। गर्मी से राहत देने के लिए दो काफी थीं।

अन्य प्रसिद्ध पेय है शरबत। कई गाँवों के घरों के आँगन में नींबू का पेड़ होता है जिससे कभी भी नींबू तोड़े जा सकते हैं। इसके रस को चीनी और ठण्डे पानी में मिलाया जाता है और कई बार थोड़ा सा नमक भी डाला जाता है। यह बहुत ही ताजगी देने वाला और विशेषकर गर्म दिनों में शक्ति देने वाला होता है।

पाक-कला (पकाना)

विशेषकर बंगाली गाँवों में रसोई छोटी मिट्टी की दीवारों से बनी होती है जिसमें एक चूल्हा होता है। यह चूल्हा भूमि में एक छेद मात्र होता है जिसके चारों ओर थोड़ी से मिट्टी लगा दी जाती है। आमतौर पर खाना लकड़ी या उपले में आग जलाकर बनाया जाता है। इस प्रकार बनाने से खाने में एक खास स्वाद आ जाता है जो कोयले, गैस या बिजली के चूल्हे से कभी नहीं आ सकता। गाय के उपले से सबसे अच्छा स्वाद आता है। बर्तन अधिकतर एल्यूमीनियम के होते हैं, जबकि पहले तांबे के बर्तन प्रयोग होते थे। पकाने से पहले बर्तन के बाहर चारों और मिट्टी लगा दी जाती है ताकि आग की कालिख बिना ज्यादा रगड़े आसानी से हटाई जा सके।

रसोई का सारा काम फर्श पर किया जाता है इसमें कोई भी सिंक या विशेष उपकरण नहीं होते। सब्जियाँ एक प्रकार की दात्री से काटी जाती हैं जिसे एक पैर के नीचे दबाकर रखा जाता है जबकि सब्जियाँ इस पर दबाकर काटी जाती हैं। खाना बनाने के लिये सीधी-सादी चीजों, घड़ों और बर्तनों का उपयोग करते हैं जो पश्चिम के रसोइयों को मालूम भी नहीं होगा। अलग-अलग प्रकार के बर्तन विभिन्न प्रकार के पकवानों के लिए उपयोग में लाए जाते हैं। कढ़ाई तलने और सब्जियाँ बनाने के काम आती है। इन साधारण व्यवस्था से ही बंगाली औरतें अनन्त प्रकार के पकवान बना सकती हैं जो अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्ध पाक निपुण की तुलना में गुणवत्ता और स्वाद में कहीं बढ़िया होता है। एक महिला ने मुझे बताया कि वह कोचू की सब्जी, पत्ते, डंठल और जड़ों के साथ बत्तीस प्रकार से बना सकती है।

घर की औरतें आमतौर पर इकट्ठे मिलकर खाना बनाती हैं और संयुक्त परिवार के सदस्यों को एक साथ परोसती हैं। क्योंकि वे नियमित रूप से अधिक मात्रा में

बनाती हैं, और खाना हमेशा थोड़ा ज्यादा होता है इसलिये वे हमेशा अचानक आये अतिथि का स्वागत करके आनन्द अनुभव करती हैं। और यदि कभी कम पड़ जाए तो जो महिला अंत में खाती है वह अक्सर अपने हिस्से का परोस देती है और अगले भोजन में ज्यादा खा लेती हैं। या वे दाल को पतला कर चावल और बना लेती हैं या शीघ्रता से बनने वाले व्यंजन बनाती हैं जैसे तले हुए बैंगन या आलू।

अतिथि

बंगाली ग्रामीण अतिथियों का स्वागत करके बहुत ही प्रसन्न होते हैं। शहरी आधुनिक लोगों की तरह उनके पास ज्यादा बहलाव के साधन नहीं होते, वे अन्य लोगों के साथ रहकर ही खुश हो जाते हैं। हमारे दल की यात्रा के दौरान लोग हमारे रहने, खाने और सेवा करने में बहुत ही कष्ट सहन करते। बंगाली और हिन्दू संस्कृति में 'अतिथि नारायण' महत्वपूर्ण सिद्धान्त है। कई बार हम अपने मेजबान को कहते, ''ओह! आप हमारी देखभाल में बहुत कष्ट कर रहे हैं।'' तो वे प्रसन्नता से कहते, ''अरे बिल्कुल नहीं। यह तो हमारा सौभाग्य है। कृपया हमें क्षमा कर दें, हम आपकी अच्छे से देखभाल नहीं कर पा रहे। जब कोई अतिथि आता है, तो ऐसा लगता है मानो हमारे घर ईश्वर ही आ गया हो।'' जब अतिथि जाने लगते तो मेजबान उन्हें और रुकने को कहते या फिर कहते कि फिर आइएगा।

अपने अतिथि की सही से सेवा करने के लिए बंगाली किसी भी प्रकार से तैयार रहते हैं ताकि अतिथि की अच्छी तरह से आवभगत हो। उनके लिए यह प्रतिष्ठा का सवाल होता है। जो दूसरों का ढंग से स्वागत नहीं करता वह महत्वपूर्ण व्यक्ति नहीं है। जो व्यक्ति या परिवार दूसरों का जितने ही अच्छे ढंग से स्वागत करता है उतना ही उसका समाज में प्रभावशाली रुतबा होता है। अपितु लोगों में यह आम बात है कि वे मेजबानी करने में अपने सामर्थ्य से अधिक करते हैं और ऋण की परवाह भी नहीं करते।

हमें अनुभव है कि किस प्रकार मेजबान मेहमानों की, विशेषकर वैष्णवों की, खातिरदारी करते थे। लोग स्वयं ही आते और हमें हाथ से पंखा करने लगते।

एक बार मैं एक गाँव में बहुत ही गर्मी में पहुँचा। दोपहर के भोजन के बाद मैं आराम करने के लिए लेट गया। एक लड़के को मुझे पंखा करने के लिए कहा गया क्योंकि बहुत गर्मी थी और पंखे के बिना नींद आना संभव नहीं था। मैंने उससे कहा मुझे जब तक नींद न आए केवल तब तक पंखा करना, किन्तु जब मैं एक घण्टे से भी अधिक सोने के बाद उठा तो वह तब भी धैर्य से पंखा कर रहा था।

बंगालियों को अपने अतिथियों को उनकी संतुष्टि या उससे भी अधिक तक खिलाना पसंद है। उनका मत है कि यदि अतिथि अच्छी तरह से खा रहा है तो इसका अर्थ है वह भोजन का आनन्द ले रहा है। बंगाली अतिथि को अधिक खाने के लिए उत्साहित करने में निपुण होते हैं। अलग-अलग प्रकार के व्यंजनों को थोड़ा-थोड़ा परोसते हुए वे कहते हैं, ''यह बहुत स्वादिष्ट है, आपको यह बहुत पसंद आएगा। और यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।'' यदि कोई रोके, ''अब पेट भर चुका है।'' तो वे हंसी में कहते हैं, ''अरे! ये भोजन को पचाने के लिए है।''

यदि मेहमान न कहता है तो वे उसकी आवाज से समझ जाते हैं कि उसकी असली इच्छा क्या है। यदि उन्हें थोड़ा सा भी संकेत मिलता है कि मेहमान थोड़ा और खाना चाहता है तो मेजबान उसे और परोस देता है। इसलिए जब कोई सचमुच और नहीं चाहता तो उसे अपनी पत्तल मोड़ लेनी चाहिए या उठ खड़े होना चाहिए। जब हम बांग्लादेश में किसी के घर जाते तो मेजबान को हमें भोजन परोसना अच्छा लगता था क्योंकि उन्हें मुश्किल से ही किसी साधु की सेवा करने का अवसर मिलता और वे हमें इतना परोस देते कि हम पूरा खा भी न पाते। वे और अधिक देते जाते कि बाद में हमारी थाली में इतना बच जाए कि प्रसाद रूप में पूरे गाँव में न सही किन्तु परिवार में दूसरों को दिया जा सके।[३५] लोग खाना समाप्त करने से पहले ही उच्छिष्ट के लिए निवेदन करने लगते। यह चाहे सही नहीं है, किन्तु यह अच्छे स्वभाव के उत्साह में छुप जाता।

३५ हिन्दू परंपरा में साधुओं का उच्छिष्ट ग्रहण करना बहुत धार्मिक माना जाता है जिससे कई महान वरदान प्राप्त होते हैं। गौड़ीय वैष्णव, विशेष रूप से बांग्लादेश में, इस प्रथा का अच्छे से पालन करते हैँ।

स्वास्थ्य और गुह्य विषय

गाँववासी आमतौर पर भरपूर ताजी हवा, ताजे भोजन के साथ भरपूर शारीरिक काम करते हैं और इस प्रकार मजबूत और स्वस्थ रहते हैं। बंगाली चाहे ज्यादा बलवान नहीं होते किन्तु वे सारा दिन कड़ी धूप में कठिन परिश्रम कर सकते हैं। कई पुरुष और स्त्रियाँ बुढ़ापे में भी काम करते रहते हैं, उदाहरणतः गाय दोहना, खेतों की देखभाल या आँगन की सफाई इत्यादि। उन्हें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं होती किन्तु उनमें इतनी शक्ति होती है कि वे काम करना चाहते हैं।

एक बार एक बूढ़ा, काला और भयंकर चेहरे वाला व्यक्ति मेरे पांव छूने लगा। उसके जीवनभर के बुरे कर्मों को लेने की बजाए मैंने भागना उचित समझा। पर उसने दृढ़ संकल्प लेकर मेरा पीछा किया। मैंने सोचा कि वह बूढ़ा है और जल्द ही थक जाएगा किन्तु ऐसा नहीं हुआ। गाँव को छोड़ने या उसे समर्पण करने के अलावा मेरे पास और कोई चारा नहीं था। उसने मजबूती से मेरी एड़ियाँ पकड़ ली कि मुझे दर्द होने लगा। बूढ़ा होने के कारण वह झुक चुका था और कई झुर्रियाँ थीं किन्तु अभी भी उसमें पूरी ताकत और दम था।

बंगाल के कस्बों और बड़े गाँवों में योग्य डॉक्टर होते हैं किन्तु बाकी देश में बहुत ही कम। ग्रामीण क्षेत्र में स्वास्थ्य मुख्य रूप से इस बात पर आधारित रहता है कि आप किस प्रकार प्रकृति के नियमों के अनुसार रहते हैं। स्वस्थ रहने के लिए सही से खाना आम बात है जैसे कौन सा भोजन शरीर को ठण्डा या गर्म करता है। दिन के अलग अलग समय में क्या खाना चाहिए। कौन सा भोजन पेट साफ करता है या रोकता है वगैरह वगैरह।

बांग्लादेशियों में रोज उनकी आंत और पेट की हालत जैसे विषयों पर चर्चा होती है। विशेषकर उनका मल कैसा आ रहा है यह गाढ़ा है या पतला, कौन से रंग का है और धीरे आ रहा है या जल्दी इत्यादि।

मूल चिकित्सा की आवश्यकताएँ घर पर ही पूरी कर ली जाती हैं। हर दादी जानती है कि किस प्रकार छोटी मोटी बीमारियाँ और जख्म यहाँ तक कि घुटनों का दर्द और बुखार की गम्भीर स्थितियों में कैसे इलाज करना है। उदाहरण

के लिए उन्हें पता रहता है कि पेट खराब होने पर कौन कौन से पौधे का सत्त लेना है। एक गाँव में जब हमारे भक्तों में से एक को गम्भीर दस्त लग गए तो एक वृद्ध महिला खेतों में गई और कुछ जड़ी बूटियाँ ले आई। उसने इनका रस पत्थर पर निकाला, जो हर बंगाली की रसोई में होता है, और उस भक्त से कहा पी जाओ। दस मिनट में ही वह ठीक हो गया।

काजल लालटेन की कालिख और तेल मिलाकर बनाया जाता है। यह बच्चों और स्त्रियों की आँख में ठण्डक देने और शृंगार के लिए लगाया जाता है। माताएँ बुरी नजर से बचाने के लिए भी बच्चों के चेहरे पर काजल का टीका लगा देती हैं।

फूंक मारना पारम्परिक तौर पर सब बीमारियों को ठीक कर देती है। एक बार मेरे जोड़ ठण्ड से अकड़ कर दर्द करने लगे। एक स्थानीय महिला थोड़ा सा सरसों का तेल ले आई। उसने कुछ मंत्र पढ़े और मुझे दर्द पर मलने के लिए दिया और फिर तीन बार जोड़ों पर फूंक मार दी। सारी अकड़न और दर्द उसी समय गायब हो गया।

चोरों को ढूंढने के लिए तांत्रिक तरीका शानदार और स्वीकार्य है। एक बार ढाका में हमारे आश्रम से कुछ पैसे चोरी हो गए। हमने अनुमान लगाया कि अपराधी इन दो रहने वालों में से एक होगा। किन्तु दोनों में से कौन? तो कुछ स्थानीय भक्तों ने तांत्रिक को बुलाया। जिन पर शक था और अन्यों को उसने मंत्र पढ़े हुए कुछ कच्चे चावल दिए। उसने कहा कि वे इन्हें दो या तीन मिनट चबाएँ और उसके द्वारा रखी अखबार पर थूक दें। निश्चित ही चावल टूटे और थूक में मिले हुए थे। किन्तु जिन दो पर हमें शक था उनमें से एक के मुँह से मुश्किल से टूटे हुए और बिल्कुल सूखे हुए चावल निकले। इस प्रकार हर किसी ने निष्कर्ष निकाला कि वह अपराधी है।

पशु और कीड़े

20वीं शताब्दी के आरम्भ में बंगाल घने जंगल से ढका था जहाँ चीते, जंगली सुअर, हाथी और अन्य खतरनाक जानवर घूमते थे। अब अधिकतर जंगलों का सफाया हो चुका है और 80 प्रतिशत भूमि पर खेती की जाती है। दूर दक्षिण में जहाँ गंगा कई जल धाराओं में विभाजित होकर समुद्र में मिल जाती

है, वहाँ कई निर्जन द्वीपों पर घने सदाबहार जंगल हैं। और बर्मा की सीमा पर पहाड़ी संकरे रास्तों पर घने जंगल हैं। आजकल सांपों के अलावा इन जंगलों में खतरनाक जंगली जानवर कम ही मिलते हैं।

गाँव के पालतू जानवरों में बकरियाँ, बिल्लियाँ, मुर्गियाँ और दुबली गायें जो पश्चिम के कुत्तों से बड़ी नहीं होतीं, शामिल हैं।

बांग्लादेश के कुत्ते, जो उपमहाद्वीप में आम हैं, न तो पालतू होते हैं और न ही पूरी तरह से जंगली। वे गाँवों या कस्बों में लोगों के निकट रहते हैं। पर भारत में बड़ी संख्या में पाए जाने वाले दयनीय आवारा कुत्तों की अपेक्षा यहाँ कुत्ते कम हैं, शायद इसलिए भी कि कुत्ते इस्लाम में घृणित माने जाते हैं। गाँवों में उन्हें कुछ जूठन फैंक दी जाती है और आँगन या घर के बाहर सोने दिया जाता है। आमतौर पर इन्हें यहाँ सहन किया जाता है। पर इन्हें पालतू नहीं बनाया जाता और न ही कोई नाम दिया जाता है। पश्चिम की तरह 'इन्सान का सबसे अच्छा मित्र' बनाने का प्रश्न ही नहीं उठता।

मोटे-गन्दे तिलचट्टों का समूह रात को रसोई और शौचालय में इकट्ठा हो जाता है। इसी प्रकार भयंकर हरी छिपकलियाँ दीवारों और छतों पर कीड़ों के पीछे तो कई बार संभोग के लिए दौड़ती रहती हैं। कई बार वे फर्श पर छपाक! से गिर जाती हैं। इन्हें टिक टिक आवाज निकालने के कारण *टिकटिकी* कहा जाता है। बंगालियों का विश्वास है कि यदि किसी व्यक्तिके कुछ कहने के बाद *टिकटिकी* आवाज करती है तो वह उसकी बात का अनुमोदन करती है। इन्हीं स्मृतियों में से एक आम दृश्य है जब *टिकटिकी* तिलचट्टे के पीछे रुक रुक कर उसका शिकार करने के लिए दौड़ती है। यदि छिपकली किसी तरह से तिलचट्टे को पकड़ लेती है, तो वह संघर्ष करते उस जीव को धीरे-धीरे अपने जबड़े को बड़ा करते हुए निगल जाती है। पूरा निगल जाने के बाद विजेता छिपकली के फूले हुए पेट में तिलचट्टे का आकार दिखाई देता है।

वर्षा के मौसम का अर्थ है चींटियों का मौसम। उनके घर बाढ़ से जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं, और ये चींटियाँ मनुष्यों के घरों में शरण लेती हैं। उनका निरन्तर

यहाँ वहाँ जाना लगातार परेशानी का कारण बन जाता है क्योंकि वे चादरों, पलंगों, कपड़ों और भोजन यहाँ तक कि मनुष्यों के शरीर को भी मार्ग बना लेती हैं।

वर्षा ऋतु के बाद मक्खियों का मौसम आ जाता है। गधीपोकस नामक बड़ी मक्खियाँ साल के इस समय बहुत ज्यादा हो जाती हैं। ये रात को आ जाती हैं और लालटेन के पास इकट्ठी होकर बादल सा बना लेती हैं। क्योंकि इनके शरीर इनके पंखों से बड़े होते हैं, इसलिए ज्यादा देर नहीं उड़ सकतीं और अक्सर नीचे गिर जाती हैं। इधर उधर घूम कर फिर से उड़ने का प्रयास करती हैं। किन्तु वे उड़ नहीं पातीं और हर सुबह इन छोटे जीवों के मृत शरीरों के ढेर को बाहर फैंका जाता है।

बंगाल में बहुत से साँप हैं और साँप के डसने से मौत होना कोई बड़ी बात नहीं है। लोग खेतों में काम करते या चलते समय अचानक साँप पर पैर रख देते हैं और उन्हें साँप काट लेता है। वर्षा के मौसम में जब साँपों के बिल पानी से भर जाते हैं तो वे अन्न भण्डारों या घरों में घुस जाते हैं। मुस्लिम फकीरों को साँप के काटने पर मन्त्र से इलाज करना आता है।

जब बंगाली गाँव में किसी को भयंकर साँप दिखाई देता है तो वह गरुड़! गरुड़! गरुड़! (भगवान् विष्णु के वाहन और साँपों के महान् शत्रु से सहायता लेने के लिए) तब तक चिल्लाता है जब तक कि खतरा टल न जाए। साँप को उनकी पूँछ से पकड़कर, उसे घूमाना बंगाली गाँव में बच्चों का खेल है। मुझे नहीं मालूम कि वे यह कैसे करते हैं, किन्तु वे बहुत ही निडर होते हैं। उन्हें यह भी मालूम होता है कि साँप के सिर पर धीरे से बार-बार किस प्रकार छड़ी से मारना है कि उसकी मौत हो जाए। इसके बाद मरे हुए साँप को काट कर जला दिया जाता है। नहीं तो यह कहा जाता है कि यह दोबारा जिन्दा हो जाता है या इसका साथी आकर मरे हुए साँप की आँखों में हत्यारे को देखकर बदला लेता है।

एक भक्त ने मुझे एक बार आँखों देखी बात बताई। एक साँप को मार दिया गया किन्तु उसे जलाया नहीं गया। अगले दिन दोपहर के समय उसी घर में बाहर दरवाजे पर दस्तक हुई। घर में सभी को इस घड़ी दस्तक होना अजीब लगा, क्योंकि इतनी गर्मी में हर कोई अपने घर में ही रहता है। घर के व्यक्ति ने दरवाजे

के साथ की खिड़की से देखा तो कोई नहीं था किन्तु दरवाजे के नीचे एक कोबरा था, जो शायद मरे हुए साँप का साथी था और अपने सिर से दस्तक दे रहा था।

बिच्छु दुर्लभ ही हैं। बंगाल में अपने वर्षों के दौरान मुझे केवल दो ही दिखाई दिए जिन्हें मैंने उसी समय अपने जूते से मार डाला।

गाँव बनाना

बांग्लादेश में जोतने योग्य अधिकतर खेती को छोटे-छोटे पारिवारिक खेतों में बाँट लिया गया है। स्वामित्व लोगों को गाँव में रखता है या शहरों में धकेल देता है। यहाँ तक कि यदि परिवार के पास भूमि का छोटा सा टुकड़ा हो, तो यह घर बनाने के काम आता है, इसी से आदर बनता है, पहचान बनती है और स्थायी जीवन-निर्वाह की आशा बंधती है।

दो या तीन फसलों में चावल हर जगह मुख्य हैं और जो हर साल उगाए जाते हैं। सब्जी और प्रोटीन का मुख्य स्त्रोत दालें हैं और दूसरी सबसे महत्वपूर्ण फसल है। गहरे पीले सरसों के फूल साधारण और सुन्दर दृश्य है। सरसों, बीजों के लिए उगाई जाती है, जिसका उपयोग मसाले की तरह और तेल बनाने के लिए किया जाता है। यह बंगालियों के पकाने का पसंदीदा साधन है। जूट मुख्य नकदी फसल है और पूरे विश्व की आधी से ज्यादा जूट बांग्लादेश में पैदा होती है।

कई समृद्ध गाँव के परिवारों का अपना ही छोटे घरों का समूह होता है। हर विवाहित भाई के परिवार का एक घर होता है या शायद एक कमरे के साथ खाना बनाने इत्यादि के लिए जगह होती है। खास बंगाली गाँव के घर में मिट्टी की दीवारें होती है और छत फूस की। यह विलासितपूर्ण बेशक न हो किन्तु रहने के लिए सुखदायी है। मोटी दीवारें ऐसे घरों को गर्मियों में ठण्डा और सर्दियों में गर्म रखती हैं।

घर के चारों ओर आंगन, बच्चों के खेलने के लिए और शाम को सभी के आराम करने के लिए होता है। यहाँ कपड़े, दाल, चावल भी सुखाए जाते हैं। और आँगन में ही एक छोटे से मचान पर तुलसी का पौधा लगा होता है।

गाय के गोबर में पानी मिलाकर औरतें अपने घर को साफ करती हैं। प्रत्येक सुबह वे घर की दीवारों और फर्श पर गोबर को पोछे से लीपती हैं। मैंने एक बार एक ईसाई महिला को इस प्रकार घर साफ करने को गंदा, अज्ञानपूर्ण और पिछड़ा हुआ कहते हुए आलोचना करते सुना। किन्तु असल में गाय के गोबर में एंटीसैप्टिक, स्वच्छ और शुद्ध करने वाले तत्त्व होते हैं जिसे आज आधुनिक विज्ञान ने भी मान्यता दे दी है। और इसकी गंध मन को भाने वाली होती है न कि बदबूदार। जहाँ भी गाय का गोबर लगाया जाता है, वहाँ मक्खियाँ नहीं भिनभिनाती। यह अद्भुत खाद और खाना पकाने का ईंधन है। भारत के हर गाँव में औरतें गाय का गोबर इकट्ठा करती हैं और हाथ से उपले बनाकर पेड़ के तने या दीवारों पर धूप में सुखाने के लिए डाल देती हैं।

लोग आमतौर पर फर्श, या फर्श पर चटाई इत्यादि बिछाकर बैठते हैं। इसके अलावा कहीं कहीं पुराने ऊन से बनी बैंच या कुर्सियाँ होती है। अधिकांश घरों में बहुत ही कम फर्नीचर होता है। सर्दियों और मानसून को छोड़कर लोग चाहे वे अन्दर सोएँ या बाहर, फर्श पर चटाई बिछाकर सोते हैं या फिर साधारण लकड़ी के पलंगों पर सोते हैं। पलंगों पर सोने से साँपों का खतरा कम होता है। घर क्योंकि छोटे होते हैं इसलिए सामान रखने के लिए पलंग उपयोगी होते हैं।

अपने खेतों के अलावा अधिकतर परिवारों के पास अपने घर के निकट छोटा सा बगीचा होता है, जिसके हर इंच का उपयोग सब्जियाँ, पूजा के लिए फूल, मसाले और औषधियाँ, विशेषकर मिर्च और धनिया पत्ते उगाने में किया जाता है। वे इसमें फलों के पेड़ भी लगाते हैं, इनमें अधिकतर केला, आम, कटहल, नारियल, नींबू और पपीते के होते हैं। कद्दू और लौकी की लताएँ दीवारों पर फैल जाती हैं। यह बहुत ही प्रशंसनीय है कि गाँव के लोग किस प्रकार छोटी सी जगह पर इतना कुछ उगा लेते हैं।

बहुत ही निर्धन लोगों को छोड़कर सभी परिवारों के पास कुछ न कुछ कीमती सामान होता है जिसे वे लोहे की पेटी या अलमारी में संभाल कर रखते हैं। आर्थिक तंगी में सुरक्षा के लिए परिवारों के पास छुपाए हुए गहने और आभूषण होते हैं, जिन्हें शायद ही कभी दिखाया या बात की जाती है, किन्तु

मुश्किलों में इसे बेचा या गिरवी रखा जाता है या फिर अगली पीढ़ी को दे दिया जाता है। ऐसे खजाने को घर के ही फर्श में दबाकर रखा जाता है और दूसरे परिवार के सदस्यों को इसके बारे में पता भी नहीं होता। नोट और बैंक में पैसा रखना अविश्वसनीय मानकर गाँववासी सदैव अपनी बचत को कीमती धातुओं और गहनों में संजो कर रखते हैं, चाहे अब स्वभाव बदल रहा है।

आजकल अधिकतर गहने केवल स्त्रियाँ पहनतीं हैं, किन्तु पहले जमाने में पुरुष भी गहने पहनते थे। विवाहित स्त्रियों को गहने, कम से कम पांजेब, बालियाँ और नथनी, पहनना जरुरी है। अधिक गहने वे सिर्फ विवाह आदि अवसरों पर ही पहनतीं हैं।

अधिकांश लोग जीने के लिए संघर्ष करते हैं, फिर भी बांग्लादेश में सब गरीब नहीं हैं। कुछ जमींदारों की विस्तृत सम्पति है और कई समृद्ध व्यापारी भी हैं। समृद्ध हिन्दू पुरुष आमतौर पर आम लोगों की तुलना में शानदार और अच्छी सूती धोतियाँ पहनते हैं और कुछ लगातार पान चबाते रहते हैं। उन्हें बाबू कहा जाता है और उनके पास कई नौकर होते हैं। ये बहुत ही प्रभावशाली और बहुत ही आदरणीय होते हैं।

पूरे बंगाल में ही दस्तकारी होती है और हर क्षेत्र की इसमें अपनी ही विशेषता होती है। तंगेल साड़ियों के लिए, नतौर विशेष प्रकार की दूध से बनी मिठाइयों के लिए, बेंत से बने फर्नीचर के लिए सिल्हट जिला प्रसिद्ध है। एक प्रकार की घास से, जो विशेषकर सिल्हट जिले में ही उगाई जाती है, चटाइयाँ बनाई जाती हैं। जो लम्बी गर्मियों के मौसम में बैठने या सोने में ठण्डी होती हैं। ढाका असाधारण महीन कपड़े के लिए विख्यात था। किन्तु अंग्रेजों ने वहाँ के जुलाहों के अंगूठे काट दिए कि वे अंग्रेजी मिलों के साथ मुकाबला न कर पाएँ।

गाँव में दुकान आमतौर पर जुगाड़ करके बनाई होती है जिसका ढांचा टेढ़ा-मेढ़ा होता है। ये दुकानें हर प्रकार का सामान बेचती हैं। अधिकतर इन वस्तुओं की कीमत एक अमरीकी डालर से भी कम होती है। यहाँ किसी भी प्रकार का फास्ट फूड नहीं होता किन्तु गाँव की दुकानों में बिस्किट और चना चूर (भुजिया) इत्यादि जरूर बिकता है।

सप्ताह के अंत में लगने वाले बाजार पहले से ही अव्यवस्थित कस्बे में और भी गड़बड़ी फैला देते हैं। इधर-उधर अपनी चटाई या कपड़े पर सामान बिछाकर बैठे फेरी वाले दूसरी जगहों की दवाइयाँ, औषधियाँ, कीमती मसाले जैसे इलायची और लौंग, जंगली शहद, नकली गहने, कला की विभिन्न वस्तुएँ और घर के बने हुए सीधे साधे खिलौने लगाए होते हैं। बेचने वाले कर्कश आवाज में अपनी चीजों के लिए पुकार रहे होते हैं और लम्बे समय तक चिल्लाने के कारण उनकी आवाज फट चुकी होती है। सब बीमारियों का इलाज करने की राम-बाण दवाई बेचने वाले आम होते हैं जो चमत्कार का दावा करके भारी भीड़ इकट्ठी कर लेते हैं। गाँववासी एक दूसरे को धक्का देकर देखने की कोशिश करते हैं और मोल-तोल करके कुछ पैसे में खरीद लेते हैं।

बंगाल में खरीदारी का अर्थ है मोल-तोल करना। आमतौर पर एक विदेशी के लिए ऐसा करना बड़ा मुश्किल होता है। क्योंकि यह मानना स्वाभाविक है कि बेचने वाला चीज़ का दाम ज्यादा बताकर ठगने की कोशिश कर रहा है। किन्तु यहाँ ऐसा ही है। दुकानदार पहले वस्तुओं जैसे सेब, सब्जियाँ, बर्तन, थैला या जो कुछ भी हो, का दाम यह सोचकर अधिक बताता है कि खरीददार इसका कम दाम देगा। इसके बाद दुकानदार फिर थोड़ा सा कम कर देता है किन्तु इस दाम पर भी खरीदार लेने से मना कर देता है। इस प्रकार वे तब तक मोल-भाव करते रहते हैं जब तक दोनों एक दाम पर सहमत न हो जाएँ। यदि खरीदार दुकानदार के अंतिम दाम पर संतुष्ट न हो तो वह अपनी किस्मत कहीं और परखता है। यह एक प्रतिस्पर्धा होती है कि ग्राहक दाम कितना कम करवा सकता है। इससे जीवन में एक मजा भर जाता है, किन्तु एक गरीब देश में जहाँ एक एक पैसा कीमती है, वहाँ यह एक खेल नहीं।

जीवन-दर्शन

महावदान्य (दयालु) चैतन्य महाप्रभु बंगाल में प्रकट हुए, किन्तु दुर्भाग्यवश अधिकांश बंगाली उनके आशीर्वाद को गम्भीरता से नहीं लेते। अपितु वे मांस खाते हैं और ढोंगी अवतारों की पूजा करते हैं। इसलिए वे गरीबी, बाढ़, बवण्डर, ज्वारभाटा और महामारियों आदि के रूप में घोर पापकर्मों के फल को भोगते हैं।

अधिकांश बांग्लादेशी अपना पूरा जीवन केवल जीने की जरुरतों को इकट्ठा करने में ही गुजार देते हैं और हमेशा बर्बादी के कगार पर होते हैं। जलवायु में उलट-फेर, राजनीतिक उठा-पठक और 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का कानून और भी अनिश्चितता फैला देता है। इतनी महान संस्कृति होने के बावजूद लम्बे कठिन परिश्रम और जीवन निर्वाह की जरूरतों के पूरी न होने के भय ने धोखाधड़ी, झूठ और शोषण को बढ़ावा दिया है और यह सब आज आधुनिक बांग्लादेश के जीवन का हिस्सा बन चुके हैं। भूमि के लिए लड़ाई और बलपूर्वक काम साधारण बात है। किसी को नहीं पता कि कल क्या होगा किन्तु आशंका होती है कि कल कष्ट आएँगे। हिन्दू दूसरे दर्जे के नागरिक माने जाते हैं इसलिए और भी ज्यादा दुःख भोगते हैं और आसानी से शोषण हो सकने वाले अल्पसंख्यक हैं।

बांग्लादेश स्वतंत्रता लड़ाई के भयंकर दौर में कोई भी सुरक्षित नहीं था। लगभग दस लाख, अधिकतर निहत्थे लोग मार्च से दिसम्बर 1971 में मार डाले गए। किसी भी समय पाकिस्तानी सेनाएँ कस्बे या गाँव में आ जातीं और तबाही मचा देतीं। सैनिक विशेषकर हिन्दू गाँवों को निशाना बनाते, लोगों को घरों से बाहर घसीटते, उनके गले काट देते, औरतों का बलात्कार करके उनका गला दबा देते और इस प्रकार के कई घिनौने अपराध करते। बांग्लादेशी को एक आम पूछा जाने वाला प्रश्न है कि आपके पिता जी क्या काम करते हैं और अक्सर उत्तर मिलता है कि वे *गंडगोल शॉमॉय* (उपद्रव के समय) चल बसे।[३६] अक्सर मुझे लोग बहुत ही दर्दनाक कहानी बताते, किन्तु अधिकतर इस बारे में बात भी नहीं करना चाहते थे।

छोटी उम्र में मौत होना कोई बड़ी बात नहीं है। जब किसी बांग्लादेशी से उसके भाई या बहन के बारे में पूछा जाता है तो वे अक्सर कहते हैं, ''हम तीन भाई थे किन्तु बड़ा भाई दो साल की उम्र में दस्त से मर गया।'' असमय मृत्यु से रिश्तेदार थोड़े समय के लिए बहुत ही दुःखी हो जाते हैं किन्तु फिर जीवन उसी

---

३६ युद्ध समाप्त होने के बाद स्वतंत्र राष्ट्र बनने के बाद भी कई साल तक बांग्लादेश अस्त-व्यस्त रहा। जमीन हड़पने और राजनैतिक मौकापरस्ती के कारण समस्याएँ और बढ़ गईं। 1974 में भयंकर बाढ़ ने फसलें नष्ट कर दीं और इसके कारण बड़े पैमाने पर सूखा पड़ा। इसके कारण पूरे संसार में टीवी देखने वालों के दिमाग में बांग्लादेश नाम की मतलब गरीबी और भुखमरी बन गया।

तरह चलने लगता है। किन्तु एक स्त्री जिसने अपना पति या बच्चा खोया है वह सारा जीवन उदास रहती है। पुरुष कठोर हृदय नहीं होते, किन्तु वे उदासीन होकर मुश्किलों को स्वीकार कर लेते हैं। यदि कोई स्त्री अपना पति खो दे तो आमतौर पर उसके पिता या भाई उसकी और उसके बच्चों की देखभाल करते हैं।[३७] फिर भी कई अकेली औरतें अपने बच्चों को स्कूल भेजने और जीवन में उन्हें अपने पैरों पर खड़ा करने के लिए कड़ा संघर्ष करती हैं।

कष्टों को स्वीकार करने में बांग्लादेशियों का शान्त स्वभाव होता है जो उन्हें हर प्रकार की विपत्तियों में टिके रहने में सहायता करता है। टाली न जा सकने वाली आपदाओं में समर्पण, संतुष्टि और भगवान् की दया के लिए धन्यवाद की भावना मिली होती है। ऐसे हालातों, जिन्हें कोई विदेशी शायद ही सहन कर पाए, में रहकर भी वे विदेशियों की तरह अधिक व्याकुल नहीं होते। अपनी आजीविका के लिए घोर संघर्ष उन्हें कठोर और कटु नहीं बनाता। अपितु वे धीर और आत्मविश्वासी बन जाते हैं कि जो कुछ भी होगा वे सहन कर लेंगे। आन्तरिक लचीलापन उन्हें घोर विपत्तियों में भी घबराने नहीं देता। इस लिए बांग्लादेश के गाँववासी, तकनीकी रूप से विकसित देशों में रह रहे अपने समृद्ध भाइयों की तुलना में अधिक प्रसन्न और मनोवैज्ञानिक रूप से दृढ़ हैं। यहाँ तक कि बांग्लादेश के पागल भी प्राय: खतरनाक पागल न होकर खुशमिजाज पागल होते हैं और शायद ही उन्हें बन्द किया जाता है।

बांग्लादेश के गाँव में जीवन धीरे चलता है। लोगों के पास एक दूसरे के लिए समय होता है। समय कम ही महत्वपूर्ण होता है। एक एक मिनट की गिनती और सटीकता की कोई आवश्यकता नहीं होती। समय को लगभग सूर्य की स्थिति से ही सुनिश्चित किया जाता है। यदि किसी गाँव वाले से कहो, ''आप कब आएँगे?'' वे बिल्कुल सटीक समय नहीं बताएगा, अपितु कहेगा, ''दोपहर को,'' या कभी भी। समय ब्रह्म मुहर्त, देर सुबह, मध्याह्न, दोपहर और संध्या इत्यादि में बाँटा जाता

---

३७ बांग्लादेशी संस्कृति में ''अकेली माँ'' का अर्थ विधवा होता है, तलाकशुदा नहीं। हिन्दू संस्कृति में जिस स्त्री के पति की असामयिक मृत्यु हो जाए, वह अपने पिता के घर लौट जाती है। लेकिन अगर उसके रिश्तेदार बाढ़ में बह गये हों या भारत चले गये हों तो अकेली माँ को खुद ही गुजारा करना पड़ता है।

है और कुछ बांग्लादेशी थोड़ा और समय निश्चित करने की आवश्यकता महसूस करते हैं। कस्बों के जीवन, स्कूल, फैक्टरियाँ और दफ्तर में भी समय का अनुशासन अस्पष्ट ही होता है। यदि किसी कस्बे में रहने वाले को कहा जाए, ''आप कब आएँगे?'' तो वे कहेगा, ''चार बजे के आसपास।'' किन्तु इसका अर्थ लिया जाएगा कि ''चार बजे के बाद'' क्योंकि समय की पाबंदी बंगाली जीवनशैली का अंग नहीं है। यह कोई अजीब बात नहीं कि बांग्लादेशी कहे गए समय से एक या दो घण्टे देरी से आ रहा है। जबकि विदेशों में इसे लापरवाही और निरादर माना जाएगा। किन्तु बांग्लादेश में देरी से आना स्वीकार्य है। अपितु महत्वपूर्ण व्यक्ति अक्सर अपना महत्व दिखाने के लिए जानबूझकर कार्यक्रम में देरी से आते हैं कि दूसरे लोग उसकी प्रतीक्षा करें और वह दूसरों की प्रतीक्षा नहीं करे।

विदेशियों को सुस्त जीवन अक्सर परेशान कर देता है जिसे वे आलस समझेंगे। किन्तु उनकी चिन्ता भरी और व्यस्त जीवनशैली बांग्लादेशियों को पागलपन लगेगी। एक बांग्लादेशी के लिए विदेशियों के लिए निरन्तर काम में लगे रहने को समझना मुश्किल है। बंगाली घर में किसी के आने पर यह आशा की जाती है कि वह थोड़ा समय रुकेगा, बैठकर बात करेगा और थोड़ा जल-पान लेगा। सिर्फ भागदौड़ नहीं, जो बांग्लादेशी मेजबान को रूखा लगेगा और वह समझेगा कि मेहमान को उनके प्रति कोई सम्मान नहीं और यह असामाजिक है।

विदेशी ऐसा जीवन जीना चाहते हैं जो विभिन्नताओं और उन्माद से भरा हो जबकि बांग्लादेशी पारम्परिक जीवन पसंद करते हैं, लगभग उसी तरह जैसे उनके साथी करते आ रहे हैं। या फिर वैसे जिस प्रकार उनके पूर्वज अनन्तकाल से करते आ रहे हैं। अक्सर जब कुछ मिशनरी या तथाकथित समाजसेवी बांग्लादेशियों को कुछ नया जैसे खेती की आधुनिक तकनीक, सिखाने की कोशिश करते हैं, तो वे इसे चुनौती देते हैं, ''आप इसे इस तरह से क्यों करना चाहते हैं? क्या आप सोचते हैं कि आप हमारे वंशजों से महान हैं, जो हजारों वर्षों वे इस तरह करते आ रहे हैं?'' इस प्रकार विषय ही समाप्त हो जाता है।

आमतौर पर बांग्लादेशी, विशेषकर गाँववासी इस बात को पसंद नहीं करते कि उनके अपने लोगों ने अलग या आधुनिक जीवनशैली अपना ली है।

आजकल चाहे बांग्लादेश के कस्बों में कई पुरुष विदेशी पहरावे के पैंट और शर्ट पहनते हैं और अंग्रेजी बोलने को प्रतिष्ठा मानते हैं किन्तु वे पूरी तरह से विदेशी रंग में नहीं रंगना चाहते। आज भी स्त्रियों का आधुनिक और अधिक आकर्षक ढंग से पहरावा पहनना अनुचित माना जाता है। किन्तु समकालीन ढंग बंगालियों को भी प्रभावित कर रहे हैं; इसलिए बांग्लादेश के शहरों में औरतों का विदेशी ढंग से पहरावा मान्य होता जा रहा है।

ज्यादा आधुनिक बांग्लादेशी अब व्यक्तिगत कार्यक्षमता, उपलब्धियों और स्पर्धा पर आधारित विकास और सफलता की विदेशी धारणाओं को अपना रहे हैं। किन्तु आज भी अधिकतर बांग्लादेशियों की कम ही अभिलाषाएँ हैं। वे अपने आप को साबित करने या अपने में सुधार लाने के लिए अधिक उत्साहित नहीं हैं। हो सकता है वे उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरी के लिए प्रेरित हों परन्तु आमतौर पर इससे ज्यादा नहीं। वे अपने सामाजिक पद और अपने परिवार के लिए पर्याप्त भोजन प्राप्त करने के लिए आतुर होते हैं। या शायद कुछ विलासिता की वस्तुएँ जैसे टेप रिकार्डर या टी.वी इत्यादि। अधिकतर बांग्लादेशी अधिक भौतिक वस्तुओं की इच्छा नहीं करते और जो कुछ थोड़ा बहुत है उसमें संतुष्ट रहते हैं।

जगन्नाथ क्षेत्र में बचपन (पालन-पोषण)

ब्रजहरि दास पूर्वी भारत के एक प्रदेश उड़ीसा में अपने बचपन की स्मृतियों को याद करते हैं। वे उड़िया समाज में पारिवारिक आपसी गूढ़ सम्बन्धों और अलग अलग स्तर पर आपसी निर्भरता का वर्णन करते हैं। ब्रजहरि उड़ीसा की आध्यात्मिक संस्कृति की गहन समझ के साथ साथ यह भी बताते हैं कि किस प्रकार आधुनिक जीवनशैली ने इस सबको शीघ्रता से कम कर दिया है।

भक्तिविकास स्वामी: ब्रजहरि प्रभु, आप उड़ीसा के ब्राह्मण परिवार से हैं ?

ब्रजहरि प्रभु: हाँ, मेरा जन्म सन् 1953 में ब्राह्मण कुल में हुआ था। हम अपने घर में रोज भगवान् कृष्ण की पूजा करते थे और *श्रीमद्भागवतम्* का उच्चारण करते थे।[३८] मेरे दादाजी के समय से हम उड़िया में जगन्नाथ दास कृत *श्रीमद्भागवतम्* का उच्चारण करते आ रहे हैं। जब मैं छोटा बच्चा था तो मेरे पिता जी, मेरे बड़े भाई ताड़ के पत्तों से पढ़ा करते थे, क्योंकि उन दिनों किताबें ताड़ के पत्तों पर लिखी जाती थीं। उड़िया में कोई भी छपी हुई पुस्तक नहीं होती थी। हमारे घर में हमारे पास ताड़ के पत्तों पर लिखी पुरानी पाण्डुलिपि होती थी और हम रोज उसकी पूजा करते थे। हम अपने घर में शालीग्राम और भगवान् कृष्ण की तस्वीर की पूजा करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: आपके गाँव का क्या नाम है ?

---

३८ जगन्नाथ दास कृत श्रीमद् भागवतम् उड़ीसा में बहुत प्रसिद्ध है और इसका बहुत सम्मान किया जाता है। फिर भी चैतन्य महाप्रभु के गंभीर अनुयायियों द्वारा इसे प्रमाणिक नहीं माना जाता। जगन्नाथ दास ने 13 स्कंदों के साथ यह संस्करण बनाया (मूल भागवतम् में केवल 12 स्कंद हैं)। इसलिए वे अति-बारि (चीज़ों को बढ़ा-चढ़ा कर प्रस्तुत करने वाला) जगन्नाथ के नाम से जाने जाते हैं। अति-बारि भक्ति विनोद ठाकुर द्वारा वर्णित 13 अप-सम्प्रदायों में से एक है। कमियों के बावजूद भी जगन्नाथ दास का यह संस्करण लोगों में कृष्णभावना की प्रवृत्ति को जगाता है।

ब्रजहरि: गुलुगुण्डे। यह धेनकनल जिले का सुदूर, पहाड़ी और झारखण्ड के जंगल के किनारे का इलाका है। सबसे नजदीक पक्की सड़क कटक-सम्बलपुर नैशनल हाईवे 42 है जो हमारे गाँव से 22 किलोमीटर दूर है।

भक्तिविकास स्वामी: आज भी कई भारतीय गाँव पक्की सड़क से बहुत दूर हैं। कई लोग आधारभूत जरूरतों की दुकानों से भी बहुत दूर रहते हैं।

ब्रजहरि: हाँ। हमारी एक दवाइयों की दुकान है, किन्तु हमें दुकान पर जाने के लिए चार किलोमीटर दूर जाना पड़ता था। मेरा छोटा भाई इसे चलाता है। इसका नाम है, 'मैडिको हरे कृष्ण'।

भक्तिविकास स्वामी: तो उसे सारी चीजें चार किलोमीटर दूर ले जानी पड़ती हैं।

ब्रजहरि: उसके पास मोटरसाइकिल है।

भक्तिविकास स्वामी: अब यह आसान हो गया है।

ब्रजहरि: पहले हर कोई पैदल जाता था। पहले लोग रोज सब्जियों की बड़ी-बड़ी टोकरियाँ उठाकर 15 किलोमीटर दूर तक कस्बों में बेचने जाते थे। और फिर शाम को खाली टोकरियों के साथ पैदल ही वापिस आते थे।

भक्तिविकास स्वामी: वे बहुत ही ताकतवर थे। आपके यहाँ घर में कौन-कौन रहता था?

ब्रजहरि: हम तीन भाई और चार बहनें हैं। तीन बहनें मुझसे बड़ी हैं और अब सभी विवाहित हैं। हमारा संयुक्त परिवार है। मेरे पिता जी भी तीन भाई हैं। मेरे पिता जी और उनके भाई भी एक ही आँगन के अलग-अलग घरों में रहते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आपके यहाँ आँगन भी था?

ब्रजहरि: हाँ। हर घर में आँगन और *तुलसी मंच* होता था।[३९] हर कोई यहाँ तक कि शाक्त जो वैष्णव नहीं हैं वे भी तुलसी को दिन में कम से कम एक बार जरुर जल देते, प्रणाम करते और परिक्रमा लगाते थे।

---

३९ पवित्र तुलसी पौधे के लिये चबूतरा।

भक्तिविकास स्वामी: हाँ। आँगन की प्रथा बंगाल में भी है। संयुक्त परिवार के सदस्य एक साथ आँगन के इर्द-गिर्द झोपड़ों में रहते और अन्य झोपड़ी सांझी रसोई होती। आप मुझे पहले बता रहे थे कि अध्यापक आपसे बहुत ही स्नेह रखते थे।

ब्रजहरि: हाँ। जब हम बच्चे थे तो अध्यापक हमसे अपने बच्चों की तरह व्यवहार करते। वे हमें घर के लिए काम देते और यदि कई बार हम नहीं करते थे तो वे हमें सजा देते। किन्तु वे हमें प्रेम भी करते थे और बहुत ही स्नेहिल थे। वे कई बार हमारे घर भी आते और हमारे माता-पिता को बताते कि हम स्कूल में क्या करते हैं और कोई परेशानी है या नहीं।

माता-पिता इस बात के लिए बहुत ही सजग रहते थे कि उनके बच्चे सही से बड़े हों। वे कठोर अध्यापकों को पसंद करते थे और इस बात की पूरी छूट देते कि यदि बच्चे दुर्व्यवहार करें तो अध्यापक उनके बच्चों को सजा दे सकते हैं या पिटाई कर सकते हैं। कोई भी इस प्रकार सख्ती की शिकायत नहीं करता था। अपितु वे चाहते थे — ''अध्यापक की डाँट माता के प्रेम से सदा अच्छी होती है।''

भक्तिविकास स्वामी: तो आप अपने अध्यापकों से डरते थे?

ब्रजहरि: डरता, हाँ, किन्तु हम उन्हें अपने माता-पिता की तरह प्रेम और आदर भी देते थे, क्योंकि वे हमारी देखभाल अपने बच्चों की तरह करते थे। जब हम बड़े और विवाहित भी हो गए तो भी वे हमारे कल्याण के लिए और परामर्श देने के लिए आतुर रहते। क ख ग सीखने से भी अधिक वे चाहते थे कि हम अच्छे इन्सान बनें, जिन्हें जीवन के मूल्यों का ज्ञान हो। जो बाद में कस्बों में चले गए, अध्यापक उन बच्चों का भी समाचार लेना चाहते कि वे क्या कर रहे हैं। अध्यापक फैक्टरी में काम की तरह नौकरी नहीं करते थे। वे नि:स्वार्थ थे। वे वह सब कुछ देना चाहते थे जो उनके पास था। वे हमारे स्कूल छोड़ने पर हमें भूले नहीं थे। और हम भी उन्हें नहीं भूल सकते। आज आपको शायद ही ऐसे अध्यापक मिलें और यदि आपको मिल भी जाएँ तो बच्चे इतने बिगड़ चुके हैं कि वे उन्हें पूछते भी नहीं।

इस प्रकार माता-पिता और अध्यापक इस बात के लिए सजग रहते थे कि उनके बच्चे सही से बड़े हो। वे ईमानदार बनें और चोरी न करें, झूठ न बोलें, दुर्व्यवहार न करें या बड़ों का अपमान न करें। वे उनका पालन पोषण इस प्रकार करते कि वे ईमानदार बनें। यह परिवार पर निर्भर करता था, हर कोई अच्छे गुण नहीं सिखाता था, किन्तु यदि माता-पिता अच्छे हैं तो वे सिखाते थे।

मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। एक किसान, जिसे हम जानते हैं, के पास अपने बच्चों की देखभाल का समय ही नहीं था। वह सुबह खेतों में काम पर चला जाता और देर शाम को आता। यह माता का कर्त्तव्य था कि वह बच्चों को नाश्ता दे और स्कूल के लिए तैयार करे। यह स्वाभाविक है कि बच्चे स्कूल जाना पसंद नहीं करते, किन्तु यह माता की जिम्मेवारी होती है कि वह बच्चों को स्कूल भेजे। और माता ही अध्यापक के सम्पर्क में रहती और पूछती कि बच्चे क्या करते हैं, लड़ते हैं या चोरी करते हैं। यदि बच्चे दुर्व्यवहार करते तो उन्हें सजा मिलती।

जब मैं छठी या सातवीं कक्षा में था तो मैंने पिता जी की जेब से दस रुपए का नोट चुरा लिया। मेरे पिता जी को अभी तनख्वाह मिली ही थी और यह उनके पास ही थी। हम निम्न-मध्य परिवार से हैं और सात बच्चों के साथ पिता जी ही परिवार में कमाने वाले थे। हमारे पास चाहे सम्पति तथा सबकुछ था, फिर भी यह संघर्ष था। मेरे पिताजी बहुत ही ईमानदार व्यक्ति थे। वे सदैव इस बात को सुनिश्चित करते कि किसी से कर्ज न लेना पड़े। किन्तु मेरे दादा जी ने बहुत सा कर्ज लिया हुआ था। वे बार-बार सूद सहित कर्ज लेने के लिए मजबूर थे, और मेरे पिता जी ने उनके कर्ज उतारने के लिए कड़ा संघर्ष किया।

भारत में प्रथा है कि पिता की मृत्यु के बाद कर्ज पुत्र के पास चला जाता है। और मेरे दादा जी की कर्ज में मौत हो गई। उस समय जमींदार आया और जो भी खेतों से हमने धान इकट्ठी की थी वह लेकर चला गया। मेरे पिता जी को नौकरी मिलने पर भी हमने बहुत ही कष्टमय जीवन बिताया, किन्तु वे हमारा पालन-पोषण ईमानदारी से करना चाहते थे। इसलिए उन्होंने सबसे पहले कर्ज उतारे। वे हमें केवल शरीर की जरूरतें ही देते, किन्तु उन्होंने कभी भी हमें विलासितापूर्ण या फिजूलखर्ची नहीं करने दी। उस संघर्ष के बाद मेरे पिता जी ने

शपथ ली कि वे अपने जीवन में कभी भी एक पैसा भी उधार नहीं लेंगे, ताकि उनके बच्चों पर यह बोझ न आए जैसा कि उन पर आया था।

तो मैंने दस रुपए क्यों चुराए? हमारे स्कूल में विद्यार्थी बाजार जाते और बोरी इत्यादि खरीदते। और मेरे पिता जी मुझे हर सोमवार को 20 पैसे देते थे। उन दिनों में 25 पैसे बहुत बड़ी रकम थी। किन्तु मुझे आदत थी कि मैं खाने के लिए कुछ खरीदूँ और इसे अपने दोस्तों में बाटूँ। एक दिन हमने सोचा कि हम दावत करेंगे, किन्तु जब मैंने अपने पिता जी से पूछा तो उन्होंने पैसे नहीं दिए। इसलिए मैंने उनसे दस रुपए चुरा लिए और हमने दावत की।

भक्तिविकास स्वामी: उन दिनों दस रुपए बहुत ज्यादा पैसे होते होंगे।

ब्रजहरि: बहुत ज्यादा। जब मेरे पिता जी को पता लगा कि पैसे गुम हैं तो उन्होंने मुझसे पूछा कि मैंने क्यों लिए। तो मैंने झूठ बोला कि मैंने नहीं लिए। किन्तु उन्होंने पता लगा लिया कि हमने दावत उड़ाई है और उन्होंने मुझे सच बोलने को कहा। मैंने कहा, ''नहीं, मैंने नहीं लिए।'' तब उन्होंने मेरी छड़ी से पिटाई की। उन्होंने कहा, ''जब तक तुम सच नहीं बोलते...''

भक्तिविकास स्वामी: आपके हाथ पर?

ब्रजहरि: हाँ। मैंने अपने आप को बचाने के लिए हाथ आगे कर लिए और उन्होंने मुझे दस, पन्द्रह बार मारा। मेरी माता और मेरी ताई, जो मुझसे बहुत प्रेम करती थीं, मुझे बचाने के लिए आईं। इसके बाद मैंने वायदा किया कि मैं आगे से कभी भी ऐसा नहीं करूँगा। मैं यह सचमुच कह रहा था। इस प्रकार उन्होंने मुझे कठोर उपदेश और सजा दी। अगर मैं थोड़ी सी भी गलती करता तो वे मुझे बुरी तरह डाँटते।

भक्तिविकास स्वामी: अब आप इसके लिए आभारी हैं।

ब्रजहरि: हाँ। पिछली बार जब मैं घर गया था तो हम मेरे बचपन के बारे में चर्चा कर रहे थे और मैंने अपने पिता जी से कहा कि मैं उनका आभारी हूँ। वे बहुत खुश थे।[४०]

---

४० ब्रज हरि प्रभु मुंबई के श्री श्री राधा रासबिहारी मंदिर में सन् 1995 से जनरल मैनेजर रहे

उन दिनों बच्चे अपने माता-पिता, चाचा, चाची, बड़े भाई-बहनों और अध्यापकों के प्रति आभारी रहते थे। जो उन्हें हृदय से प्रेम करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: हम अध्यापकों के विषय पर चर्चा कर रहे थे। वे निजी रुचि लेते थे, बिल्कुल गुरु-शिष्य की तरह।

ब्रजहरि: बिल्कुल गुरु की तरह। और हम भी उनसे इसी प्रकार ही व्यवहार करते थे। सुबह जब हम स्कूल पहुँचते तो सबसे पहले अपने अध्यापक के चरण छूते और मधुसूदन राय कृत वर्णबोध नामक पुस्तक से कृष्ण की प्रार्थना गाते। हर चीज़ एक प्रार्थना में थी। इसका बहुत ही सुन्दर अर्थ था। बचपन से ही वे हमें वर्णबोध से सिखाते थे कि कृष्ण किस प्रकार हर प्राणी की देखभाल कर रहे हैं।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे पाठ्यक्रम से कृष्ण लीला भी पढ़ाते थे?

हैं और अपनी ईमानदारी तथा निस्वार्थ सेवा के लिए जाने जाते हैं। इसलिए मुझे यह जानकर आश्चर्य हुआ कि उन्होंने कभी कुछ चुराया था। उनकी कहानी से पता चलता है कि उड़िया बच्चों को किस तरह नैतिक मुल्यों का कड़ा प्रशिक्षण दिया जाता था। इस प्रशिक्षण का असर आज ब्रज हरि के चरित्र में देखा जा सकता है। उनकी ईमानदारी का एक और लक्षण उनके बचपन की शरारतों के बारे में बेझिझक बात करना है। ब्रज हरि आज भी अपने मित्रों को दावत देना पसंद करते हैं, लेकिन अब वे इसे बिल्कुल वैध तरीकों से करते हैं।

इस कहानी से ब्रज हरि के पिता और स्त्रियों की अलग-अलग प्रतिक्रियायों के बारे में पता चलता है। दोनों ने उनके प्रति स्नेह का बर्ताव किया। लेकिन भावुकता में आकर स्त्रियों ने क्षमा की मांग की, लेकिन उनके पिता क्रोधित होने के कारण उन्हें सजा देना चाहते थे। उनका गुस्सा घृणा से नहीं बल्कि अपने पुत्र के कल्याण से प्रेरित था, ताकि उसका चरित्र खराब न हो। उनके पिता ने साफ तौर पर दिखाया कि वे बहुत नाराज़ हैं और वे ऐसा दुर्व्यवहार सहन नहीं करेंगे।

ऐसे भारतीय ग्रामीणों ने कभी भी बच्चे पालने के मनोविज्ञान से संबंधित पुस्तकें नहीं पढ़ीं। फिर भी प्रशिक्षण इतना अच्छा था कि पीढ़ी दर पीढ़ी सब सही चलता था और नैतिक मुल्यों को बनाए रखा जाता था, जिसमें स्वाभाविक रूप से भक्ति के प्रति रूझान होता था। प्रशिक्षण सरल, एकसार व लगातार होता था: कि कुछ चीज़े सही हैं और कुछ गलत। बड़े-बुजुर्ग आदर्श स्थापित करते थे और छोटों की गलतियों की सज़ा देते थे। हर चीज़ नि:स्वार्थ भावना से की जाती थी। जटिल मनोवैज्ञानिक सलाह की कोई आवश्यकता नहीं थी, न तो गाँव वाले इसे समझ सकते थे और न ही उनके लिये इसका कोई उपयोग था।

ब्रजहरि: नहीं, निरपेक्षवाद के कारण उन्हें ऐसा करने की आज्ञा नहीं थी। जब हम तीसरी से चौथी कक्षा में चले गए, हमारे एक अध्यापक ने हमें महाभारत और रामायण से एक महीना विस्तृत कथाएँ बताईं। पन्द्रह दिन महाभारत और पन्द्रह दिन रामायण। वे हमें रोज़ दो घण्टे पढ़ाते। यह बहुत ही रुचिकर था और वे बहुत ही बढ़िया तरीके से कथाएँ बताते। वे असली भावनाओं के साथ पढ़ाते। वे इतने प्रभावशाली ढंग से पढ़ाते थे कि हम कभी नहीं भूल सकते।

हम बहुत ही भाग्यशाली थे। हमें बचपन में इतनी अच्छी शिक्षाएँ मिली कि कृष्ण का प्रभाव हमारे पूरे जीवन में रहेगा। हम कृष्ण को नहीं भूल सकते। इसलिए नहीं कि हम पूर्ण हैं या उन्नत हैं या माया में नहीं आ सकते अपितु इसलिए कि कृष्ण का प्रभाव सदैव रहेगा। कम से कम हमारे अन्तर्मन में। हम नहीं छोड़ सकते। आज भी हम हर रोज *श्रीमद्भागवतम्* सुन रहे हैं किन्तु यह हमें इतना प्रभावित नहीं करता जितना हमें बचपन में प्रभावित किया था और यह सारा जीवन साथ रहेगा।

हमारे एक अध्यापक, जय कृष्ण मिश्र, कटक के रवेनशॉ कालेज के प्रोफैसर को मैं कभी नहीं भूल सकता। उन्होंने उड़िया साहित्य में एम.ए किया हुआ था। वे एक अच्छे कवि और बहुत ही आदरणीय हस्ती थे। उड़िया, संस्कृत और अंग्रेजी में उनकी अच्छी पकड़ थी। वे एक विख्यात शक्सीयत थे और पूरे भारत में उन्हें व्याख्यान देने के लिए बुलाया जाता था। वे हमें भक्त चरण दास कृत *मथुरा-मंगल* और अन्य कई साहित्य पढ़ाते थे।[४१] *मथुरा-मंगल* मथुरा में कृष्ण की लीलाएँ हैं जो संस्कृत से मिली उच्च उड़िया भाषा में है। अब कोई भी ऐसे शब्दों का उपयोग नहीं करता, किन्तु जब जय कृष्ण मिश्र जी हमें इसे बताते तो इसके गहरे अर्थ होते। इस प्रकार इसे सुनना बड़ा मजेदार होता। वे हमें इस प्रकार पढ़ाते कि हर वस्तु ईश्वर या कृष्ण से जुड़ी है। वे एक महान भक्त थे। जब वे *मथुरा-मंगल* का कुछ अंश विस्तार से बताते तो वे रो पड़ते थे।

भक्तिविकास स्वामी: वे रो पड़ते थे?

---

४१ भक्त चरण दास एक उड़िया वैष्णव कवि थे। उनकी *मथुरा-मंगल* तीस प्रकार के छंदों में लिखी गई है। इसमें अक्रूर द्वारा कृष्ण को मथुरा ले जाने के बाद संदेशवाहक के रूप में उद्धव की भूमिका संक्षेप में बताई हुई है।

ब्रजहरि: दिखावे या किसी और चीज के लिए नहीं, अपितु तीव्र भावनाओं में बहकर। और विद्यार्थी भी रो पड़ते थे। हमारे बचपन में लगभग सभी लोग बहुत ही धार्मिक होते थे, आजकल की तरह नहीं। अब पढ़ाना एक औपचारिकता बनकर रह गई है, एक अन्य पेशा। अध्यापक विद्यार्थियों या अन्य किसी चीज़ की परवाह नहीं करते। उन दिनों अपने अध्यापक के लिए हमारे हृदय में बहुत सम्मान होता था क्योंकि वे इस प्रकार पढ़ाते थे कि इसका बहुत लम्बे समय तक प्रभाव रहता था। जब हम रात को छात्रावास (हॉस्टल) में लौटते तो देर तक गहराई से सोचते रहते जो अध्यापक ने कहा है क्योंकि ये हमारे मन को छू लेता था। और कई बार विद्यार्थी इन सब चीज़ों की छात्रावास में चर्चा करते।

जैसे हमारी इस्कॉन संस्था में, भक्तसंन्यासियों या गुरु के पास आकर प्रश्न पूछते हैं और परामर्श लेते हैं। हम भी प्रोफैसर के घर जाया करते थे और कृष्ण लीला के बारे में पूछा करते। वे बहुत ही अच्छे इन्सान थे। वे हर किसी को बुलाते थे, और हर किसी को अपने कमरे में बैठने का स्थान देते थे और विषय को विस्तार से बताते। वे अपनी पत्नी को प्रसाद देने के लिए कहते, जो कुछ भी वे बना रहे होते। बहुत ही मधुर आदान-प्रदान।

भक्ति विकास स्वामी: अपने कॉलेज के समय भी आप अपने अध्यापक के चरण छूते थे?

ब्रजहरि: सभी के नहीं, क्योंकि हर अध्यापक अच्छा नहीं होता था। किन्तु जय कृष्ण मिश्र जी वरिष्ठ और पिछली पीढ़ी से थे। जब हम युवा थे तो वे साठ वर्ष के थे। किन्तु युवा अध्यापक उस स्तर के नहीं थे। यह उनके व्यवहार पर भी निर्भर करता था।

भक्ति विकास स्वामी: उड़ीसा के बारे में पूछना चाहता हूँ कि कैसे हर कोई जगन्नाथ जी से आसक्त है। जैसे ही आप उड़ीसा में प्रवेश करते हैं — घरों, दुकानों और बसों में भी विग्रह और तस्वीर के रूप में दिव्य बड़ी मुस्कान के साथ जगन्नाथ जी हर जगह हैं। सुबह जब पान की दुकानें खुलती हैं तो वे सिनेमा के गानों से पहले जगन्नाथ की स्तुति में भजन की कैसेट चला देते हैं।

ब्रजहरिः भगवान् जगन्नाथ उड़ीसा के पूजनीय स्वामी है। मुझे नहीं पता कि यह कैसे हुआ, किन्तु जब मैं बच्चा था तो किसी ने मुझे उनकी पूजा के लिए नहीं कहा। किन्तु हम स्वाभाविक ही जगन्नाथ जी को प्रेम करते हैं। वे हमारे हृदय में हैं। अब भी हम राधा-रासबिहारी, राधा-श्यामसुन्दर और कृष्ण-बलराम से प्रार्थना करते हैं किन्तु जब मैं भगवान् जगन्नाथ जी के दर्शन करता हूँ या सुनता हूँ तो उसी समय मुझे रोमांच का अनुभव होता है।[४२]

भक्तिविकास स्वामीः क्या आप बचपन में पुरी गए थे?

ब्रजहरिः मेरे पिता जी जगन्नाथ जी के भक्त हैं, इसलिए वे मुझे वहाँ ले गए। हर वर्ष नहीं क्योंकि यह बहुत महँगा था। मैं उनके साथ दो तीन बार गया।

भक्तिविकास स्वामीः रथ-यात्रा के समय या किसी अन्य समय?

ब्रजहरिः अन्य समय। और आजकल *उपनयनम् संस्कार* बहुत महँगा हो गया है इसलिए लोग जगन्नाथ पुरी जाते हैं और वहीं मनाते हैं जहाँ हर चीज सस्ते में हो जाती है।

भक्तिविकास स्वामीः आप मुझे बता रहे थे कि आप किस तरह ''राम, राम, राम...'' कह रहे थे।

ब्रजहरिः उस समय मैं चौथी कक्षा में पढ़ रहा था।

भक्तिविकास स्वामीः इसका मतलब आप नौ वर्ष के थे?

ब्रजहरिः हाँ। हमारे गाँव में एक स्कूल है किन्तु मेरे पिता जी ने सोचा कि एक ही स्कूल में परिवार के बच्चों के साथ पढ़ने से मैं बिगड़ जाऊँगा इसलिए उन्होंने मुझे दूसरे गाँव के स्कूल में भेज दिया। हमारे गाँव से ही एक व्यक्ति उस गाँव में जो हमारे घर से लगभग चार किलोमीटर दूर था, अध्यापक था। हमारे गाँव से आधा किलोमीटर की दूरी पर जंगल शुरु हो जाता था। अब यह जंगल इतना घना

---

४२ राधा-रासबिहारी, राधा-श्यामसुन्दर और कृष्ण-बलराम भारत में इस्कॉन के प्रमुख केन्द्रों में कृष्ण के विग्रह हैं।

नहीं रहा क्योंकि हर कोई पेड़ काट रहा है। किन्तु उन दिनों यह बहुत ही घना जंगल था। वहाँ चीते, हाथी और कई जंगली सुअर इत्यादि थे।

भक्तिविकास स्वामी: अब भी हैं ?

ब्रजहरि: हाँ, किन्तु वे गाँव में नहीं आते। वे मनुष्यों की आबादी से दूर रहते हैं। यदि कभी चीता या कोई डरावना जानवर आ जाता है तो लोग बहुत डर जाते हैं। एक बार गाँव वालों ने बताया कि चीता अभी-अभी आया था। हर कोई डर गया था। और एक बार एक युवा अध्यापक रात को चला गया और कभी वापिस नहीं आया, क्योंकि वह बहुत डर गया था। किन्तु हमारे अध्यापक वहीं रहे।

मैंने अपनी माँ से कहा,''मैं स्कूल नहीं जा रहा, क्योंकि हर कोई कह रहा है कि वहाँ चीता है और यह मुझे मार डालेगा। मैं जाना नहीं चाहता।'' किन्तु मेरी माँ ने कहा, ''नहीं तुम्हें जाना चाहिए। तुम चीते से डरते क्यों हो ? यदि तुम राम का नाम लोगे तो चीता तुम्हें कभी नहीं छुएगा।'' तो हम दोनों पूरा रास्ता घर से स्कूल ''राम, राम, राम, राम, राम, राम...'' करते हुए चल पड़े।

मैं उस स्कूल के छात्रावास में रहता था और सप्ताह में एक बार ही घर आता था। मेरे पिता जी की सरकारी नौकरी थी और वे कस्बे में काम करने जाते थे। वे और मैं दोनों ही सप्ताह के अंत में आते।

भक्तिविकास स्वामी: आप बता रहे थे कि आपको किस प्रकार कुल गुरु का आदर करना सिखाया। चाहे आप ब्राह्मण थे, फिर भी कर्म-काण्ड क्रिया आदि करने के लिए अन्य ब्राह्मण आते थे।

ब्रजहरि: हाँ, जैसे *श्राद्ध* इत्यादि।[४३] आज भी हम दादा और दादी का श्राद्ध करते हैं। श्राद्ध के दिन हम पुरोहित को पिण्ड और अन्य क्रियाओं को करने के लिए बुलाते और अन्य ब्राह्मणों को भोज के लिए बुलाते। जब मैं छोटा था तो कुल पुरोहित आते। वे बहुत ही वृद्ध थे, तो भी वे आते थे। पहले मेरे माता-पिता उनके

४३ श्राद्ध - मृतक रिश्तेदारों की पुण्यतिथि पर मनाए जाने वाला कर्मकाण्ड। इसके कई पहलू होते हैं, जिसमें सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है अपने पूर्वजों को विष्णु प्रसाद अर्पित करना और मेहमानों, विशेष रूप से ब्राह्मणों, को प्रसाद खिलाना।

पाँव धोते और फिर पोंछते। इसके बाद वे घर के सभी सदस्यों को चरण छूने के लिए कहते और वे हमारे सिर पर कुछ *अक्षत* डालते।[४४] और फिर वे संस्कृत के श्लोकों का उच्चारण करते हुए आशीर्वाद देते।

ब्राह्मणों का आदर था। वे अपने आदर्शों को सही ढंग से बना कर रखते। अब उन वृद्ध का युवा पोता आता है। अब चाहे मेरे पिता जी सत्तर साल के हैं फिर भी वे उनके पाँव छूते हैं। यह परम्परा है अपने से बड़ों को आदर देना। स्मार्त ब्राह्मण के परिवार के बच्चे गाँव के स्कूल में जाने के बाद कर्म-काण्डीय क्रियाएँ सीखते थे। गाँव का पुरोहित बनने के लिए *श्राद्ध, अन्न-प्राशन* और अन्य क्रियाएँ, ज्योतिष, उड़िया में रामायण और महाभारत, और ज्ञान की अन्य शाखाएँ सीखते।

भक्तिविकास स्वामी: संस्कारों के बारे में मुझे और बताएँ।

ब्रजहरि: जब शिशु दस महीने के हो जाते तो *अन्न प्राशन,* पहली बार अन्न खिलाया जाता। इससे पहले उन्हें केवल माता का या गाय का दूध दिया जाता है और आजकल भैंस का भी दूध देते हैं। विशेषकर माता का दूध बच्चे को बलवान और स्वस्थ रहने में बहुत सहायता करता है। आमतौर पर औरतें बच्चों को पाँच वर्ष की आयु तक अपना दूध पिलाती हैं। कई समुदायों में नामकरण संस्कार, बच्चे का नाम रखना, *अन्न प्राशन* एक साथ ही किए जाते थे। उनकी कुण्डली के अनुसार ब्राह्मण उन्हें कुछ नामों की सिफारिश करते।

बच्चे की रुचि की परीक्षा, नामकरण संस्कार का ही हिस्सा होती है। पुरोहित अलग अलग चीज़ें बड़े थाल में डाल देता। वे भगवद्गीता, सोने की मुद्राएँ, चाकू और कुमकुम की डिब्बी रखते। बच्चा जो भी वस्तु उठाता उससे भविष्य में उसकी रुचि का अनुमान लगाया जाता। यदि वह गीता चुनता तो यह माना जाता था कि वह ब्राह्मण की भाँति पुण्यवान और विद्वान बनेगा। यदि वह चाकू पकड़ता तो माना जाता कि वह क्षत्रिय की तरह वीर और साहसी बनेगा। यदि वह सोना चुनता तो यह आशा की जाती कि वह वैश्य की तरह व्यापारी और

---

४४ अक्षत - साबुत कच्चे चावल। ये पवित्र माने जाते हैं और इनमें हल्दी और कुमकुम का पाउडर मिल कर आदरणीय लोगों द्वारा आशीर्वाद लेने आए लोगों के सिर पर कृपा के रूप में फैंकते हैं।

समृद्ध बनेगा। यदि वह कुमकुम लेता तो यह संकेत होता कि उसे जीवन में बड़ी विपत्तियाँ या दुःख नहीं आएँगे।

चूड़ा-करण, पहली बार बाल काटने का एक अन्य संस्कार है। माता-पिता बच्चों के बाल तब तक नहीं कटवाते जब तक वे उसे धाम विशेषकर पुरी ले जाकर पूरा सिर मुण्डन न करवा देते।

भक्तिविकास स्वामीः पुरी आपके गाँव से 150 किलोमीटर है। लोग वहाँ कैसे जाते हैं?

ब्रजहरिः चलकर। वे थोड़े कच्चे चावल साथ बांध लेते। कहीं भी उन्हें पकाने के लिए लकड़ी और सब्जियाँ मिल जातीं। उन दिनों सब्जियाँ बेची नहीं जाती थीं। उस समय सब्जियाँ लाकर बड़े शहर में बेचने का कोई व्यापार नहीं था। लोग स्थानीय स्तर पर ही सब्जियाँ उगाते और यदि कोई यात्री रास्ते से जाते समय सब्जियाँ ले लेता उसे मना नहीं किया जाता था।

भक्तिविकास स्वामीः जन्म संस्कार के बारे में बताएँ?

ब्रजहरिः उन दिनों पहली बात यह थी कि हर कोई घर में पैदा होता था। अस्पताल में पैदा होने का प्रश्न ही नहीं उठता। गाँव में रहते हुए हमने कभी अस्पताल ही नहीं देखा। गर्भवती स्त्री को विधिपूर्वक पिता के घर भेजा जाता था। वहाँ कुछ कार्यक्रम होता था, एक प्रकार का संस्कार जो कुल पुरोहित ही देखते थे। यह अक्षत, मंत्र और कुछ प्रसाद इत्यादि के साथ आम संस्कार होता । इसके बाद औरतें उनके हाथों पर मेहन्दी लगातीं और ढेर सारी फूल मालाएँ होतीं।[४५]

भक्तिविकास स्वामीः गर्भ के कितने महीने बाद यह संस्कार होता था?

ब्रजहरिः यह जाति पर निर्भर करता था। मेरे परिवार में यह सात महीने की गर्भावस्था में होता था। गर्भवती स्त्री को विधिपूर्वक पिता के घर भेजा जाता था। इस प्रकार मेरी माता को पिता के यहाँ, मेरे नाना जी के यहाँ भेज दिया गया।

४५ मेहन्दी - एक विशेष प्रकार के पौधे से निकला लाल रंग। यह भारतीय उपमहाद्वीप में स्त्रियों के हाथ-पैरों पर रंगीन चित्र बनाने के लिये प्रयोग की जाती है, खासतौर से त्योहारों में। यह बांग्लादेश पर लेख में वर्णित आल्ता से भिन्न है।

जहाँ पर प्रसव होता। वृद्ध महिलाओं को मालूम रहता था कि गर्भवती स्त्री की देखभाल कैसे करनी है और उसे क्या क्या परेशानियाँ हो सकती हैं। उनके अपने ही कई कई बच्चे होते थे।

औरतें प्रसव तक अपने आप को घर के कार्यों में व्यस्त रखती थीं। इस प्रकार अपने आप को चुस्त रखने से प्रसव बहुत आसान हो जाता। कई बार हम इस प्रकार की बातें सुनते: एक गर्भवती महिला जंगल में लकड़ियाँ इकट्ठी करने गई और वहीं पर प्रसव हो गया और वह लकड़ियों का बण्डल और बच्चा साथ ले आई।

सभी बड़ी महिलाएँ माता की अच्छे से देखभाल करतीं और यदि कोई दर्द या तकलीफ होती तो वे जानती थीं कि कौन सी सही औषधि दी जानी है। वे गर्भवती स्त्री को बुला लेती और उसे बैठाकर वे विशेषकर ये तीन ग्रंथ भागवतम्, रामायण और महाभारत पढ़कर सुनातीं। कई बार बड़ी महिलाएँ पढ़तीं तो कई बार कोई वृद्ध व्यक्ति। मुझे लगता है इसी कारण भारत के नौजवान बच्चों का राम और कृष्ण के बारे में सुनने का स्वाभाविक आकर्षण है। क्योंकि उन्होंने इनके बारे में जन्म से पहले गर्भ में ही सुनना शुरु कर दिया।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आप हमें *उपनयनम्* संस्कार के बारे में बता सकते हैं ?

ब्रजहरि: ब्राह्मण परिवार में जनेऊ संस्कार विवाह की तरह बहुत ही महत्वपूर्ण है। यह संस्कार आमतौर पर दस या बारह वर्ष की आयु में किया जाता है। यदि दो सौतेले भाई या चाचे-ताये के लड़के की एक ही आयु होती दोनों का *उपनयनम्* एक साथ एक ही साथ किया जाता है।

जनेऊ संस्कार से पहले हम गाँव गाँव जाकर सात दिनों के लिए भिक्षा माँगते। लोग हमें चावल, फल, सब्जियाँ, धन इत्यादि देते। हम बहुत सारी चीज़ें इकट्ठी करके लाते और कुछ दिनों बाद भिक्षा में आई और घर की अन्य वस्तुएँ लोगों को वापिस दे दी जाती। जब वे उत्सव में आते तो उन्हें अच्छी तरह से भोजन दिया जाता और वे पुरोहित को धन देते।

उपनयनम् संस्कार में लड़के के सिर का मुण्डन कर देते थे ताकि वह एक अच्छा ब्रह्मचारी लगे। *उपनयनम्* का अर्थ होता है कि अब बच्चा वैदिक शास्त्र

पढ़ने के लिए गुरुकुल जा रहा है। किन्तु आजकल यह एक औपचारिकता और सामाजिक उत्सव भर रह गया है। कुल पुरोहित यज्ञ करता है और हर कोई धोती और चद्दर ओढ़ता है। *उपनयनम्* उत्सव में परिवार बहुत अधिक धन खर्च करता है और यज्ञ के बाद वे सभी गाँववासियों और रिश्तेदारों को बहुत भव्य भोज देते। यदि गाँव में भोज होता तो उन्हें सभी को बुलाना होता है।

संस्कार के बाद पुरोहित लड़के को गाँव के किनारे पर ले जाता जहाँ कोई घर नहीं होता था और वे मंत्र का उच्चारण करते और रेत पर तीन रेखाएँ खींचते। फिर वे लड़के से कहते, ''आप ब्रह्मचारी बने रहना चाहते हैं या संन्यास लेना चाहते हो?'' वास्तव में यह एक औपचारिकता होती। बड़े बच्चे को सिखा देते कि वह यह न कहे कि मैं संन्यास लेना चाहता हूँ।

यदि बच्चा संन्यास चुन लेता तो उसे वे तीन रेखाएँ लाँघनी होती है और फिर वह कभी घर वापिस नहीं आएगा। मुश्किल से ही कोई ऐसा करता है किन्तु हम कुछ लोगों को जानते हैं जो साधु बनने के लिए घर छोड़ कर चले गए। अभी हमारे गाँव के पास एक बालक छोड़ कर चला गया और कभी नहीं आया।

भक्तिविकास स्वामी: गाँव के सभी लोग बहुत दु:खी हुए होंगे। क्या उसने पहले इसके बारे में सोचा था?

ब्रजहरि: वह उस समय चौदह साल का था। जब भी पास के गाँव में कीर्तन होता तो वह सदैव जाता था। उसे हरे कृष्ण का कीर्तन करना बहुत अच्छा लगता था। वह *उपनयनम्* संस्कार से ही चला गया। उसने जनेऊ, मंत्र इत्यादि लिया। जब आप रेखाएँ लाँघते हो तो माता-पिता आपको वापिस नहीं ला सकते। वे आपको उन तीन रेखाओं से वापिस आने को नहीं कह सकते। संन्यास लेना और फिर गृहस्थ बनना बहुत ही पापमय माना जाता था।

दीक्षा उत्सव के बाद हम सात दिन बाहर सोते थे। और दीक्षा लेने (*उपनयनम्*) के बाद हर कोई कम से कम एक बार, दो या तीन बार नहाता। यहाँ तक कि सर्दी की ठण्डी प्रात:काल को भी यह करना पड़ता था, विशेषकर ब्राह्मण परिवारों में सुबह नहाना जरुरी था।

भक्तिविकास स्वामी: साल के अन्य त्योहार कैसे मनाते थे?

ब्रजहरि: सबसे बड़ा उत्सव होता था मकर-संक्रान्ति।

भक्तिविकास स्वामी: इस त्योहार को किस प्रकार मनाते थे?

ब्रजहरि: मकर-संक्रान्ति को वे घरों में भव्य भोजन बनाते और लोग अलग-अलग पकवानों का आदान-प्रदान करते।

भक्तिविकास स्वामी: गाँव का जीवन बहुत ही सीधा-सादा होता है। क्या घरों में बिजली होती है?

ब्रजहरि: अब हमारे पास है।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु जब आप बड़े हो रहे थे तो कोई बिजली नहीं थी।

ब्रजहरि: मुझे याद है हर किसी के पास गाय थीं। एक ग्वाला दूसरे गाँव से सुबह 6.30 के आसपास आता था। सभी लोग गायों को खोल देते थे क्योंकि वे गायों को घर में रखते, दूध दोहते और फिर गायों और बछड़ों को चरने के लिए जंगल में छोड़ देते। विशेषकर वर्षा ऋतु में यह बहुत ही मनमोहक दृश्य होता था। मुझे अच्छी तरह याद है कि सुबह ग्वाला बाँसुरी के साथ आता और जब वह बाँसुरी बजाता तो सारी गाय आ जातीं। वह आदमी गाँव की सभी गायों को सारा दिन बाहर ले जाता। क्योंकि हर कोई अपने खेतों में काम करता और किसी के पास समय नहीं होता था। इसलिए हम ग्वाले को हर महीने तनख्वाह दे देते।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वह गाय दोहता भी था या यह आप स्वयं करते थे?

ब्रजहरि: नहीं, यह हम करते थे। किन्तु वह सभी गायों की देखभाल करता और जंगल में ताजी हरी घास होने के कारण उन्हें वहाँ ले जाता। वे गायों की इतनी अच्छी देखभाल करते कि इतना तो गायों के मालिक भी नहीं करते थे। वे गायों को नदी पर ले जाते और उन्हें नहलाते। उनका बारह, तेरह वर्ष का बच्चा गायें चराता, खेतों में ले जाता और घर वापिस लाता। गाय बहुत ही स्वस्थ थीं और हमारे मन में उनके प्रति आदर था। आज जो इस्कॉन में बहुत अच्छे से हो रहा है, वह सब हम कर रहे थे। हम गोवर्धन पूजा करते।

उस समय हमेशा पैसे का उपयोग नहीं होता था। गाँव में मुख्य व्यवसाय कृषि होता था, इसलिए हम लोगों को कुछ या कम से कम गेहूँ देते। विशेषकर खेतों में काम करने वाले मजदूरों को इस प्रकार तनख्वाह दी जाती। इससे बिचौलिये की आवश्यकता नहीं रहती और यह हर किसी के लिए बहुत ही सस्ता रहता। फसल कटाई के समय हम नाई को कुछ निश्चित धान देते और वह अक्सर हमारे घर आता रहता और जिस किसी ने भी शेव करवानी या बाल कटवाने होते, वह करवा लेता।

हमारे पास अपनी जमीन पर सौ के आसपास आम के पेड़ थे। आजकल लोग चीज़ें चुरा लेते हैं और हमारे पास इतने लोग नहीं जो हर चीज़ की देखभाल कर सकें। किन्तु जब हम बच्चे थे तो हर किसी के पास पेड़ थे। कोई भी आम खरीदता या बेचता नहीं था क्योंकि हर किसी के पास पर्याप्त मात्रा में होते थे। हम अपने घर से दो किलोमीटर दूर अपने आम के बाग में जाते। उड़ीसा में गर्मियों में लगभग हर रोज़ तेज़ आंधी आती। शाम के पाँच बजे के आसपास यह बिल्कुल शाँत और गर्म होता और फिर पाँच या दस मिनट के लिए तेज आँधी आ जाती और कई चीज़ों को नीचे गिरा देती। सभी पके हुए आम गिर जाते और हम सभी को इकट्ठा करते और बैलगाड़ी में भर कर घर ले आते। हर रोज़ हम तीस किलो से भी ज्यादा आम लेकर आते। हम कितना खा सकते थे? केवल थोड़े से ही। इसलिए मेरी माता और अन्य सभी औरतें इनका अचार बनाया करतीं और बहुत अधिक मात्रा में अचार पूरा साल रखतीं। वे अभी भी अचार बनातीं हैं।

हमारे बगीचे में हम अपनी सब्जियाँ स्वयं ही उगाते थे, जिनका स्वाद बहुत अच्छा होता था क्योंकि वे बिल्कुल ताजी होती थीं। हम केवल गाय का गोबर उपयोग करते थे — कोई खाद या कीड़ेमार दवाइयों का उपयोग नहीं करते थे। हमारा बहुत बड़ा बाग था, इसलिए हम आमतौर से बाहर से कुछ नहीं खरीदते थे।

उड़ीसा में लोग कद्दू के और हर तरह के बीजों से कई प्रकार की तली हुई चीज़ें बनाते हैं। जिन्हें अन्य लोग बेकार समझकर फैंक देते हैं, वे जानते थे कि किस प्रकार स्वादिष्ट, पोषक चीज़ें बनानी हैं।

भक्तिविकास स्वामी: उड़ीसा के गाँव में अद्भुत और बहुत ही अलग प्रकार से व्यंजन बनाए जाते हैं। आप पानी कहाँ से लेते थे? गाँव में तालाब था या कुँआ?

ब्रजहरि: हर गाँव में कम से कम एक तालाब होता था। हमारे गाँव में बहुत ही बड़ा तालाब था और आसपास के तीन चार गाँव के लोग आकर स्नान करते थे। यह बहुत ही अच्छा तालाब था। यह बहुत ही ठण्डा था, और गर्मी में आप अन्दर चले जाओ। सर्दियों में ऐसा लगता है कि यह बहुत ठण्डा होगा किन्तु जब आप डुबकी लगाते हैं तो यह गुनगुना और सुखप्रद होता है, क्योंकि यह बहुत बड़ा तालाब था और बिल्कुल ताजा तथा शांत। गर्मियों में यह बहुत ही ठण्डा होता। यह कृष्ण की व्यवस्था है। हर किसी के पास बागीचे और पानी पीने के लिए कम से कम एक कुँआ होता । अलग से कुँआ होना अच्छा है। हमारे घर में तीन कुँए थे, दो बगीचे के लिए और एक पीने के लिए।

गाँव की व्यवस्था पर्यावरण-चक्र के अनुसार काम करती थी। प्रदूषण फैलाने वाले कोई भी प्लास्टिक के थैले या टिन के डिब्बे नहीं होते थे। वे पारम्परिक मशीनों का उपयोग करते थे: एक-दो प्रकार के हल; चावल का चिड़वा करने के लिए हाथ से चलने वाली मशीन, बागवानी, कृषि, रसोई और मछली पकड़ने के बर्तन इत्यादि। सब कुछ बहुत ही सरल। लोग ताजे केले की पत्तल पर खाना खाते थे और एक बार उपयोग करने पर फैंक देते। या फिर वे पत्थर या धातु की थालियों का उपयोग करते थे। पूरी तरह से या आंशिक रूप में धातु से बनी हल, खाना पकाने के बर्तन या कुछ भी चीजों की जरूरत होती तो मरम्मत की जाती, उन्हें फैंका नहीं जाता था। यदि किसी वस्तु की मरम्मत नहीं हो सकती थी तो धातु को कबाड़ में बेच दिया जाता था। ऐसे लोग भी होते थे जो कूड़ा जैसे पुरानी बोतलें इकट्ठा करते और इसके लिए कुछ पैसे भी देते थे।

गरीब लोग अपने फटे कपड़ों को बार बार सिल कर ठीक कर लेते। यदि ये इतने पुराने हो जाते कि किसी उत्सव में नहीं पहने जा सकते तो इनसे पोछे का काम लिया जाता या कण्ठा (फटे कपड़ों से बना गद्दा) बनाया जाता। अमीर लोग कपड़ों के फट जाने पर मरम्मत न करके अपने नौकरों को दे देते थे। कुछ भी बेकार नहीं जाता था।

हम अपना भोजन स्वयं उगाते थे, अपने कपड़े स्वयं बनाते थे या जुलाहे से लेते थे। गाँव में एक जुलाहा, लुहार और नाई होता था। गाँव की दुकान जरूरत

का हर सामान बेचती थी — मोमबत्तियाँ, माचिस, मसाले इत्यादि। लालेटन या खाना पकाने का तेल सरसों से मिल जाता, जिसकी घर पर खेती की जाती और गाँव की मिल में तेल निकाला जाता। बहुत ही सरल।

भक्तिविकास स्वामी: कृपया बुरा मत मानना। क्या आप बचपन में जूते डालते थे?

ब्रजहरि: हम लकड़ी के जूते डालते थे। हर गाँव में एक बढ़ई होता था। वे बहुत ही अच्छे जूते बनाते थे। जूतों के किनारों पर हाथी दाँत लगाकर।

भक्तिविकास स्वामी: हाथी दाँत। और जूते की पट्टी कपड़े की या किसी और चीज़ की होती थी?

ब्रजहरि: नहीं, नहीं कोई पट्टी नहीं।

भक्तिविकास स्वामी: हर कोई लकड़ी की खूँटी का उपयोग करता था?

ब्रजहरि: हाँ।

भक्तिविकास स्वामी: यह बहुत अच्छा है। मैंने इसलिए पूछा क्योंकि बीस वर्ष पहले मैंने भारत में देखा कि कई भारतीय जूते नहीं डालते। और आज भी कई आदरणीय ब्राह्मण, विशेषकर दक्षिण भारत में, जूते पहनना पसंद नहीं करते। बीस वर्ष पहले दक्षिण भारत के पारम्परिक शहरों में पुरुष खास दक्षिण भारतीय शैली में धोती डालते थे। धोती को मोड़कर आधा कर लेते और बिना कछा के पहनते थे। विजयवाड़ा और मदुरै जैसे कस्बों में काले चेहरे और सफेद धोतियों का समुद्र होता। आजकल वहाँ पैंट और शर्ट हैं; शायद ही कोई धोती में दिखे। क्या आपने बचपन में धोती डालना सीखा था?

ब्रजहरि: नहीं, निक्कर। किन्तु मेरे पिता जी ने पूरा जीवन कभी विदेशी वेशभूषा नहीं पहनी। सिर्फ धोती और चद्दर, इस तरह के वस्त्र।

भक्तिविकास स्वामी: एक पीढ़ी पहले क्या लड़के धोती और लड़कियाँ साड़ी पहनती थीं?

ब्रजहरि: हाँ।

भक्तिविकास स्वामी: आपकी पीढ़ी में लड़कियाँ साड़ी पहनतीं थीं?

ब्रजहरि: छठी कक्षा तक वे सलवार-कमीज पहनतीं और इसके बाद जब वे थोड़ी बड़ी हो जातीं तो वे साड़ी पहनतीं।[४६]

भक्तिविकास स्वामी: एक और चीज़; पहले स्त्री और पुरुष को एक दूसरे से दूर रखने में बहुत ही कठोर नियम थे। आप बता रहे थे कि आपके छोटे भाई की पत्नी आप से बात नहीं कर सकती थी।

ब्रजहरि: ओह हाँ। यह भी था, विशेषकर उड़ीसा में। मुझे लगता है कि यह समुदाय की सभी जातियों में था, यहाँ तक कि निम्न जातियों में भी।

भक्तिविकास स्वामी: छोटे भाई की पत्नी बड़े भाई से बात नहीं कर सकती थी।

ब्रजहरि: सभी बड़े भाइयों से। यदि उनका बात करना बहुत ही जरुरी होता तो भी वे प्रत्यक्ष बात नहीं कर सकते थे। यदि बात करनी होती तो छोटे भाई की पत्नी दरवाजे या पर्दे के दूसरी ओर होती कि वे एक दूसरे को देख न पाएँ। वह बड़े भाई के लिए प्रसाद बना सकती थी किन्तु परोस नहीं सकती थी। अब हमारे घर में समस्या है क्योंकि मेरी माता जी बहुत बूढ़ी हो चुकी हैं। जब भी मैं जाता हूँ, मुझे परोसने के लिए मेरी माता के अलावा कोई नहीं होता। किन्तु वे चल नहीं पातीं। किन्तु फिर भी वे मेरे भाई की पत्नी की जगह स्वयं प्रसाद लाती हैं और मुझे परोसती हैं।

भक्तिविकास स्वामी: इसका कारण क्या है?

ब्रजहरि: यह बड़े भाई को आदर देने का संकेत है जिसे पिता की तरह ही माना जाता है। यदि परिवार में पिता की मृत्यु हो जाए तो बड़ा भाई परिवार का मुखिया बन जाता है। जब तक पिता हैं वे मुखिया हैं। आज भी यदि पिता की मृत्यु हो जाए तो मैं परिवार का मुखिया बन जाऊँगा और सभी भाई मुझे आदर देंगे।

भक्तिविकास स्वामी: वे आपकी बात मानेंगे।

---

४६ सलवार-कमीज़ - मुस्लिम देशों से इसका प्रचलन शुरू हुआ। यह ढीली-ढाली पजामी और सूट होता है जिसे आमतौर पर अविवाहित लड़कियाँ पहनती हैं।

ब्रजहरि: चाहे वे विवाहित हो जाएँ, उनके पोते भी हो जाएँ फिर भी वे बड़े भाई का कहना मानेंगे।

भक्तिविकास स्वामी: मुझे बताया गया था कि कुछ परिवारों में भाई बहन भी आपस में ज्यादा घुलते-मिलते नहीं थे। जब वे आठ-नौ साल के हो जाते तो भाइयों को बहनों के साथ खेलने की आज्ञा नहीं थी।

ब्रजहरि: यदि बहनें थोड़ी बड़ी हो जातीं तो भाई बहन इकट्ठे नहीं सोते। जब वे पाँच या छः वर्ष के होते तो हम इकट्ठे सोते और खेलते इत्यादि किन्तु छः सात, आठ और नौ वर्ष की आयु में हम अलग अलग सोते।

भक्तिविकास स्वामी: वे आपस में ज्यादा बात भी नहीं करते होंगे।

ब्रजहरि: नहीं, नहीं वे बात करते हैं। यह बहुत ही स्नेहपूर्ण सम्बन्ध है, किन्तु फिर भी वैसा नहीं जैसा दो भाइयों के बीच। बड़ी बहनें छोटों से माता की तरह व्यवहार करती हैं। यह बहुत ही अच्छा है क्योंकि विवाह के बाद भी वे अपने छोटे भाई या बहन से बहुत अच्छा व्यवहार करती हैं। वे एक दूसरे से बहुत अधिक प्रेम और आदर करते हैं। आदर से ज्यादा प्रेम।

परिवार के बंधन बहुत ही मजबूत होते हैं; इनका बहुत ही ध्यान रखा जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि बड़ी बहन की बेटी या बेटे का विवाह या जनेऊ संस्कार है तो वह अपने परिवार में सबको बुलाएगी। रिश्तेदार भी चाहे विवाहित हों और दूसरे गाँव में रह रहे हों तो भी वे उत्सव के लिए आते हैं। मेहमान उपहार लेकर आते हैं, इसके बदले मेजबान प्रसाद परोसता है। उत्सव के बाद जब रिश्तेदार अपने गाँव वापिस जाने लगते हैं मेजबान उन्हें कुछ प्रसाद देता है और यह थोड़ा नहीं होता। और जब मेहमान अपने गाँव वापिस आते हैं तो वे प्रसाद वितरण करते हैं ताकि जो स्वयं नहीं जा सका फिर भी वह उत्सव में भाग ले सके। यह रीति अभी भी है। इसके अतिरिक्त बड़ा जो न्यौता देता है वह मेहमानों को उपहार देता है, जैसे धोती, साड़ी या बच्चों के लिए पैंट और शर्ट इत्यादि।

आजकल कुछ लोग सोचते हैं यह बहुत ही बोझ बन गया है क्योंकि हर चीज़ बहुत महंगी हो गई है किन्तु उपहारों के आदान-प्रदान की प्रथा आज भी

है। हर चीज़ महंगी हो गई है और कई बार खर्चे पूरे करने मुश्किल हो जाते हैं। फिर भी मैंने देखा है कि कई लोग कर्ज लेकर या जमीन बेचकर इन उत्सवों का खर्च उठाते हैं। यह प्रतिष्ठा का सवाल होता है।

गाँव के लोग एक दूसरे को अच्छी तरह से जानते हैं। यह आधुनिक शहरों की तरह नहीं है, जहाँ पड़ोस में रहने वाले एक दूसरे को नहीं जानते। लोग एक दूसरे को उत्सवों या पारिवारिक उत्सवों के लिए आमंत्रित करते हैं। जब जरूरत होती है तो पड़ोसी खेतों में, घर को दोबारा बनाने में या कुछ भी हो उसमें मदद करते हैं। कई बार विशेषकर फसल बुआई और कटाई के समय बहुत ही कठिन परिश्रम होता था। घर के सभी सदस्य मिलकर खुशी से काम खत्म होने तक कई दिनों तक मेहनत करते। यह एक बड़े परिवार की तरह होता। यदि किसी घर में भोजन नहीं होता था, तो लोगों को कहने की जरुरत नहीं होती थी। कोई न कोई चुपचाप पकाने के लिए चावल भेज देता। निश्चित ही वह हमेशा उनकी मदद नहीं करता रह सकता — कोई भी अमीर नहीं था —किन्तु एक दूसरे की चिंता होती थी। आप किस प्रकार आराम से खा सकते हैं जबकि उस तरफ आप के बन्धु भूखे हैं ?

हम एक दूसरे की देखभाल करने, उदारता और सेवा की भावना से बड़े हुए हैं: ''अपने बारे में ही मत सोचो। दूसरों के बारे में भी सोचो। हम सबको भगवान् ने एक साथ रखा है और यदि हम सब शांति से और सहयोग से रहेंगे तो भगवान् को अच्छा लगेगा।'' मुसीबतें थीं; यह वैकुण्ठ नहीं था। किन्तु कोई भी कचहरी, कानूनी फीस, रिश्वत नहीं थी। इस प्रकार की चीज़ें बहुत दूर थीं। यदि हमारे गाँव में कोई गम्भीर झगड़ा होता था तो बड़े सुनते और जो कुछ भी मुखिया कहता,उस निर्णय को हर किसी को मानना होता था चाहे उन्हें पसंद हो या न हो। कुछ भी निजी नहीं था। यदि कोई भी लड़ाई या असहमति होती तो पूरे गाँव को पता होता था। किन्तु सब मैत्रीपूर्ण और आपसी सहयोग के वातावरण में तय होता। जीवन सादा किन्तु कठोर था, फिर भी लोग संतुष्ट थे। आज यह सब धूर्त राजनीतिज्ञों और आधुनिक शैली से नष्ट हो चुका है।

भक्तिविकास स्वामी: क्या जाति-पाति इत्यादि की कोई भावना थी ?

ब्रजहरि: हाँ जाति-पाति तो थी। और आज भी है।

भक्तिविकास स्वामी: कोई दुर्भावना।

ब्रजहरि: नहीं कोई दुर्भावना नहीं।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु जाति-पाति की भावना तो बहुत ही दृढ़ थी। क्या ऐसा नहीं था? पहले हिन्दू के लिए जाति से ही उसका धन्धा और सामाजिक पद निश्चित होता था और इसी से किसी न किसी तरह से उसके जीवन का हर पहलू प्रभावित होता था। कोई भी बदल नहीं सकता था। एक व्यक्ति जो शूद्र कुल में जन्मा है उसे शूद्र कुल में ही जीना और मरना है। किसी भी प्रकार का धन और सत्ता उसके पद को ऊँचा नहीं उठा सकती और उसके बच्चे और पोते पूरा कुल शूद्र ही रहेगा। गलतफहमी यह थी कि महान भक्ति और अच्छे काम से ही वह मृत्यु के बाद अगले जन्म में उच्च कुल में जन्म ले सकता है। इसके अतिरिक्त उसके पास अपने भाग्य से बचने का कोई रास्ता नहीं है।

ब्रजहरि: यह सच है। किन्तु जाति प्रथा का विकार हमेशा बुरा नहीं है। यदि एक बच्चा कुम्हार, लुहार, नाई इत्यादि के घर में जन्म लेता है तो उसका व्यवसाय निश्चित हो चुका है। उसे अपने जीवन निर्वाह की कोई चिंता नहीं है। बाजार में प्रतिस्पर्द्धा और दूसरों से संघर्ष भी नहीं है। उसके पिता उसे बचपन से ही सिखा देंगे और बाद में वह अपने बच्चों को वही काम सिखा देगा।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु अलग-अलग जातियों में भेद था।

ब्रजहरि: हाँ कुछ भेद था। किन्तु आमतौर पर सहयोग था। जैसे निम्न जाति के व्यक्ति का विवाह है, हम उसके घर जाते किन्तु कुछ नहीं खाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: आप उनके यहाँ जाते थे।

ब्रजहरि: हम उनके घर जाते और आशीर्वाद देते किन्तु वहाँ खाते नहीं थे। वे हमें केवल गुड़ मिले हुए चावल दे सकते थे।

भक्तिविकास स्वामी: बंगाल में इन्हें खोई कहते हैं। इन्हें हमेशा शुद्ध माना जाता है।

ब्रजहरि: खोई गुड़ में मिली होती है। ये हम स्वीकार कर लेते थे। किन्तु हमने सुना था कि कुछ जगहों पर कुछ ब्राह्मण इतने सख्त और नियमों के इतने पक्के थे कि किसी को अपने पास भी नहीं आने देते थे। वे किसी से मिलते जुलते नहीं थे और दूसरों को नीचा देखते थे। मुझे नहीं लगता कि आज आपको ऐसे ब्राह्मण मिलेंगे। सामाजिक परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। लोग अब ऐसा व्यवहार सहन नहीं करेंगे।

भक्तिविकास स्वामी: बचपन से अब तक आपके गाँव में क्या बदलाव आया है?

ब्रजहरि: हालात बहुत ही तेजी से बदल रहे हैं। पहले लोगों के पास ज्यादा धन नहीं था और अधिकतर कृषि पर आश्रित थे। अब गाँव के बच्चों को आधुनिक शिक्षा, शहरों में रहना, दफ्तर या फैक्टरी में नौकरी चाहिए और इस तरह से वे आधुनिक, सभ्य और विकसित बनना चाहते हैं। वे सोचते हैं कि गाँव में बिना आधुनिक सुविधाओं के रहना, खेती करना और रीति-रिवाजों का पालन करना पिछड़ापन है। जो गाँव में रह भी गए हैं वे रीति-रिवाजों का कठोरता से पालन नहीं करते। अब कृषि को वहाँ नकार दिया गया है क्योंकि गाँव के नौजवान को अब शहरों और फैक्टरियों में नौकरियाँ मिल रही हैं। यहाँ तक कि किसान भी आलसी हो गए हैं। उत्सव बहुत ही अच्छा पारिवारिक कार्यक्रम होता था; किन्तु अब स्टेज पर अधनंगी लड़कियाँ गन्दे फिल्मी गानों पर नाचती हैं। फिर भी दूर के गाँव अच्छे हैं। किन्तु जो शहरों के पास हैं और जहाँ के गाँववासी फैक्टरियों में काम पर जाते हैं वहाँ के लोगों ने अपनी पूरी संस्कृति खो दी है।

गाँव में हर जगह शराब पी जाती है। लोग फैक्टरियों में काम करते हैं, धन कमाते हैं और पीते हैं। ज्यादातर अवैध रूप से बनाई देसी शराब पीते हैं। दारु का अर्थ है शराब, आप जानते हैं? हर जगह। नौजवान लड़के बारह साल की उम्र में काम पर जाते हैं वे सिगरेट, बीड़ी पीने लगते हैं और पन्द्रह तक पहुँचते पहुँचते दारु। और फिर संभोग और गर्भपात। गाँव में हर जगह सस्ते गर्भपात के विज्ञापन हैं।

लोग पहले बहुत ही भोले-भाले होते थे। मनोरंजन के लिए हम *श्रीमद्भागवतम* सुनते या कीर्तन करते और समय समय पर नाटक करने वाले

आते रहते। सिनेमा, रेडियो और अब टी.वी ने लोगों के काम करने का, सोचने का और पहनने का, हर चीज़ का ढंग बदल दिया है। यह एक बहुत ही बड़ा अवसर होता जब गाँव के लोग परिवार के साथ शहर फिल्म देखने जाते।

भक्तिविकास स्वामी: धार्मिक फिल्म?

ब्रजहरि: बिल्कुल। पहले फिल्में परिवार के लिए हुआ करती थीं। कामुक दृष्य यहाँ तक कि चुम्बन पर भी पाबंदी थी। फिल्मों में हमारी संस्कृति के धार्मिक आदर्श, आत्म-बलिदान इत्यादि होता था। फिर वे धीरे-धीरे नए नए विचार ले आए। अब फिल्में पूरी तरह से भौतिक और गिर चुकी हैं। लोग गाँव में रहने की जगह शहरों में अमानवीय परिस्थितियों में रहने के लिये तैयार हैं क्योंकि वे फिल्मों में दिखाए जाने वाले उच्च जीवन की नकल, जींस पहनना इत्यादि, करना चाहते हैं। वे गाँव के जीवन और कृषि को घृणित दृष्टि से देखते हैं जो उनके असंख्य पूर्वजों ने की है। वे अब और किसी बड़े का आदर करना नहीं चाहते। अब गाँव में कई तरह की मशीनें आ गई हैं जैसे पानी का पम्प, ट्रैक्टर इत्यादि। उनकी मानसिकता बनती जा रही है कि कड़ा परिश्रम श्राप है। अधिकतर लोगों के पास मोटरसाइकिल है क्योंकि वे धन कमा रहे हैं जबकि पहले उनके पास साईकिल भी नहीं थी। वे सिर्फ फैक्टरियों में काम पर जाते हैं, धन कमाते हैं, शराब और सिगरेट पीते हैं और सिनेमा जाते हैं। उनके पास कैसेट रिकार्डर होता है जिससे वे दिन रात फिल्मी गाने सुनते रहते हैं। तो इस औद्योगिक क्रांति ने धीरे-धीरे गाँव के सीधे-साधे जीवन को बर्बाद कर दिया है।

फैक्टरी की बनी वस्तुएँ जैसे प्लास्टिक की थालियाँ और मिल का कपड़ा इत्यादि ने पारम्परिक जीवन निर्वाह के धंधों कुम्हार, जुलाहा, दर्जी इत्यादि को नष्ट कर दिया है और अब वे काम की तलाश में शहर जा रहे हैं। अब उनके बच्चे ड्राईवर, फैक्टरी में मजदूर या मेकैनिक बन गए हैं।

भारत के गरीबों और पिछड़े लोगों के दु:ख के बारे में काफी कुछ कहा गया है और अधिकांश रूप से यह सत्य भी है। कई बार अज्ञानता और उदासीनता के कारण उनका घोर शोषण हुआ है। वे इसे अपना भाग्य मानकर स्वीकार कर लेते थे और ज्यादा शिकायत नहीं करते थे। आधुनिक शिक्षा और राजनीति ने

यह सब बदल दिया है किन्तु फिर भी मनुष्य के असली सुख की दृष्टि से कोई वास्तविक प्रगति नहीं हुई। शोषण अभी भी हो रहा है। किन्तु अब कुलीन वर्ग की जगह सरकारी अधिकारी और राजनीतिज्ञ ज्यादा शोषण कर रहे हैं।

आजकल कम पढ़े लिखे लोग भी संसार में होने वाली घटनाओं के बारे में जानते हैं। उन्हें पूरे संसार की, विशेषकर खराब वस्तुएँ घर बैठे ही टी.वी द्वारा प्राप्त हो रहीं हैं। किन्तु उन दिनों में शायद ही कोई अपने गाँव से बाहर जाता था। गाँव से बाहर जाना एक बड़ी बात मानी जाती थी और पूरा परिवार इसके लिये इकट्ठा होता था। अधिकांशतः वे विवाह या तीर्थ यात्रा पर जाते। हम उड़िया लोगों के लिए धाम यात्रा का अर्थ है भगवान् जगन्नाथ के दर्शन करने जाना। नहीं तो लोग शायद ही शहर जाते थे। उन्हें जाने की जरुरत ही नहीं थी। हर चीज़ गाँव में थी।

महात्मा गांधी ने कहा था, ''यदि गाँव बर्बाद हुए, भारत भी बर्बाद हो जाएगा। भारत फिर भारत नहीं रहेगा।'' कहने को गाँव अब भी हैं। मुर्गा आज भी सुबह बांग देता है और ठण्डी हवा बहती है। किन्तु अब वह भावना नहीं रही। अब गाँव नरक बन चुका है। जानवरों और मनुष्यों पर होने वाली निर्दयता पर आप विश्वास ही नहीं कर पाएँगे। असली भारत मर चुका है या फिर बहुत ही गहरी नींद सो रहा है। हमारे हृदय में दूसरों के प्रति अच्छी भावना होती थी, पर अब हम इस भावना को बनाए रखने में समर्थ नहीं हैं। दूसरों पर यहाँ तक कि अपने परिवार में विश्वास करना ही मुश्किल है। राजनीति जिसे हम पहले जानते भी नहीं थे, आज हर जगह है। गाँव का जीवन अब लोभ और द्वेष से भरा है। पहले हमारे दरवाजे एक अपरिचित के लिए भी खुले थे। अब ये पड़ोसियों तक के लिए बंद हैं। जीवन चल रहा हैं किन्तु यह अस्त-व्यस्त और दुःख से भरा है। हमने अपनी आत्मा खो दी है। हमारे पास वोट और तथाकथित अधिकार हैं किन्तु हमारे पास अच्छी भावनाएँ या दूसरों का आदर नहीं हैं। हमारे पास टी.वी, मोटरसाइकिल, ट्रैक्टर और वे सब चीज़ें हैं जिसके हम सपने देखते थे और जो बढ़िया भविष्य लेकर आतीं। किन्तु वास्तव में बीता समय एक तरह से अच्छा था। इन सब मशीनों से हमें सुख मिलना चाहिए था किन्तु इन्हें खरीदने

के लिए पर्याप्त धन होने पर भी हमारे पास इनका आनन्द लेने के लिए शांति नहीं है। आजकल बहुत ज्यादा झगड़े होते हैं। लोग शराब पीकर लड़ते हैं। हर गाँव में शराब की दुकानें हैं, जिनकी हमने अपने बचपन में कल्पना भी नहीं की थी। वे अपने बड़ों का आदर पहले की तरह नहीं करते। अपनी पीढ़ी में हम अपने शत्रुओं का भी आदर करते थे। मान लो कि हमारे गाँव में कोई अन्य ब्राह्मण हैं जिनकी हमारे पिता जी से नहीं बनती। हम उन्हें अपना शत्रु मानते हैं। हमारे पिता जी के शत्रु का अर्थ है हमारा शत्रु। किन्तु जब भी हम उन्हें देखते तो हम उन्हें नमस्कार करते सिर्फ आदर देने के लिए। यदि वे हमसे बात भी नहीं करते तो भी हम नमस्कार करते।

भक्ति विकास स्वामी: यह बहुत ही अद्भुत है कि इतनी सुसंस्कृति होने के बावजूद दोस्त और दुश्मन थे।

ब्रजहरि: (हँसते हैं) यह स्वाभाविक है। यह भौतिक संसार है।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु संस्कृति इतनी अच्छी थी कि दुश्मन को भी सम्मान से देखा जाता था।

ब्रजहरि: हाँ, यह संस्कृति का आदर्श है।

लोकनाथ स्वामी के बचपन का घर

निम्नोकित निबन्ध लोकनाथ महाराज की जन्मभूमि, अरावड़े, महाराष्ट्र में दिसम्बर ११९६ में प्रात:कालीन सैर के दौरान चर्चा के अंश हैं।

घर से बाहर

यहाँ कोई प्रदूषण नहीं है; हवा ताजी है। यहाँ कोई वाहन नहीं है। हमें सिर्फ भैंसों के गले में बंधी घण्टियाँ सुनाई देती हैं। पहले हर किसान के पास घण्टियों के साथ बैलगाड़ी होती थी। बैलगाड़ी पर घण्टियाँ लगा दी जाती थीं ताकि जब भी आप खेतों से लौट रहे हो तो केवल यह आवाज सुनाई देती। कुँए से बैलों की सहायता से पानी निकाला जाता था। कोई बिजली नहीं थी और न ही कोई बिजली की मोटर, तेल से चलने वाले इंजन या वाहन भी नहीं थे। अब ये वाहन भयावह आवाजें निकालते हैं।

किसान गाया करते थे। कुछ बैल तो तब तक काम नहीं करते थे जब तक किसान कोई गाना नहीं गाता था। वे घण्टों गाते रहते थे। मुझे याद है जब मैं छोटा बच्चा था तो मैं कई किसानों को गाते हुए सुनता था। मेरे पिता जी भी गाते थे और मैं भी उनमें से कुछ गाने सीख रहा था।

रसोई से परिचय

हर घर में माता अपने हाथों से पीसने का काम करती थी। पीसने की कोई मशीन नहीं थी। माता केवल उतना ही आटा पीसती थीं जितना कि उस दिन भकरि (बाजरे के आटे से बनी चपाती) बनाने के लिए आवश्यक हो। मेरा शरीर भकरि से बना है। मेरे जीवन के पहले पच्चीस साल, जब तक मैं मुम्बई नहीं गया, मैं तीनों समय भकरि खाता था। हम गेहूँ के आटे की चीज़ें जैसे चपाती, केवल उत्सवों पर कई महीनों में केवल एक बार ही खाते थे। चावल भी उत्सवों के लिए था। किसान इस इलाके में गेहूँ और चावल नहीं उगाते, इसलिए उन्हें यह खरीदना पड़ता है।

पीसना बहुत ही अच्छा है,एक प्राकृतिक व्यायाम। इससे स्त्री का शरीर तंदरुस्त रहता है। पीसने के लिए उन्हें सुबह जल्दी उठना पड़ता है क्योंकि जब तक वह पीसने का काम नहीं कर लेते तब तक परिवार के लिए नाश्ता नहीं होगा। माता पीसकर और पकाकर नाश्ता खेतों में काम कर रहे पिता जी के पास भेज देतीं। मैं अपने परिवार के लिए नाश्ता ले जाता था। कुछ खेत घर से बहुत दूर पाँच किलोमीटर तक दूर थे। वे अच्छे पुराने दिन थे — बहुत ही स्वस्थ, सुसंस्कृत और सभ्य।

गाँव की ओर जाना

यह सड़क जिस पर हम चल रहे हैं, नई है। यह कोई प्रगति नहीं है। जब मैं ग्यारह साल का था तो मैं पास के कस्बे तस्गाओं, जिला संगली गया था। एक तरफ जाने में अढ़ाई घण्टे लगते थे और वापिस आने में तीन घण्टे। अब बच्चे किसी वाहन पर सवार होकर कुछ बकवास सुनने या देखने शहर चले जाते हैं।

मेरे पिता जी पण्ढरपुर पैदल जाते थे, सौ किलोमीटर जाने में और सौ आने में। गाँव से कई लोग साल में कई बार जाते थे। यह प्रथा थी कि जो कोई भी दर्शन के लिए जाता था वह भगवान् विट्ठल के चरण भी स्पर्श करता था।[४७] पण्ढरपुर दर्शन केवल भगवान् को देखना नहीं होता था। जब कोई भगवान् विट्ठल के शरीर का स्पर्श करता तो यह पूर्ण दर्शन होते थे।

जो लोग पण्ढरपुर नहीं जा पाते थे, वे गाँव की सीमा पर प्रतीक्षा करते थे। उन्हें पण्ढरपुर जाने वाले गाँव वालों के लौटने की आशा होती थी। जैसे ही तीर्थयात्री वापिस आते, पीछे रह गए गाँव वाले उनके चरण स्पर्श करते। उनके लिए भक्तों के चरण स्पर्श करना भगवान् विट्ठल के चरण स्पर्श करने के समान था। आप किसी को भी उस व्यक्ति के चरण छूने से रोक नहीं सकते जो भगवान् विट्ठल के दर्शन करके आया था।

---

४७ विट्ठल – पण्ढरपुर में भगवान् कृष्ण के विग्रह का नाम।

गाँव के अस्पताल से गुजरना

यह गाँव का अस्पताल है। माताओं ने पीसना बन्द कर दिया है इसलिए वे ज्यादा बीमार होती हैं और अब उन्हें गाँव में अस्पताल चाहिए। तीस वर्ष पहले जब मैं गाँव में था हमारा एक डॉक्टर था जो सप्ताह में केवल एक बार आता था। वह दोपहर को आता और जिसे दवाई चाहिए होती, वे ले लेते। बहुत ही कम बीमारी होती थी क्योंकि लोग ताजा अनाज खाते थे और बिना किसी जटिलता के स्वस्थ जीवन बिताते थे। अब चीज़ें मुश्किल होती जा रही हैं, और वायु और ध्वनि प्रदूषण बढ़ता जा रहा है।

महाराज की जन्मभूमि पर

यह जमीन दो भागों में बाँटी गई है; इसके बाएँ में मेरे पिता जी का घर और दाएँ में मेरे चाचा जी का घर था। हम बीच में बैठे हैं। मैं यहाँ पहले चौदह वर्ष रहा था। मेरा जन्म यहाँ हुआ था। यह वही जगह है जहाँ मैं एक शिशु की तरह घुटनों के बल चला और रोया। उन दिनों बहुत सारी चीज़ें बहुत अलग थीं, कोई बिजली नहीं थी। जब मैं दस वर्ष का था तो पहली बार गाँव बड़े बिजली घर से जुड़ा और बिजली आई। इससे पहले हम मिट्टी के तेल की लालटेन या लैम्प का उपयोग करते थे। मोमबतियाँ इतनी प्रचलित नहीं थीं।

तस्गाओं दस किलोमीटर दूर है। मेरे माता-पिता ने मुझे वहाँ कभी जाने की आज्ञा नहीं दी। तस्गाओं में बहुत बड़ा गणेश मन्दिर है। और गणेश जी के आविर्भाव दिवस पर वे गणेश जी की बहुत बड़ी रथ-यात्रा निकालते हैं। एक बार मुझे गणेश उत्सव पर जाने दिया गया। वह पहला मौका था जब मैं किसी शहर में गया था। मैं उस समय ग्यारह वर्ष का था और सबसे लम्बी दूरी जो मैंने तय की, वह दस किलोमीटर थी।

गाँव से गुजरना

आप वह पहाड़ की चोटी देख रहे हैं। चोटी पर एक बड़ी चट्टान है। इस चोटी का नाम चिलमकर है। चिलम का अर्थ होता है पाईप। बड़े हमें बताते

थे कि एक बहुत बड़ा दैत्य था जिसके पास चिलम थी। एक बार उसने अपनी चिलम वहाँ खाली की और राख ने इस पहाड़ी को बना दिया। पहाड़ की चोटी पर वह चट्टान उसकी चिलम है जहाँ उसने राख फैंकी। आप उस दैत्य के आकार के बारे में सोच सकते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी यह कहानी चली आ रही है।

विद्यालय

मैं यहाँ गाँव के विद्यालय में सात वर्ष तक जाता रहा। तब मैं पास के कस्बे में उच्च विद्यालय चला गया और चार वर्ष वहीं रहा। सप्ताह के अंत या छुट्टियों में मैं यहाँ आया करता था और खेती तथा भैंसें चराने में घर की मदद करता था। उस समय हमारे पास बहुत सी भैंसें थीं। जब मेरा परिवार कृष्णभावनाभावित हुआ तो उन्होंने गाय ज्यादा रख लीं। आप वे बड़े पहाड़ देख रहे हैं। वहाँ हर जगह खेत ही खेत हैं। हम अपनी भैंसें वहाँ पहाड़ों के आसपास ले जाया करते थे और वहाँ चराते थे।

बाद में मैं कालेज की पढ़ाई के लिए संगली शहर चला गया। मेरे घर वाले चाहते थे कि मैं इंजीनियर बनूँ, ताकि एक दिन मैं गाँव में मोटरसाइकिल पर आऊँ। उन दिनों केवल इंजीनियर और डॉक्टरों के पास मोटरसाइकिल होती थी, बाकि सब पैदल चलते थे।

बाण, बन्दर और आम

भारत के दक्षिणी-पूर्वी प्रांत आंध्रप्रदेश के जीवन की एक तस्वीर। नर्मदा स्वामी कई विषयों — रामायण नाटक, स्त्री-पुरुष में सम्बन्ध, चरवाहे, बचपन के खेल-कूद इत्यादि पर विस्तार से बताते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: नर्मदा महाराज, आप का जन्म नेल्लोर, आंध्रप्रदेश में हुआ था। आज यह बहुत बड़ा और व्यस्त शहर है, किन्तु पहले यह छोटा सा कस्बा था जिसमें बाजार था।

नर्मदा स्वामी: हाँ। तब यह बहुत ही छोटा सा शांत कस्बा था।

भक्तिविकास स्वामी: तो आप मन्दिर के पास कस्बे के कोने पर रहते थे। कस्बा नदी के तट पर बसा हुआ है, नहीं?

नर्मदा स्वामी: हाँ, पेन्नर नदी के तट पर।

भक्तिविकास स्वामी: नेल्लोर में रंगनाथ स्वामी का बहुत सुन्दर मन्दिर बना हुआ है।

नर्मदा स्वामी: हाँ। लेटे हुए श्री रंगनाथ के विशाल अर्चा-विग्रह हैं।

भक्तिविकास स्वामी: श्री रंगम की तरह?

नर्मदा स्वामी: हाँ, श्री रंगम की तरह, किन्तु थोड़े से छोटे।

भक्तिविकास स्वामी: आप ब्राह्मण कुल से हैं या अ-ब्राह्मण?

नर्मदा स्वामी: अ-ब्राह्मण परिवार से। चौधरी, नायडू — आधिकारिक रूप से शूद्र किन्तु आन्ध्रप्रदेश में समृद्ध और शक्तिशाली समुदाय। मेरी माता जी श्री वैष्णव परिवार से थीं। इसलिए आधिकारिक रूप से निम्न कुल के होने पर भी उन्हें भक्त माना जाता था। इसलिए वे ब्राह्मणों की तरह कई मंत्रों का उच्चारण करते थे और कई प्रकार के अनुष्ठान भी करते थे। पारम्परिक रूप से हम जमींदार थे किन्तु मेरे पिताजी माल ढुलाई के व्यापार में चले गए। हमारे पास अब भी

जमीन है, किन्तु मेरे पिताजी के पास यात्रियों को ले जाने वाले वाहनों का बेड़ा और सामान ढोने वाले ट्रक थे जिनका 1970 में राष्ट्रीयकरण किया गया था।

भक्तिविकास स्वामी: शहर में समृद्ध व्यापारी होने के नाते, वे विख्यात होंगे।

नर्मदा स्वामी: हाँ, वे प्रसिद्ध व्यक्ति थे। वे परिवहन व्यापार के चुनिंदा लोगों में से एक थे। पहले कस्बे कम थे और बहुत बड़े भी नहीं थे। हर जिले का एक कस्बा, बाजार होता था जहाँ गाँव के लोग अपनी अतिरिक्त पैदावार लाते और जो वस्तुएँ गाँव में उपलब्ध नहीं होती थीं वे प्राप्त करते। जैसे गहने, खास उत्सवों के लिए महीन कपड़े। बाजार वाले दिन भारी मात्रा में गाँव वाले कस्बे में खरीदने-बेचने तथा मेल मिलाप करने आते। किन्तु जब मेरा जन्म हुआ, पूरे व्यापार का रूप बदल रहा था। जो समय के साथ बदल रहे थे, जैसे कि मेरे पिता जी, वे बहुत सा धन कमा रहे थे।

भक्तिविकास स्वामी: मुझे लगता है नेल्लोर बहुत बड़ी कृषि-मण्डी थी।

नर्मदा स्वामी: हाँ, बिल्कुल।

भक्तिविकास स्वामी: चावल, तम्बाकू?

नर्मदा स्वामी: हमारे जिले में मुख्य रूप से चावल। तम्बाकू बाद में आया किन्तु मुख्य रूप से चावल। दक्षिण भारत में नेल्लोर चावल के लिए प्रसिद्ध है। वे इसे हर जगह पसन्द करते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: ये लम्बे दाने होते होंगे?

नर्मदा स्वामी: हाँ बहुत अच्छे चावल। और दाल काटने के बाद वे इसे कुछ दिन धूप में सुखाते और फिर भूसी निकाल कर भूनकर एक बड़े खुले बर्तन में डाल देते। ताकि यह लम्बे समय तक खराब न हो। भूनने के बाद इसकी सुगन्ध इतनी अच्छी होती थी कि आप इसे ऐसे ही बिना पकाए ही खा सकते हैं। मैं इसे अपनी जेब में रखा करता था और हमेशा चबाता रहता था।

भक्तिविकास स्वामी: इसलिए शायद आप इतने बड़े और ताकतवर हैं।

नर्मदा स्वामी: एक तेलगु पण्डित मुझे टयुशन पढ़ाया करते थे। वे मुझसे कहते, ''तुम्हारी जेब में क्या है? मुझे थोड़ा सा दो।'' इस तरह से वे दाल की मेरी पूरी जेब ही खाली कर देते थे (हँसते हुए)। वे भी इसे पसंद करते थे।[४८]

हर प्रकार का भोजन उस समय स्वादिष्ट था। आजकल के भोजन, जो आप लेते हैं, से मुझे घिन्न आती है। सबका एक ही स्वाद है। अपितु इसमें कोई सुगन्ध ही नहीं है। यहाँ तक कि तथाकथित ताज़ी सब्जियाँ भी नीरस हैं। कुछ घण्टे पहले तोड़ी गई सब्जियों को बनाने पर भी उनका अधिकतर स्वाद और पोषकता चली जाती है, शहर में बिकने वाली फ्रिज में रखी पुरानी और आधी सड़ी सब्जियों के बारे में क्या कहा जाए। सब्जियों को असल में यदि लेना है तो तोड़ने के तुरन्त बाद बनाकर खा लेना चाहिए। शहर की मण्डी में बिकने वाली सब्जियाँ निर्जीव और नीरस होती हैं जिन्हें बनावटी खाद और खतरनाक कीड़ेमार दवाइयों के साथ उगाया जाता है।

लोगों को पता ही नहीं है कि भोजन होता क्या है। भोजन में न तो कोई स्वाद है, और न ही लोग जानते हैं कि कैसे बनाना है। वे उत्सवों के लिए कई प्रकार के पकवान बनाते थे। अब कौन जानता है ऐसे व्यंजन बनाने? माताएँ काम पर जाती हैं, उनके पास समय नहीं है। उन्हें फास्ट फूड चाहिए।

पहले स्त्रियाँ सुन्दर दिखने के लिए रात को अपने चेहरे पर हल्दी का मिश्रण लगाती थीं। अब यही काम करने के लिए वे ब्यूटी पार्लर जाती हैं और दो हजार रुपए खर्च कर देती हैं। उनके पास निपुण मेकअप करने वाली है जो उन्हें बताती है कि कैसे अपना सारा धन खर्च करना है। किन्तु पहले हर दादी सुन्दरता में निपुण थी, हर चीज़ में निपुण थी। वे जानती थीं कि कैसे पकाना है, कैसे सफाई करनी है, बच्चों की कैसे देखभाल करनी है, पति से कैसे व्यवहार करना है, आदि। वे बिना मैडिकल कालेज और मैनेजमैंट स्कूल गए, डॉक्टर और प्रबन्धक थीं। घर ही स्कूल था।

हमसे दो पीढ़ी पहले बच्चों को भारतीय शैली में पारम्परिक ढंग से शिक्षा दी जाती थी। बस, उतना जितना उन्हें जानने की जरुरत थी। एक किसान का पुत्र

---

४८ इस पूरे साक्षात्कार के दौरान नर्मदा महाराज अपने बचपन के दिनों को याद करके कई बार हंसे थे।

सीखता कि कितने प्रकार की मिट्टी, बीज और कृषि के औजार होते हैं। ऋतु के अनुसार कब क्या बोना है, कब और कैसे कटाई करनी है, अनाज कैसे निकालकर संभालना है, मौसम के बारे में जानकारी, पशुओं को जोतना, गायें लाने और ले जाते समय देखभाल करना इत्यादि। किसान का पुत्र पिता के साथ काम करने से हर चीज़ सीख जाता था। स्कूल जाकर, कई चीज़ें, जिनका उससे कोई सरोकार ही नहीं, सीखकर समय बर्बाद करने की कोई आवश्यकता नहीं थी।

इसी प्रकार बढ़ई, सुनार, लुहार, कलाकार, संगीतज्ञ और अन्य अपने काम को बचपन से ही सीखना शुरु कर देते थे। केवल जो ब्राह्मण थे वे ही विस्तृत शिक्षा लेते थे। ब्राह्मण अपने सम्प्रदाय के अनुसार ही विस्तृत दार्शनिक शिक्षा लेते थे और महाभारत, रामायण, श्रीमद्भागवतम् और अन्य पुराणों की कथाएँ सीखते थे। ब्राह्मण अन्य जाति के लोगों को ज्ञान देते थे और स्पष्ट करने के लिए कथाएँ बताते थे। एक ब्राह्मण को हजारों कहानियाँ आना बड़ी बात नहीं थी। ऐसी कथाएँ घरों में दोहराई जाती थीं, विशेषकर दादी बच्चों को सुनाती थी ताकि बड़े होते होते हर कोई कृष्ण, राम, हनुमान और पाण्डवों के साहसिक कार्यों के बारे में जान जाए।

व्यापारी के बच्चे व्यापार करने के लिए जितना गणित आवश्यक था, सीख लेते। वे अच्छी गुणवत्ता वाली वस्तुओं और बुरी वस्तुओं में पहचान करना, ग्राहक, माल भेजने वाले और कर संग्राहक से बर्ताव करना सीखते। हर कोई धार्मिक उपदेश ग्रहण करता।

भक्ति विकास स्वामी: अत: भारत के पारम्परिक गाँव के जीवन में दृढ़ आध्यात्मिक और बौद्धिक आधार था।

नर्मदा स्वामी: हाँ बिल्कुल, गाँव में बहुत अधिक बौद्धिक कार्य होते थे, क्योंकि यहाँ सबसे ज्यादा ब्राह्मण रहते थे। चाहे कुछ अधार्मिक लोग भी थे, किन्तु अधिकतर प्रथा को बनाए रखने में समर्पित थे। सभी महान आचार्य — रामानुचार्य, मध्वाचार्य, यहाँ तक कि शंकराचार्य, चैतन्य महाप्रभु की तो बात ही छोड़ दें — ने किस प्रकार अपने उपदेशों का प्रसार किया। गाँव गाँव जाकर। वे ब्राह्मणों से मिलते, शास्त्रार्थ होता और उन्हें विश्वास दिलवाते। और ब्राह्मण अन्यों को समझाते।

भक्तिविकास स्वामी: आपने हमें विभिन्न जातियों की शिक्षा के बारे में बताया था। स्त्रियों की शिक्षा के बारे में बताएँ?

नर्मदा स्वामी: स्त्रियों को पहली और महत्वपूर्ण शिक्षा थी कि सती और पतिव्रता रहना। खाना पकाना, सफाई रखना, सूत कातना, मेहमानों की आवभगत, बच्चों की देखभाल और एक समर्पित घरेलू पत्नी के लिए जो कुछ भी आवश्यक था वह सब सीखना। आमतौर पर स्त्रियों को ज्यादा शिक्षा नहीं दी जाती थी किन्तु उच्च जाति की औरतें पढ़ना-लिखना सीख सकती थीं।

भक्तिविकास स्वामी: खाना बनाना स्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण था। लड़कियाँ छोटी उम्र से ही सही ढंग से बनाना सीखती थीं।

नर्मदा स्वामी: इससे उनके पति आभारी रहते थे। यदि वे हमेशा अच्छा बनाती और मधुरता से परोसती तो एक पति अपनी पत्नी के लिए क्या नहीं करना चाहेगा? स्त्री खाना पकाती और हर किसी को परोसती। स्त्री केवल महिला नहीं अपितु माता थी और हर कोई इससे प्रसन्न था।

पुरुषों को बच्चों के विशेषकर छोटे बच्चों के पालन पोषण से कम ही सरोकार था। यदि कोई अपने बच्चों को घुमाता और लाड़ करता तो यह पुरुषत्व के विपरीत माना जाता। यह पूरी तरह से स्त्रियों का कर्त्तव्य था। जब बच्चे थोड़े बड़े हो जाते तो पिता का दायित्व होता उसे अनुशासन में करना और निर्देश देना। आमतौर पर पिता अपनी बेटियों से अधिक स्नेह करते और पुत्रों के प्रति कठोर रहते। माताएँ इसके विपरीत पुत्रियों के प्रति कठोर रहतीं और पुत्रों के प्रति अधिक स्नेहिल।

भक्तिविकास स्वामी: तो इसका अर्थ हुआ बच्चों को दोनों तरह से प्रेम और अनुशासन का मिश्रण मिलता।

नर्मदा स्वामी: और स्त्रियाँ विलासी नहीं थीं, वे माताएँ थीं।

भक्तिविकास स्वामी: काम उन्मुखी न होकर वे ममता से परिपूर्ण थीं। संभोग शब्द वर्जित था।

नर्मदा स्वामी: वर्जित? हमने कभी सुना भी नहीं था।

भक्तिविकास स्वामी: आज यदि कोई संभोग के बारे में खुलेआम बोले तो उसे उन्नत माना जाता है।

नर्मदा स्वामी: (घृणा दिखाते हुए) प्रेम, सुन्दरता और विश्व सुन्दरी की बातें। उन्हें नहीं मालूम की सुन्दरता क्या होती है। पहले सचमुच सुन्दर लोग होते थे, हर जगह सुन्दरता, केवल बाहरी सुन्दरता नहीं। यहाँ तक कि पहले की औरतें शारीरिक दृष्टि से आज की युवा औरतों की तुलना में अधिक सुन्दर थीं। ये बेचारी लड़कियाँ सुन्दर बनने के लिए इतना समय गँवाती हैं, किन्तु ये सिर्फ खुले बालों के साथ पिशाची की तरह भद्दी लगती हैं। ये कभी भी वास्तविक रूप से सुन्दर नहीं बन सकतीं क्योंकि ये हमेशा चिंताग्रस्त रहती हैं। ये कामुक लग सकती हैं किन्तु असल में सुन्दर नहीं।

यदि ये सुन्दर भी हों, तो अपने आप को दिखाकर इनका क्या काम है? यह उचित नहीं है। चाणक्य पण्डित ने कहा है एक स्त्री की सुन्दरता उसका सतीत्व है, उसके बालों का ढंग नहीं। आज भी गाँव में औरतें शारीरिक काम करते हुए भी साड़ी और गहने पहनती हैं। वे पुरुषों की पैंट जैसे अनाकर्षक कपड़ों में नहीं दिखना चाहती थीं। उन्हें यह स्त्रीत्व के विरुद्ध और अमंगलमयी लगता।

भक्तिविकास स्वामी: पहले क्या स्त्रियाँ अपना सिर ढकती थीं?

नर्मदा स्वामी: अधिकतर औरतें, आप कह सकते हैं 1960 से पहले। कई बहुत अधिक पारम्परिक स्त्रियाँ किसी भी पुरुष के सामने नहीं आती थीं चाहे हम बच्चे ही क्यों न हों। उन्हें पूरी तरह से ढका होना चाहिए था, सिर्फ वे आँखों से देख सकती थीं।

भक्तिविकास स्वामी: अपने पुत्र को देखने के लिए भी?

नर्मदा स्वामी: अपने पुत्र को देखने के लिए भी। वे बहुत ही नियम-निष्ठ थीं। वे सिर्फ उतना ही घूंघट खोलतीं जिससे वे देख सकें।

भक्तिविकास स्वामी: किस उम्र में लड़कियाँ सिर ढकना शुरु कर देती थीं?

नर्मदा स्वामी: बहुत ही जल्दी। कम से कम बारह साल की उम्र में वे लोगों के बीच अपना सिर ढक कर रखती थीं। हमने सारी पुरानी प्रथाएँ देखी हैं। स्त्रियाँ तब तक नहीं खा सकती थीं जब तक उनके पति नहीं खा लेते। चाहे वे देर रात को ही क्यों न आएँ, वे उनकी धीरता से प्रतीक्षा करतीं, परोसती, फिर लेतीं। स्त्रियों का आदर इन चीज़ों का पालन करने पर होता था। वृद्ध छोटी लड़कियों को 'माता' कह कर बुलाते थे।

भक्ति विकास स्वामी: स्त्री का स्थान घर में था। उन्हें विनम्र और कर्मठ होना होता था। सुबह से लेकर रात तक वे व्यस्त रहती थीं। उन दिनों इसका बहुत विरोध हुआ। औरतें स्वतंत्रता और व्यापार में समान अधिकार, नौकरी में अवसर और उन पर तानाशाही न हो, की मांग कर रही थीं। आधुनिक औरतें सोचती हैं कि यदि उन्हें समान अधिकार मिल जाएँ तो वे ज्यादा सुखी होंगी — और बाहर से यह मांग सही प्रतीत होती है — किन्तु हम देख रहे हैं परिवार के टूटने से समाज में गड़बड़ी फैल रही है। ऐसा लगता है कि पहले स्त्रियों का निम्न दर्जा होने के बावजूद वे अधिक सुखी थीं और पारिवारिक जीवन अधिक स्थिर था।

नर्मदा स्वामी: किसी भी दृष्टिकोण से यह अधिक सुखी और स्थिर था। कोई तलाक नहीं था। बहुत ही दुर्लभ। बचपन में मैंने इसके बारे में कभी सुना भी नहीं था। और संयुक्त परिवार हुआ करते थे, पिता और तीन या चार पुत्रों के परिवार सभी एक ही छत के नीचे रहते थे। यदि संयुक्त परिवार में एकता होती तो वे एक दूसरे के बच्चों के साथ कोई भेदभाव नहीं करते थे। बच्चे होने का कोई प्रतिबन्ध नहीं होता था। पहले कोई परिवार नियोजन नहीं होता था। ज्यादा बच्चे होना अच्छा माना जाता था। गर्भ धारण करना मंगलमय माना जाता था, न कि इसे नकारा जाता था। तो इस प्रकार तीन चार बच्चे और उनकी पत्नियाँ और उनके बच्चे सभी इकट्ठे रहते थे, और हर वस्तु बाँटते थे, इकट्ठे खाते थे और अपना भाग्य भी इकट्ठे खोजते थे। ऐसा नहीं था कि स्त्रियों को नीचा समझा जाता था, ऐसा कुछ नहीं था। एक स्त्री अपने परिवार की प्रथाओं को अपनाती थी तो उसका समाज में आदर होता था। यह जरुरी था। यदि कोई स्त्री पालन नहीं करती थी तो यह बदनामी थी।

भक्तिविकास स्वामी: आजकल पुरुष और स्त्रियों का घुलना-मिलना सामान्य बात है, जबकि पहले यह वर्जित था।

नर्मदा स्वामी: पूरी तरह से। वे सतीत्व पर बहुत ज्यादा बल देते थे। जब तक लड़कियाँ किशोरावस्था को प्राप्त नहीं कर लेती थीं तबतक वे बाहर आ सकती थीं और स्कूल जा सकती थीं, किन्तु जब वे किशोरावस्था में आ जातीं, उनके बाहर आने का प्रश्न ही नहीं उठता। उनकी शिक्षा समाप्त, हर चीज़ समाप्त।

भक्तिविकास स्वामी: और तब उनका विवाह कर दिया जाता था।

नर्मदा स्वामी: हाँ, सदैव।

भक्तिविकास स्वामी: किस आयु में?

नर्मदा स्वामी: बारह से सोलह वर्ष की आयु में। कुछ उच्च जाति के लोगों में लड़कियों का विवाह नौ या दस साल की आयु में कर दिया जाता था किन्तु फिर भी वे अपने माता-पिता के घर तीन चार साल रहती थीं। वे लड़कियों को शिक्षा भी देते थे, किन्तु जैसे ही वे किशोरावस्था को प्राप्त होतीं और सोलह से पहले, आमतौर पर बारह, चौदह की उम्र में, तो विवाह।

भक्तिविकास स्वामी: इसका अर्थ हुआ कि लड़कियों की जल्दी शादी कर दी जाती थी। क्या लड़कों की भी जल्दी शादी कर दी जाती थी?

नर्मदा स्वामी: आमतौर पर अट्ठारह वर्ष की आयु में।

भक्तिविकास स्वामी: बहुत ही जल्दी। वे उसी समय अपनी पत्नी के साथ रहते थे?

नर्मदा स्वामी: नहीं। जब लड़की की शादी किशोरावस्था के बाद की जाती थी, उसे कुछ महीनों बाद अपने पति के घर भेज दिया जाता था।

भक्तिविकास स्वामी: मतलब लड़कियों को सिखाकर बहुत ही छोटी आयु में भेज दिया जाता था।

नर्मदा स्वामी: बहुत ही छोटी।

भक्तिविकास स्वामी: और उनके बहुत से बच्चे होते थे।

नर्मदा स्वामी: हाँ

भक्तिविकास स्वामी: आपके परिवार में कितने भाई-बहन हैं ?

नर्मदा स्वामी: मैं अकेला।

भक्तिविकास स्वामी: ओह ! यह असामान्य है।

नर्मदा स्वामी: हाँ, हमारे कुल में एक ही पुत्र होता है। नहीं तो पाँच या छः और इसके अलावा पुत्रियाँ भी।

भक्तिविकास स्वामी: यह प्रचार है कि ज्यादा आबादी कई समस्याओं की जड़ है।

नर्मदा स्वामी: किन्तु आजकल हम देखते हैं कि कई प्रकार की वैवाहिक समस्याएँ हैं और उन दिनों कोई समस्या नहीं होती थी। कोई वैवाहिक समस्या नहीं और न ही तलाक। मुझे नहीं लगता कोई तलाक होता था। यहाँ तक कि बहुत ही बुरे हालातों में, जब दुर्व्यवहार किया जाता था, स्त्रियाँ हर चीज़ सहन करती थीं। यदि पत्नी बहुत ज्यादा कष्ट झेल रही है तब भी वह अपने पिता के घर कभी नहीं जा सकती थी। यह निश्चित था। एक बार उसकी शादी हो गई तो उसे अपना जीवन पति के साथ बिताना पड़ता था।[४९]

भक्तिविकास स्वामी: क्या कभी पति स्त्रियों से दुर्व्यवहार करते थे ?

नर्मदा स्वामी: कई बार। किन्तु यदि स्त्रियों को बहुत अधिक कष्ट भी हों तब भी वे इसके बारे में बात भी नहीं करती थीं। मैंने कईयों को देखा है कि वे बहुत ज्यादा सहन करती थीं। वे एक शब्द भी नहीं बोलती थीं कि उनके साथ क्या हो रहा है। जब माता-पिता पूछने भी आते कि उनकी बेटी खुश है या नहीं तो वे सदैव कहतीं, ''मैं सुखी हूँ, कोई समस्या नहीं है।'' जब वे दुःख में होती तो कभी नहीं कहती थीं कि ऐसा है। यह प्रथा थी।

---

४९ बंगाल में यदि स्त्री को अपने पति के घर में अधिक समस्याओं की सामना करना पड़े तो वह अपने पिता के घर जा सकती है, लेकिन हमेशा के लिए नहीं बल्कि कुछ समय के लिए।

भक्तिविकास स्वामी: अब दहेज प्रथा है।

नर्मदा स्वामी: धीरे-धीरे दहेज प्रथा व्यापार बन गया है। उस समय वे दहेज के पीछे इतना नहीं थे। उस समय सामाजिक स्थिति के अनुसार था, कोई जरूरी नहीं था। उन्हें दहेज मांगते हुए शर्म आती थी। यदि कोई परिवार अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार देना चाहता है, वे इसे स्वीकार कर लेते थे। यही प्रथा थी। किन्तु धीरे-धीरे यह व्यापार बन गया है।

भक्तिविकास स्वामी: हिन्दू प्रथा में एक पुरुष की एक से ज्यादा पत्नियाँ हो सकती हैं। क्या आपने ऐसा किसी को देखा है?

नर्मदा स्वामी: उस समय था। आमतौर पर एक ही पत्नी होती थी, किन्तु यदि संतान नहीं होती तो वे एक और विवाह कर लेते।

भक्तिविकास स्वामी: ओह, उस समय।

नर्मदा स्वामी: इसके अलावा मैं जानता हूँ कि कई जगह किसी अमीर व्यक्ति ने बड़ी और छोटी दो बहनों से विवाह कर लिया क्योंकि वह परिवार धनी नहीं था तथा एक और पुत्री भी थी। इस प्रकार स्थितियों में। किन्तु आमतौर पर केवल एक ही पत्नी।

भक्तिविकास स्वामी: और वे दोनों बहनें आराम से रहती थीं?

नर्मदा स्वामी: हाँ, क्योंकि समाज इस प्रकार था कि स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं थी। वे खुलकर बोल भी नहीं सकती थीं। इस प्रकार हर चीज बहुत ही अच्छी तरह से व्यवस्थित थी, वे शांत थे। उनमें आदान-प्रदान था। कई बार लड़का अपनी बहन के ससुराल में उनकी लड़की से शादी कर लेता। यह इस प्रकार था जैसे कि मेरे पिता जी। मेरे पिता जी इकलौते पुत्र थे, इसलिए उन्होंने आदान-प्रदान किया। मेरे पिता जी की बहन का विवाह मेरी माता के भाई से हुआ।

भक्तिविकास स्वामी: स्त्रियाँ अनुशासन में थीं।

नर्मदा स्वामी: उन्हें रूखा बोलने की आज्ञा नहीं थी। निम्न जाति की स्त्रियाँ ऊँचा बोलती थीं, किन्तु ऊँची जाति की स्त्रियाँ बहुत ही मृदु बोलती थीं। वे किसी पुरुष के सामने बाहर भी नहीं आती थीं।

भक्तिविकास स्वामी: वे किसी अज्ञात पुरुष के साथ भी नहीं बोलती थीं?

नर्मदा स्वामी: नहीं। किसी अज्ञात पुरुष के साथ बोलने का प्रश्न ही नहीं उठता। जब मेरा विवाह हुआ, तब मैंने छः महीने तक अपनी सास का चेहरा नहीं देखा था।

भक्तिविकास स्वामी: वे हमेशा ढकी रहती थीं?

नर्मदा स्वामी: मैं बहुत ही छोटा था। मेरा विवाह बहुत जल्दी हो गया था। वे मेरी माता के समान थीं, किन्तु तब भी यह प्रथा थी। मैंने उनका चेहरा अपने विवाह के छः महीने बाद देखा था। वे इन सब चीजों का पालन करते थे। इसलिए वे शांत थे। वे संतुष्ट थे। जो कुछ भी प्रथा थी, वे इसका पालन करते और स्वीकार करते, बस।

भक्तिविकास स्वामी: गरीब लोगों के बारे में बताएँ। क्या वे भी संतुष्ट थे?

नर्मदा स्वामी: हाँ। गरीब लोग बहुत मेहनत किया करते थे। वे गाँव में अधिकतर खेतों में और अमीरों के घरों में काम किया करते थे। जब मैं अपनी माता के घर गया तो मैं देखता कि वहाँ दो या तीन लोग खुशी से काम कर रहे होते। वे सख्त मेहनत किया करते थे। उन्हें कपड़े इत्यादि दिए जाते और उनकी देखभाल परिवार के सदस्यों की तरह ही की जाती थी। जब फसल आती तो वे इसमें से हिस्सा लेते, इस प्रकार वे खुश थे। कोई शिकायत नहीं थी। हर चीज़ प्रेम और स्नेह पर आधारित थी।

पीढ़ी दर पीढ़ी चलती आ रही परम्पराओं का हर परिवार पालन करता था और इस प्रकार हर परिवार में प्रथाएँ एक समान थीं। समाज लगभग एक जैसी रीतियों और परम्पराओं के अनुसार चलता था। हर किसी को मालूम होता था कि कैसे करना है और हर चीज़ में तालमेल था।

लोग मेहनती भी थे। वे झ्ताकतवर और तंदुरुस्त थे। वे अच्छा खाते, जरूरी नहीं कि वे विलासी भोजन लेते, किन्तु जो कुछ भी वे खाते वह उन्हें पोषण देता और वे इसे आसानी से पचा लेते। उन्हें स्वस्थ रहने के लिए क्लब जाने की जरूरत नहीं थी (हँसते हैं)। इडली बनाने के लिए औरतें स्वयं ही चावल और दाल पीसतीं। क्या आपने बड़ा पत्थर और ओखली देखी है? दूध मथना, घर बुहारना इत्यादि उन्हें बहुत ही स्वस्थ रखते थे।

अब वे हर चीज़ मशीन से करती हैं और अब उनके पास व्यायाम करने की मशीनें भी हैं (जोर से हँसते हैं)। बिना पहिए की साइकिल (और हँसते हैं)। जब उन्हें बेकार, बासी और बिना किसी स्वाद की सब्जियाँ खरीदनी होती हैं तो वे कार में जाती हैं और जब वे वापिस आती हैं तो अपने फ्लैट तक पहुँचने के लिए लिफ्ट का उपयोग करतीं हैं और बिना पहियों की साइकिल चलाती हैं (जोर से कहकहा लगाते हैं)। यह प्रगति है! विकास!

पहले हमारे पास ज्यादा मशीनें नहीं होती थीं; हमारे पास पशु थे। हर परिवार के पास कम से कम एक या दो जोड़ी बैल होते थे और एक या दो गायें या भैंसें। पशु परिवार के सदस्यों की तरह थे। उनको चारा दिया जाता और देखभाल की जाती यदि वे दुर्व्यवहार करते तो डाँटा जाता। वे बैलों और गायों के सींगों को गहरे रंग से रंग देते और उनके गले में घण्टियाँ पहनाते जो उनके खेतों में काम करते समय बजती रहतीं। खेत गानों से भर जाते, एक खेत में एक किसान गा रहा होता तो दूसरे खेत में दूसरा, इस प्रकार यह चलता रहता। घण्टियों की सुमधुर ध्वनि और खुशी से गाता सुनकर ऐसा लगता की मानो पूरा संसार खुशी से भरा है। मैं हर रोज़ कई गायों और बैलों को सुबह लगभग आठ बजे के आसपास जाते देखता।

भक्तिविकास स्वामी: हर किसी की गाय इकट्ठीं?

नर्मदा स्वामी: हर किसी की गाय इकट्ठीं। वे सुबह जातीं और शाम को आतीं और ये लड़के अपना दोपहर का भोजन वहीं चरागाह में लेते।

भक्तिविकास स्वामी: जैसे कृष्ण और अन्य ग्वाल।

नर्मदा स्वामी: हाँ, मैंने यह सब चीजें देखी हैं। प्रत्येक गाय का नाम होता था। लड़के हर गाय का नाम रखते और उन्हें उनके नाम से पुकारते।

भक्तिविकास स्वामी: वे गायों को क्या नाम देते थे?

नर्मदा स्वामी: कई बार फूलों के नाम पर देते थे। मैं अब भूल गया हूँ। कुछ गायों का नाम लक्ष्मी और सरस्वती इत्यादि होता और बैलों का नाम भीम और अर्जुन होता। अब लोग गाय नहीं रखते, तो आप सोच रहे होंगे कि सारी गाय एक सी

होती हैं। किन्तु जब आप उनके साथ रहोगे तो आप जानोगे कि वे एक व्यक्ति की तरह हैं। वे सब अलग हैं। उन सबका अपना व्यक्तित्व है। कुछ सौम्य, कुछ घमण्डी, कुछ चतुर होती हैं। किन्तु यदि आप उन्हें प्रेम से रखें तो वे व्यक्ति की तरह व्यवहार करती हैं और इसकी आशा भी करती हैं और इसकी आवश्यकता महसूस करती हैं क्योंकि वे भी जीव हैं किन्तु अलग प्रकार के शरीर में।

हमारे घर में तीन विशेष गायें थीं। एक सफेद गाय थी जिसे मैलीमोगा (हँसते हैं) बुलाते थे। तेलगु में मैलीमोगा का अर्थ है चमेली फूल। दूसरी गाय थी कञ्चन (हँसते हैं)।

भक्तिविकास स्वामी: सोना।

नर्मदा स्वामी: उसका रंग इस प्रकार था (हँसते हैं)।

भक्तिविकास स्वामी: तो वे सारी गायों को प्रेम करते थे।

नर्मदा स्वामी: हाँ। तब जवान बैल खेतों में लड़ते थे और वे सब देखने के लिए इकट्ठे हो जाते थे। वे गायों को नदी पर ले जाते और वहीं साफ करते और नहलाते। कई बार हम भी गायों के साथ नदी में चले जाते और गायों को नहलाते। और हम भी नहाते, तैरते, हँसते और एक दूसरे पर पानी फैंकते। शाम को बच्चे और गाय वापिस आ जातीं। बछड़े अपनी पूँछ को ऊपर उठाए, उछलते हुए आते (हँसते हैं)। जब मैं छोटा था तो मुझे गाँव के इन कार्यों में मजा आता था। मुझे अपने सहपाठियों के साथ इस प्रकार खेलना अच्छा लगता था। हम सब दोस्त थे। शाम को हम घर आते, नहाते और दोबारा खेलने चले जाते।

भक्तिविकास स्वामी: आप क्या खेलते थे? खेल?

नर्मदा स्वामी: हाँ, मैं कई बार टैनिस खेलता था। शाम को अधिकतर समय हम खेल के मैदान में बिताते, किन्तु बीच बीच में हम नियमित रूप से मन्दिर जाते थे। सुबह भी नदी में नहाने के बाद हम जाते थे। किन्तु दसवें वर्ष में मैं हाई स्कूल चला गया और धार्मिक जीवन से अलग हो गया। अगले चार वर्ष मैं केवल छुट्टियों में घर आता था। उस समय मैं किसी ख़ास मौके पर ही मन्दिर जाता था।

भक्तिविकास स्वामी: आप बता रहे थे कि आपकी माता श्री सम्प्रदाय से थीं।

नर्मदा स्वामी: हाँ, वे श्री वैष्णव हैं। हम ब्राह्मण नहीं हैं, किन्तु शाकाहारी हैं। हम सभी नियमों का, विशेषकर खाना बनाने के, नियमों का पालन करते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: जैसे नहाने के बाद ही खाना बनाना।

नर्मदा स्वामी: हाँ। मैं देखता था कि मेरी दादी गीले कपड़ों में ही खाना बनाती थीं (हँसते हुए)। वे बनातीं और परोसने के समय दूसरे कमरे में आतीं और प्रसाद लेतीं। इस प्रकार वह बहुत ही सख्त थीं।

भक्तिविकास स्वामी: ब्राह्मणों में...स्त्रियों की दीक्षा होती थी।

नर्मदा स्वामी: उनमें अधिकतर दीक्षित थे।

भक्तिविकास स्वामी: उनके लिये दीक्षा अनिवार्य थी। युवा बालकों को भी दीक्षा लेनी होती थी। नहीं तो वे खाना नहीं बना सकते थे या प्रसाद नहीं परोस सकते थे। मैंने सुना है कि स्त्रियाँ परोस सकती थीं। क्या वे पूजा भी कर सकती थीं?

नर्मदा स्वामी: मेरे नाना जी कई विग्रहों की पूजा करते थे। मेरे पिता जी भी। वे 'सभी देवताओं' की पूजा करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: गणेश, शिव...

नर्मदा स्वामी: हाँ, विष्णु, गणेश, शिव, भगवान् राम।

भक्तिविकास स्वामी: वे स्वयं पूजा करते थे?

नर्मदा स्वामी: हाँ और वे हर सुबह और शाम को प्राणायाम इत्यादि का अभ्यास करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु आपकी माता जी विशेषकर विष्णु की पूजा करती थीं।

नर्मदा स्वामी: हाँ। मेरी माता जी की ओर से उनके रिश्तेदार ब्राह्मण थे। पूरे गाँव में पूजा परिवार के तीनों भाई ही करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: सारे पुरोहित के कार्य, परामर्श देना।

नर्मदा स्वामी: हाँ, परामर्श देना, पूजा का प्रबन्ध करना, हर घर में नारायण व्रत करना और पितरों की पूजा इत्यादि।[५०] उस समय वे हर सुबह दस बजे से तीन बजे तक एक स्कूल भी चलाते थे। वहाँ एक सार्वजनिक हाल था, जिसमें वे आकर लोगों को उपदेश देते थे।

जब हम बच्चे थे, तो हम गर्मियों की छुट्टियों में अपने ननिहाल जाते थे। हर किसी को दोपहर में प्रसाद लेने से पहले नहाना होता था, फिर हम तिलक लगाते (हँसते हैं)। हम यह सब करते थे। मेरे एक मामा नहाने के बाद कुछ मंत्रों का उच्चारण करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: वे क्या जप करते थे?

नर्मदा स्वामी: वे राम मंत्र का उच्चारण करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: प्रसाद लेने से पहले।

नर्मदा स्वामी: हाँ

भक्तिविकास स्वामी: यह बहुत अच्छा है। लोगों का इस प्रकार जप करने में झुकाव क्यों था? क्या वे मोक्ष चाहते थे? या वे भक्तिके लिए करते थे? या किसलिए?

नर्मदा स्वामी: शास्त्र कहते हैं कि विष्णु का नाम सर्वमंगलकारी है और हमेशा जप करना चाहिए। यह सबको मालूम था। यहाँ तक कि स्मार्त भी इसका पालन करते थे, वैष्णवों का तो कहना ही क्या। 'सर्वमंगलकारी' का अर्थ है हर चीज़ के लिए, मुसीबतों से सुरक्षा, बुरी आत्माओं से रक्षा, हर प्रकार के दुर्भाग्य से रक्षा, इस और अगले जन्म में सौभाग्य के लिए मंगलकारी। मुझे लगता है कि अधिकतर लोगों का यह मत था। और विष्णु का नाम आपको पापों से मुक्त करता है जैसे अजामिल, जिसकी कथा हर कोई जानता है।

संस्कृति में हरिनाम के जप की गहरी पैठ थी। मेरे मामा जप से मुझे जगाए रखते थे। गर्मियों में हम बाहर सोया करते थे, आमतौर पर छत पर। दिन की गर्मी

५० नारायण व्रत – वैष्णव तरीके से पूजा।

के बाद रात को ठण्डी-ठण्डी हवा बहुत अच्छी लगती थी। कई बार यदि हवा न भी चलती तो भी वहाँ इतनी गर्मी नहीं होती थी कि सोया न जा सके, तो इस प्रकार हम आधी-नींद में एक हाथ से पंखा करते रहते और सुबह तक इस तरह इधर-उधर की बातें करते रहते। जब हम मेरी माता जी के घर जाते तो मैं सो नहीं पाता था क्योंकि वहाँ एक बूढ़े मामा थे जो लेटे लेटे, 'हरि! राम! गोविन्द!' इत्यादि भगवान् के कई नामों का दिन रात जप करते रहते। मुझे नींद आने लगती तो वे जोर से बोल उठते, 'नारायण! हरि!'

इस प्रकार लोगों में श्रद्धा थी और जप करने की आदत बना ली थी। वे इसी के साथ बड़े हुए थे। यदि आपके पिता, दादा, चाचा, चाची और माता सदैव कहते हों, 'हरि! गोविन्द! नारायण!' तो आप भी इसी प्रकार कहने लगोगे, 'हरि! गोविन्द! नारायण!' जब हम बच्चे शोर मचाते तो हमारे गाँव के एक बूढ़े सज्जन हमेशा कहते, ''एक भी क्षण बिना हरि का स्मरण बीतना, महान हानि है, सबसे बड़ी त्रासदी है।

फिर भी, मैं निश्चयपूर्वक नहीं कह सकता कि वे हरिनाम क्यों करते थे। यह हर व्यक्ति के लिए अलग हो सकता है। इतनी प्रथाएँ होने के बावजूद लोग यह नहीं सोचते थे -क्यों। वे सिर्फ इसलिए करते थे क्योंकि हर कोई इस प्रकार से कर रहा है और वे सोचते थे कि इसे करना उचित है। और उन्हें यह करना अच्छा भी लगता था।

हर कोई भगवान् को मानता था क्योंकि दैनिक जीवन स्वाभाविक, सादा और सुखदायी था, इसलिए हर चीज़ में लोग भगवान् का हाथ मानते थे। भगवान् का स्मरण किसी से दूर नहीं था, इसलिए साधारण क्रियाओं में भगवद् स्मरण स्वाभाविक था। यह केवल औपचारिक अवसरों या विशेष लोगों के लिए नहीं था।

यहाँ तक कि आम बातचीत में लोग अक्सर राम या कृष्ण का नाम लेते, क्योंकि उनके मन में महाभारत और रामायण बसी थी। वे पण्डितों या घर के बड़ों से सुना करते थे। पिता पुत्र को राम-लीला का उदाहरण देकर डाँटता, ''जरा देखो, सीता ने इस प्रकार कहा,'' या ''भीष्म ने इस प्रकार किया।'' या बातचीत में किसी बात को कहने के लिए कोई कृष्ण-लीला से उद्धरण देता और

दूसरा अन्य उद्धरण देता। यदि कोई असाधारण या अचानक घटना घटती तो वे भगवान् की प्रशंसा करते कि वे कितने अद्भुत हैं। यहाँ तक कि यदि कुछ बुरा होता तो भी वे कहते यह भगवान् की इच्छा है। जब लोग मिलते या बिछुड़ते तो वे कहते, ''जय श्री राम,'' या इसी प्रकार कुछ। वे भगवान् का नाम लिए बिना नहीं रह सकते थे।

हमारा जीवन उसी प्रकार था, जिस प्रकार हम श्रीमद्भागवतम् में कृष्ण के गाँव के जीवन के बारे में पढ़ते हैं। जब मैं पढ़ रहा था, किस प्रकार कृष्ण और बलराम ने अक्रूर जी का स्वागत किया और इससे मुझे स्मरण हो आया कि किस प्रकार रिश्तेदार हमारे घर आया करते थे या हम उनके यहाँ किस प्रकार जाते। बहुत समय बाद मिलने पर हम सारी रात एक-दूसरे का तथा अन्य रिश्तेदारों का कुशलक्षेम पूछते। हम केवल रिश्तेदारों के बारे में ही नहीं पूछते थे। विशेषकर वृद्ध लोग चर्चा के बीच में स्वाभाविक ही कृष्ण लीला पर चर्चा करने लगते या किसी शास्त्रार्थ इत्यादि पर घण्टों चर्चा करते। हम बालक हैरान होते कि वे कब खत्म करेंगे क्योंकि हम में से कोई भी नहीं खा सकता था जब तक उन्हें नहीं परोसा जाता था।

लगभग हर कोई निजी या पारम्परिक प्रतिज्ञाओं का पालन करता था, शायद शिव जी या किसी अन्य देवता को प्रसन्न करने के लिए या इन्द्रिय-भोग पर नियंत्रण करके अपने सौभाग्य को बढ़ाना चाहते थे। विशेषकर स्त्रियाँ अपने पति और बच्चों की सुरक्षा और लाभ के लिए व्रत करती थीं। धार्मिक लोग एकादशी के दिन उपवास करते थे। कुछ लोग तो निर्जल उपवास करते थे। इसी प्रकार चातुर्मास्य में हर कोई कुछ न कुछ तपस्या जरुर करता। जैसे दिन में एक बार खाना, सूर्यास्त के बाद न खाना या मीठा और घी नहीं खाना इत्यादि।[५१]

एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं था, विशेषकर उच्च-जातियों में जो सुबह पूजा न करता हो और संस्कृत की प्रार्थनाओं का उच्चारण न करता हो। सुबह-सुबह गाँव में घूमने पर आप घण्टियों की आवाज सुनते — टिंग-टिंग-टिंग — और

---

५१ मांस, मछली, अंडे, लहसुन, प्याज और नशा करने के विरुद्ध निषेध व्रत में नहीं माने जाते क्योंकि इनका नियमित रूप से पालन किया जाता था।

अगरबत्तियों के बादल खिड़कियों से बाहर आते हुए दिखाई देते। संस्कृत मंत्रों की ध्वनि हर घर से आ रही होती।

वे श्री-सूक्त और पुरुष-सूक्त का पाठ करते और कुछ लोग अलग-अलग देवी-देवताओं का पाठ करते।[५२] बड़े शहरों में कुछ आधुनिक पढ़े-लिखे लोगों ने भले ही इसे त्याग दिया हो किन्तु अधिकतर लोग सुबह एक या दो घण्टे यह सब करने में बिताते। वे सूर्यास्त से पहले उठ जाते और नहाते (चाहे ठण्डा पानी हो), स्वच्छ धोती डालते और फिर जप करते या ध्यान करते। ध्यान इतना प्रचलित नहीं था, किन्तु जप प्रचलित था। कम से कम हर कोई हर रोज़ गीता के एक अध्याय का उच्चारण जरुर करता था। पर अधिकतर वे इससे भी ज्यादा करना पसन्द करते।

दक्षिण भारत में विष्णु-सहस्त्र नाम सबसे अधिक प्रचलित है। केवल —ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, प्रजापतिः (विष्णु-सहस्त्र नाम की कुछ पंक्तियाँ गाते हैं) — इन नामों का उच्चारण करने से आप स्वतः विष्णु के गुणों का स्मरण करते हैं। अनन्त कालगुणविशिष्ट, उनमें अनन्त मंगलमयी गुण हैं। इसलिए उनके गुणों का ध्यान करने और पवित्र नामों का उच्चारण करने से स्वभावतः आध्यात्मिक भावनाएँ या कृष्णभावनामृत जागरुक हो जाती है। लोगों को इससे असली आध्यात्मिक आनन्द मिलता है।

भक्तिविकास स्वामीः क्यों?

नर्मदा स्वामीः क्योंकि उनका विश्वास था कि इससे शाँति और समृद्धि मिलती है, पापों से छुटकारा मिलता है और विपत्तियाँ चली जाती हैं। इससे अगला जीवन भी सुरक्षित हो जाता है। मोक्ष और भगवद्कृपा परम उद्देश्य होता था। इसलिए ये केवल स्वार्थ से प्रेरित नहीं होता था। इसमें भक्ति भी थी। इसे नीरस या कर्मकाण्ड नहीं माना जाता था जैसे कुछ लोगों ने हमें बाद में बताया। उनका विश्वास बलपूर्वक या डर से नहीं था। फिर भी, भगवान् में विश्वास न होना सामाजिक रूप से निन्दनीय होता। लोगों को भगवान् के साथ समय बिताने की

५२ श्री सूक्त और पुरुष सूक्त - लक्ष्मी और नारायण की महिमा का क्रमशः गुणगान करने के लिए संस्कृत की कुछ प्रार्थनाएँ।

जरूरत लगती और वे हर चीज़ भुलाकर भगवान् का ध्यान करते । वे ईश-भावित थे और वे इसी तरह चाहते भी थे। अधिकतर शुद्ध भक्त नहीं थे — वे समृद्धि और परिवार के सुख के लिए प्रार्थना करते — किन्तु यह सब वे ईश्वर के बिना नहीं चाहते थे। यदि उन्हें धन मिलता तो वे इसका काफी हिस्सा भगवान् के लिए खर्च करते। उनके परिवार का सुख भी भगवद्-उन्मुख था। लोग चाहते थे कि उनके बच्चे अच्छे पढ़े लिखे और भौतिक दृष्टि से सफल हों, किन्तु साथ ही वे चाहते थे कि वे अच्छे आचरण वाले तथा भगवान् में आस्थावान बनें।

लोग स्वभावतः आत्मसम्मान की भावना के साथ बड़े होते। उन्हें अपने आचरण, सिद्धान्तों पर गर्व होता जैसे यदि वे झूठ बोलकर किसी से फायदा ले सकते थे तो भी वे कभी झूठ नहीं बोलते थे। आज लोगों को लोहे की कार पर अभिमान है। किन्तु यह अलग प्रकार का अभिमान है — आसुरी और मूर्खतापूर्ण।

ब्राह्मणों का केवल औपचारिक आदर नहीं होता था, क्योंकि वे वास्तव में विद्वान, सुसंस्कृत और वैरागी थे। यहाँ तक कि अच्छे पढ़े लिखे वैश्य या क्षत्रिय युवा, ब्राह्मण बालक के प्रति भी आदर रखते। उन दिनों गाँव में एक विशेष ब्राह्मण हुआ करते थे, जो गाँव के सभी बच्चों को पेड़ के नीचे बुलाकर पढ़ाते। वे किसी से कुछ भी नहीं माँगते थे, किन्तु गाँव उन्हें बिना किसी दिखावे, समझौते या युनियन के उनकी जरूरत का सारा सामान देता था।

मुझे याद है, एक वृद्ध ब्राह्मण हमारे घर आया करते थे। वे चाँदी के गिलास, जिसे हमने विशेषकर ब्राह्मणों के लिए रखा था, से हमारे घर में दूध या छाछ पीते थे। वे बहुत ही प्रेम से हमारे परिवार के सदस्यों के बारे में पूछते। जब वे जाते, तो हम उन्हें थोड़े कच्चे चावल और दाल दे देते। इस प्रकार हर कोई ब्राह्मण को थोड़ा यह और थोड़ा वह देते। इस प्रकार बिना किसी पर बोझ के वे मूल जरुरतों पर आराम से रहते। केवल ब्राह्मण ही नहीं हर कोई मूल जरुरतों के साथ रहता या थोड़ा बहुत उनके पास और होता।

हमें ब्राह्मणों के प्रति विनम्र और आदरपूर्वक व्यवहार करना सिखाया जाता और वे हमें आशीर्वाद देते। लोगों को उनके आशीर्वाद पर विश्वास था। शायद शुद्ध और त्यागमय जीवन बिताने के कारण सचमुच उनमें शक्ति थी। हमने

ब्राह्मण के श्राप के बारे में भी सुना है। मैं स्वयं तो किसी श्राप के बारे में नहीं जानता, क्योंकि लोग ध्यान रखते थे कि ब्राह्मण परेशान न हों और ब्राह्मण भी सहनशील थे और छोटे-मोटे अपराधों को अनदेखा कर देते थे। किन्तु हमने सुना है कि सबसे बुरी चीज जो किसी के साथ हो सकती है वह है ब्राह्मण का श्राप।

चाहे उनकी बहुत बदनामी हुई है और उनमें से कईयों ने अपने पद का दुरुपयोग भी किया है और उनमें मानवीय दोष हैं फिर भी ब्राह्मण विशेष लोग थे। ऐसा नहीं था कि हमें केवल उन्हें आदर देने की शिक्षा दी गई थी, हमें स्वयं ही लगता था कि उन्हें आदर देना चाहिए। वे भू-देवता कहलाते थे।

साधुओं का बहुत सम्मान होता था। केसरी कपड़े बहुत ही गम्भीरता से लिए जाते थे। बाद में कई ठगों ने साधु बनकर लोगों से धोखधड़ी की और इसका फायदा उठाया। स्वभावतः लोगों का विश्वास उठ गया और वे इस सबसे दुःखी हो गए। धर्म के पतन का भी यह एक कारण था। किन्तु आप देखेंगे आज भी साधुओं को आदर देने की भावना है।

भक्तिविकास स्वामीः इस प्रकार यह पूर्ण ईश भावनाभावित वातावरण था।

नर्मदा स्वामीः सदैव पूरी तरह से आध्यात्म की चिन्ता करते थे।

भक्तिविकास स्वामीः क्या उस समय मायावाद भी प्रबल था?

नर्मदा स्वामीः इतना नहीं। आमतौर पर मायावाद केवल पढ़े-लिखे ब्राह्मणों में था। गाँव के आम लोग बिना किसी जाति भेद के भगवद्-भावित और धार्मिक थे।

भक्तिविकास स्वामीः पढ़े-लिखे ब्राह्मणों ने आधुनिक शिक्षा ली थी?

नर्मदा स्वामीः हाँ। वे शहर जाकर आधुनिक शिक्षा ग्रहण करते थे और फिर वे सरकारी दफ्तरों में नौकरी करते थे। किसी न किसी तरह से वे मायावाद का पालन करते थे। उच्च शिक्षा के प्रभाव से वे मायावाद को ग्रहण करते थे। कुछ यह कहकर गाँव छोड़ देते कि यहाँ की जीवनशैली ठीक नहीं है। वे आम लोगों, जो पारम्परिक रूप से भक्त होते, को निरुत्साहित करते।

भक्तिविकास स्वामीः वे भक्त थे।

नर्मदा स्वामी: हाँ, वे मायावाद पर विश्वास नहीं करते थे। यदि कोई इस प्रकार बोलता, तो अन्य उसे नीच समझते और उससे घुलते-मिलते नहीं थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या कोई अधार्मिक या नास्तिक नहीं था?

नर्मदा स्वामी: बहुत कम। मैं ऐसे किसी से नहीं मिला था।

भक्तिविकास स्वामी: हाँ, जब अंग्रेजों ने लोगों को प्रभावित कर उनके अनुष्ठानों को बेकार बताकर हमला किया तो पण्डितों के पास कुछ कहने को नहीं था और पूरी संस्कृति ढह गई।

नर्मदा स्वामी: यह बहुत ही सहज विश्लेषण है, किन्तु इसमें सच्चाई है। आज यदि आप लोगों को कुछ करने के लिए कहें तो वे पूछेंगे क्यों। एक दृष्टि में यह ठीक है, किन्तु पूरी तरह से देखें तो आधुनिक शिक्षा ने हमारी संस्कृति को बहुत ज्यादा नुक्सान पहुँचाया है। बौद्धिक गुण्डागिरी। वे सबसे गन्दे लुटेरे हैं। आम लुटेरे आप का धन या जीवन ले लेंगे, किन्तु वे आपकी आत्मा को नहीं छू सकते।

भक्तिविकास स्वामी: यह बहुत बड़ा विषय है, आप जो बता रहे हैं कि दो पीढ़ियों में हम कहाँ थे और आज कहाँ हैं।

नर्मदा स्वामी: बहुत ही बड़ा विषय। आपको इस पर एक पुस्तक लिखनी चाहिए (हँसते हैं।)

भक्तिविकास स्वामी: अब भारत में सब कुछ बदल गया है।

नर्मदा स्वामी: हाँ। गाँव से अधिकतर लोग शहरों में आ गए हैं। क्योंकि नई पीढ़ी शहरों में उच्च शिक्षा चाहती है, पूरा परिवार वहाँ चला जाता है। लोग शहर में नौकरी ढूँढने भी चले जाते हैं।

पहले शहरों का जीवन भी सुसंस्कृत और सभ्य था। ज्यादा कस्बे भी नहीं थे और वे अधिक बड़े भी नहीं थे — न ही बड़े बाजार थे। आज के औद्योगिक नरक की तरह तो बिल्कुल नहीं। अधिकतर उनका कृषि समुदाय के लिए प्रबन्धकीय, व्यापारिक और शैक्षणिक कार्य होता। शहर, गाँवों के जीवन को बनाए रखते और दोनों में एक समान सभ्य जीवनशैली प्रचलित थी।

जब तक हमने पूरी तरह से एक अच्छी जीवनशैली को नष्ट नहीं कर दिया तब तक हमें अहसास ही नहीं हुआ कि हम किसका त्याग कर रहे हैं। अभी भी हमें अहसास नहीं है। हमारे मन में इसकी कोई कीमत नहीं है किन्तु वह समय कम से कम आज की तुलना में अद्भुत था। कितनी अच्छी चीज़ें हमने गँवा दीं। और किसके लिए? इस आधुनिक जीवनशैली का क्या लाभ है? भागते रहो, फैक्टरियाँ बनाओ, जमीन खोदो, समुद्र तल के नीचे पाइप लाइन बिछाओ — किसके लिए? आपको कई मुश्किलों और परेशानियों के साथ कड़ी मेहनत करनी है। इन सबके साथ आपकी मूल जरुरतें एक सी हैं : कुछ खाने के लिए, सोने के लिए जगह। इसके लिए वे कड़ी मेहनत कर रहे हैं। ''मूर्ख और बदमाश,'' श्रील प्रभुपाद कहा करते थे। ''केवल मूर्ख और बदमाश।''

भक्ति विकास स्वामी: यदि यह इतना ही अच्छा था, तो लोगों ने त्याग क्यों दिया? इतनी महान संस्कृति कैसे नष्ट हो गई?

नर्मदा स्वामी: यह बहुत बड़ा प्रश्न है और इसका सरल उत्तर देना कठिन है। आप ने स्वयं इसका अपनी पुस्तक 'भारतीय नवयुवकों को संदेश' में विस्तारपूर्वक विश्लेषण किया है। आप देख सकते हैं कि यह एक कपटपूर्ण क्रमिक प्रक्रिया थी। आधुनिकता की खोज के साथ भारत ने एकदम अपनी संस्कृति को नहीं खोया। इस प्रकार से हर चीज़ को खो देना इसके लिए संभव नहीं था। इसके लिए एक समय था, जब पुराना बहुत ही सफाई और प्रसन्नता से नए में मिल गया।

कुछ अंग्रेजों ने अपने राज के स्मरण में लिखा कि किस प्रकार गाँव के स्टेशन-मास्टर और पोस्टमास्टर गुरु की तरह थे। ऐसे पद के लिए बुद्धिमान, शिक्षित और जिम्मेदार लोग चाहिए थे। उन दिनों में विशेषकर जन्म-जात ब्राह्मण इसके लिए योग्य उम्मीदवार थे। अनपढ़ गाँव वालों के पत्र पढ़ते और उत्तर पूछकर लिखते समय पोस्टमास्टर गाँव वालों को घरेलू विषयों पर सलाह देते और कई बार झगड़ों में समझौता भी करवाते। स्टेशन-मास्टर अक्सर अपने दफ्तर में शालीग्राम शिला रखते थे और दिन में उनकी नियमित पूजा करते थे। धीरे-धीरे आदर्श क्षीण होने लगे। जैसा कि कहावत है, ''चरित्र गया तो सब कुछ गया।'' यह सादा जीवन था, किन्तु सख्त भी था।

भक्तिविकास स्वामी: कई लोग आज सोचेंगे कि इस प्रकार जीवन, जैसा आप बता रहे हैं, बहुत ही नीरस होगा। तेज रफ्तार कारों, बार (मदिरालय), पार्टियों, टी.वी और टैलीफोन के बिना जीवन में कोई मजा ही नहीं होगा।

नर्मदा स्वामी: यह सच है कि सदैव कुछ काम करने की या कहीं जाने की भाग-दौड़ नहीं होती थी। जीवन बहुत ही धीमा और आसान था, इसलिए मुझे लगता है कि आपके तेजतर्रार लोगों को यह धीमा लगेगा। किन्तु हम बोर नहीं थे। हमें सीधी-साधी चीज़ों में आनन्द आता था। रिश्तेदारों से मिलना, नए जन्मे बछड़े को देखना, अच्छा खाना, यह सब हमारे रोजमर्रा के आनन्द थे। और मैंने आपको बताया था उन नाटकों और उत्सवों के बारे में — शायद विकसित नहीं थे किन्तु नीरस भी नहीं थे। हाँ, सादा किन्तु एक सम्पूर्ण आनन्दमय जीवन। आप किस प्रकार के आनन्द के बारे में बात कर रहे हैं? जिसमें केवल उत्तेजना है किन्तु सार नहीं।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु जो पाबन्दियाँ आपने बताईं हैं, लोग आज उन्हें नहीं मानेंगे। विशेषकर बच्चों पर पाबन्दी थी और वे अपनी मर्जी से इधर-उधर नहीं जा सकते थे।

नर्मदा स्वामी: यह अच्छा है। ऐसा ही होना चाहिए। बच्चों को निर्देशन और शिक्षा चाहिए। उन्हें ऐसे कार्यों से रोका जाना चाहिए, जिनसे उनका चरित्र खराब और पतन होता हो। केवल बच्चे ही नहीं हर कोई।

भक्तिविकास स्वामी: ऐसा लगता है कि महिलाओं के जीवन में कठोर श्रम था, जैसे बंधुआ मजदूर।

नर्मदा स्वामी: आपको विश्वास नहीं होगा, किन्तु मुझे मालूम है। महिलाएँ कठोर मेहनत करती थीं और इससे वे कष्ट से बची रहती थीं। उनको पति की सेवा और बच्चों की देखभाल में आनन्द मिलता था। उन्हें खाना बनाने और हर किसी को खिलाकर, प्रसन्न देखने में खुशी मिलती थी। एक प्रकार से उनका नि:स्वार्थ जीवन था। नि:स्वार्थता से जो खुशी मिलती है वह स्वार्थता से नहीं मिलती। और उन्हें विश्वास होता था कि उनकी देखभाल तथा रक्षा की जाएगी।

वे उत्सवों और सामाजिक अवसरों पर बढ़िया कपड़े और गहने पहनकर तथा अपनी सहेलियों तथा रिश्तेदारों से मिलकर आनन्द लेतीं।

भक्तिविकास स्वामी: जो आप कह रहे हैं कि कठोर मेहनत से वे कष्टों से बची रहतीं, इस बात का आज स्वागत नहीं किया जाएगा।

नर्मदा स्वामी: किन्तु ये ''स्वतंत्र महिलाएँ'' भी कठोर मेहनत कर रहीं हैं। वे नौकरी पर जाती हैं और फिर भी इन्हें खाना बनाना और अन्य काम करने पड़ते हैं। उनके पास अपने बच्चों के लिए समय नहीं है। और माता के स्नेह से वंचित बच्चे जिद्दी बन जाते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: यह तो बहुत सरल लग रहा है।

नर्मदा स्वामी: किन्तु यह सत्य है।

भक्तिविकास स्वामी: क्या लोगों में बुरी आदतें थीं? माँस खाने के बारे में बताएँ।

नर्मदा स्वामी: कुछ लोग माँस खाते थे। जो ब्राह्मण नहीं थे वे दस दिनों में या महीने में एक बार माँस खाते थे। वे इसे देवी को भोग लगाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: काली देवी को?

नर्मदा स्वामी: हाँ। फिर वे बाँटते थे। कोई भी अकेला नहीं खाता था। एक जगह पर वे बकरी या भेड़ इत्यादि चढ़ाते और फिर बाँटते।

भक्तिविकास स्वामी: क्षत्रिय?

नर्मदा स्वामी: हाँ, क्षत्रिय और निम्न जाति के लोग।

भक्तिविकास स्वामी: निम्न जाति के लोग।

नर्मदा स्वामी: वे सारे ब्राह्मण नहीं होते थे। किन्तु श्री वैष्णव न तो माँस खाते थे और न ही अण्डे। वे कहीं और भी नहीं खाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: हाँ, हाँ।

नर्मदा स्वामी: जो ब्राह्मण नहीं थे और माँस खाते थे, वे भी बहुत कम थे। केवल महीने में एक या दो बार ही खाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: अत: माँस खाने वाले लोग बहुत ही कम थे।

नर्मदा स्वामी: हाँ, बहुत ही कम।

भक्तिविकास स्वामी: शूद्रों तथा उनसे भी नीच जातियों के बारे में बताएँ।

नर्मदा स्वामी: शूद्रों से नीच और मुसलमान गाँव से बाहर रहते थे। वे मुख्य समाज से अलग थे।

भक्तिविकास स्वामी: माँस खाने वालों की तरह?

नर्मदा स्वामी: वे दस दिनों में एक बार माँस खाते थे और भोग लगाते थे। इसके अलावा जो भोग लगवाते थे, वे भी विशेष थे। हर कोई भोग नहीं लगवा सकता था, केवल कुछ विशेष लोग ही।

भक्तिविकास स्वामी: ब्राह्मण भी भोग लगवाते थे?

नर्मदा स्वामी: कुछ प्रकार के अधिकारी ब्राह्मणों का कार्य करते थे, किन्तु वे ब्राह्मण नहीं थे। वे भोग लगवाते और उस इलाके में बाँट देते थे। बहुत ही सख्त नियम।

भक्तिविकास स्वामी: सिगरेट पीने के बारे में बताएँ।

नर्मदा स्वामी: उन दिनों बहुत ही कम लोग सिगरेट पीते थे।

भक्तिविकास स्वामी: तम्बाकू?

नर्मदा स्वामी: हाँ, तम्बाकू, किन्तु केवल वृद्ध लोग ही पीते थे। मैंने कभी भी नवयुवकों को सिगरेट पीते नहीं देखा। यह आदत बिल्कुल नहीं थी। किसी भी नौजवान लड़के को सिगरेट पीने के लिए कहीं और बहुत ही एकांत में जाना पड़ता था। वह खुले में नहीं पी सकता था।

भक्तिविकास स्वामी: तीस से पहले नहीं?

नर्मदा स्वामी: तीस से पहले नहीं। केवल पचास से ऊपर के लोग। कुछ ही लोग सिगरेट पीते थे।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु श्री वैष्णव सिगरेट नहीं पीते थे।

नर्मदा स्वामी: कभी नहीं।

भक्तिविकास स्वामी: उस समय वे कॉफी भी नहीं पीते थे।

नर्मदा स्वामी: वे बाहर भी कहीं नहीं खाते थे। वे ईश-भावनाभावित और भगवान् में विश्वास रखने वाले थे। बाहर खाने का कोई प्रश्न ही नहीं था और आमतौर पर घरों में चाय या कॉफी इत्यादि नहीं बनती थीं। मैंने किसी को चाय या कॉफी बनाते नहीं देखा। किन्तु जो बहुत ज्यादा नियम-निष्ठ नहीं थे वे चाय या कॉफी बाहर पीते थे। किसी को भी इसकी लत नहीं थी। अब हर घर में कॉफी बनती है।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आप मन्दिर के इतना पास रहते थे कि रोज मन्दिर जा सके?

नर्मदा स्वामी: नैल्लौर में, जब मैं बालक था, हम मन्दिर के बहुत ही निकट थे। हम मन्दिर में ही खेला करते थे। (हँसते हुए)

भक्तिविकास स्वामी: आप क्या खेलते थे?

नर्मदा स्वामी: (हँसते हुए) हम रामायण और महाभारत की कहानियाँ खेलते थे, क्योंकि हम ये सब कहानियाँ सुना करते थे। कोई भीम की, कोई अर्जुन की और कोई रावण की भूमिका निभाता।

भक्तिविकास स्वामी: आप ये सब कथाएँ कैसे सुनते थे?

नर्मदा स्वामी: उन्हें हर शाम पढ़ा जाता था, और उत्सवों पर घूमने वाले दलों द्वारा किए नाट्य भी हम देखा करते थे। पठन केवल औपचारिकता मात्र नहीं थी। रामायण में ही वर्णन है कि लव और कुश रामायण को इतनी सुन्दरता और अनुभूति से गाते थे कि श्रोता अवर्णनीय आनन्द से मुग्ध हो जाते, जो उनके मनों और उनके शरीर के हर अंग में छा जाता और वे हर चीज़ भूल जाते।

अद्भुत, नहीं? यदि वक्ता सही है तो आज भी यह वर्णन बिल्कुल सही है। वक्ता को सचमुच राम की भावनाओं की अनुभूति होनी चाहिए। उन दिनों सभी वक्ता इसी प्रकार करते थे। हम वापिस जाने की सोचते भी नहीं थे। एक दिन में रामायण के बीस अध्यायों का पाठ करने की प्रथा थी। मुझे लगता है कि यह बनाया गया था क्योंकि एक बार यदि पठन करना शुरु कर देते थे तो आपका इसे रोकने का मन नहीं करता था। लोग हर चीज भूल जाते थे और दिन-रात सुनते रहते। हम नहीं चाहते कि यह रुके, किन्तु जब वक्ता विराम भी देता था तो भी हम राम, सीता और हनुमान के बारे में सोचते रहते। हम राम लीला का स्मरण करते हुए सोते और राम लीला का ही स्मरण करते हुए जागते।

हर कोई भूल जाता कि वह गाँव में है। हम अपने गाँव में नहीं थे, हम हनुमान के साथ लंका में थे! जब हम लड़ाई के बारे में सुनते हमें लगता कि हम छलांगें लगा रहे हैं और वानरों के साथ हैं। हनुमान जब कुछ करते तो हम सब हर्षित होते। तेलगु लोग हनुमान को बहुत पसंद करते हैं। वे इन्हें अञ्जनेयालु, ''अञ्जनी पुत्र'' बुलाते हैं। अञ्जना उनकी माता का नाम है।

भक्तिविकास स्वामी: अन्य महाकाव्यों के बारे में बताएँ? महाभारत?

नर्मदा स्वामी: हम वह भी सुनते थे। नि:सन्देह हमें वह भी पसंद थे। किन्तु रामायण को समझना आसान था। बहुत सी कथाओं वाली महाभारत या भागवतम् के विपरीत यह एक और सरल कथा है। और इसमें यह बताना भी आसान है कि कौन अच्छा है और कौन बुरा। महाभारत बहुत ही जटिल है (हँसते हैं)। जैसे कर्ण। कर्ण बुरा माना जाता है, किन्तु उसके साथ आपकी सहानुभूति भी हो जाती है। उसमें कई अच्छे गुण भी हैं। फिर घटोत्कच, जो वास्तव में राक्षस और मुसीबतें खड़ी करने वाला था, किन्तु वह उचित पक्ष से लड़ा।

वे कहते हैं कि महाभारत में आपको बहुत ध्यान रखना होता है। वे इसे केवल मन्दिर में बताते हैं घर पर नहीं। यदि आप इसे घर पर बताएँगे तो लड़ाई अवश्य होगी।

भक्तिविकास स्वामी: क्यों?

नर्मदा स्वामी: यह वे कहते हैं। केवल अब नहीं पहले से ही। कोई महाभारत की चर्चा घर पर नहीं करता। यह सब एक घर में झगड़े पर आधारित है, मुझे लगता है इसलिए ऐसा है। किन्तु हो सकता है यह कोई नास्तिक प्रचार हो। वास्तव में इन सब शास्त्रों का अध्ययन करके आपकी सारी समस्याएँ हमेशा के लिए हल हो जाती हैं।

रामायण और महाभारत इतनी प्रचलित थीं कि हर कोई सुनता था। विशेषकर कृष्ण लीला को देखकर हर कोई इनसे परिचित था। सारी रात नाट्य चलता रहता, क्योंकि लोगों के पास समय था। उन्हें सुबह दफ्तर के लिए भागना नहीं होता था। इसके अतिरिक्त अभिनेता बहुत ही निपुण होते थे और उनकी वेशभूषा इत्यादि भी बहुत अच्छी होती थी। दुर्याधन की भूमिका करने वाला अभिनेता दुर्योधन का अभिनय नहीं कर रहा होता था अपितु वह दुर्योधन था।

(इस विषय पर, नर्मदा महाराज महाभारत की कथाओं में निमग्न हो जाते हैं और उत्साहित होकर उन कथाओं को याद करने लगते हैं।)

कृष्ण-लीला और महाभारत इतने प्रचलित थे कि चाहे लोगों ने कई बार इन्हें देखा था फिर भी वे इसे दोबारा देखना चाहते थे। जब अभिनेता अभिनय करते तो गाँव वाले उन्हें कुछ दान और खाना देते। बड़े गाँव में वे कुछ दिन या एक सप्ताह भी ठहरते।

कुछ लोग हरिदास थे। वे संन्यासी होते थे, केवल औपचारिक रूप से नहीं। अधिकतर वे श्री सम्प्रदाय से होते थे और पूरी तरह से भगवान् को समर्पित होते थे। इसलिए उन्हें हरिदास कहा जाता था। वे तिलक इत्यादि लगाते। पूरी जनवरी हर रोज सुबह वे भिक्षा के लिए आते। वे बहुत ही मधुर ध्वनि में उपदेशात्मक गीत गाते। यथा शक्ति उन्हें कोई चावल या दाल इत्यादि देता।

भक्तिविकास स्वामी: वे स्थानीय होते या यात्री?

नर्मदा स्वामी: कुछ स्थानीय तो कुछ यात्री।

भक्तिविकास स्वामी: वे केवल जनवरी में आते थे और बाकी पूरा साल नहीं आते थे?

नर्मदा स्वामी: नहीं, वे नहीं आते थे। बाकी साल वे अपने नियमित कार्य करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: कौन से?

नर्मदा स्वामी: अधिकतर कृष्ण का गुणगान करना। वे कई प्रसिद्ध भजन गाते थे, जो हर किसी को आते थे (तेलगु में एक भजन गाते हैं)। यह मेरे पसंदीदा भजनों में से एक है। इसका अर्थ है, ''मेरे भाई, हर किसी को अपने कर्मों के फल को भोगना है। कोई भी नहीं बच सकता। तुम्हें अपने शरीर के बोझ के दु:ख को झेलना होगा। दूसरे तुम्हारे लिए दु:ख नहीं भोगेंगे।

हरिदास बहुत ही तपस्वी होते थे। वे केवल उसी महीने इकट्ठा करते थे और बाकी साल नहीं। सालों साल हम निरन्तर यह सब बिना किसी बदलाव के देखते।

एक बहुत विख्यात तेलगु पण्डित थे, दीपल पिचैह शास्त्री। वे बहुत ही प्रतिभाशाली थे। वे स्कूल के आँगन या शहर के हाल में सभाएँ किया करते थे। एक एक करके सौ लोग उनसे प्रश्न करते और वे सबका उत्तर देते। वे उनसे तेलगु साहित्य के जटिल या व्याकरण के सूक्ष्म विषयों पर प्रश्न पूछते। और वे सभी प्रश्नों का उत्तर देते।

भक्तिविकास स्वामी: वे यह सब कैसे याद रखते थे?

नर्मदा स्वामी: ईश्वर द्वारा उन्हें यह विशेष योग्यता दी गई थी। जैसे ईश्वर की कृपा से कुछ लोगों की गणित में महारत होती है। उन्हें कोई भी गणित का प्रश्न दीजिए और तुरन्त कम्प्यूटर से भी तेज आपको उत्तर दे देंगे। वे अकेले नहीं थे, कुछ *अष्टवधनी* भी थे। मतलब वे एक समय पर आठ लोगों से बात कर सकते थे। किन्तु दीपल पिचैह शास्त्री एकमात्र *शतवधनी* थे। सौ लोग उनसे प्रश्न पूछते और जब वे पूछ लेते तो वे एक एक करके सबका उत्तर देते। लोग हैरान हो जाते थे। वे किस प्रकार सारे प्रश्न याद रख लेते हैं। उन्हें कैसे सारे उत्तर आते हैं। सभा चार, पाँच या छ: घण्टे चलती रहती। किन्तु कोई भी जाना नहीं चाहता था। उन पण्डित का बहुत सम्मान होता था। जहाँ कहीं भी वे जाते लोग उन्हें नमन करते।

उन दिनों भारत में विद्वत्ता की परम्परा अभी भी मजबूत थी। हर गाँव में संस्कृत पण्डित होता था। अच्छे विद्वान भी होते थे। आज उनके जैसा व्यक्ति ढूँढना मुश्किल है। एक साधारण विद्वान यदि वह गम्भीर है तो उसे भी दर्शन और शास्त्रों का विस्तृत ज्ञान होता था। आज जिन्हें वैदिक दर्शन का महान विद्वान माना जाता है, वे पहले के साधारण पण्डित के सामने भी टिक नहीं सकते। और जो सचमुच विद्वान थे वे अद्भुत थे। उन्हें बहुत अधिक ज्ञान था। वे अन्दर-बाहर, ऊपर-नीचे हर जगह से उद्धरण दे सकते थे। उन दिनों जब दो पण्डित अचानक मिल जाते और साधारण बातचीत करते करते *तत् त्वम् असि* जैसे वाक्यों पर बहस करने लगते।[५३] और वे घण्टों यहाँ से उद्धरण, वहाँ से उद्धरण देते हुए एक दूसरे की बात को झुठलाते — वे इतने उत्साह से चर्चा करते मानो पूरा संसार इस पर आश्रित है।

भक्तिविकास स्वामी: क्या उस समय बौद्धिक वैर भी था?

नर्मदा स्वामी: यह केवल बौद्धिक वैर नहीं था, वे दार्शनिक दृष्टि से वैरी थे। जिस बात पर वे तर्क देते, वे उसे समर्पित थे। हम भक्तों और निराकारवादियों की बात कर रहे हैं। आप इसके बारे में अच्छी तरह जानते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: हाँ। यह वैर आज भी है और चलता रहेगा।

नर्मदा स्वामी: नि:सन्देह। किन्तु कम से कम उन दिनों दुश्मन भी सभ्य थे। आपको कहावत ज्ञात होगी, ''मूर्ख दोस्त से विद्वान दुश्मन भला।''

भक्तिविकास स्वामी: ऐसी चर्चाएँ रोमांचक मालूम होती हैं।

नर्मदा स्वामी: किन्तु ये केवल तेज चातुरी या शेखी नहीं होती थी। इसके लिए शास्त्रों और टीकाओं की विस्तृत विद्वत्ता और व्याख्या का विज्ञान चाहिए होता था। बिना तैयारी के कोई भी शास्त्रार्थ नहीं करता था जब तक वह सुक्ष्म बात के लिए शास्त्रों के अलग-अलग प्रमाण देने, तर्क में निपुणता और समान रूप से शास्त्रों में निपुण अपने प्रतिद्वन्द्वी को उत्तर देने में समर्थ न हो।

---

५३ तत् त्वम् असि - ''तुम वो हो'', उपनिषदों के इस श्लोक की व्याख्या पर सदियों से विवाद है।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आपने ऐसी कोई चीज़ें सीखी हैं?

नर्मदा स्वामी: नहीं। हम तेलगु भागवतम् के साथ पले-बढ़े हैं जिसे *पोतन भागवतम्* भी कहते हैं। तेलगु लोगों में यह आज भी प्रसिद्ध है।

भक्तिविकास स्वामी: पोतन?

नर्मदा स्वामी: कुछ सौ वर्ष पूर्व पोतन एक प्रसिद्ध कवि हुए हैं। उन्होंने तेलगु में भागवतम् का अनुवाद किया है। यह एक क्रम तथा एक प्रकार के विस्तार के साथ सीधा अनुवाद नहीं है। किन्तु सभी मुख्य कथाएँ हैं। यह तेलगु और सरल संस्कृत का मिश्रण है। उन्होंने प्रारम्भ में लिखा है (तेलगु श्लोक), ''मैं यह विद्वानों और किसानों को प्रसन्न करने के लिए लिख रहा हूँ।'' (एक और तेलगु से श्लोक) ''क्योंकि हरि का वर्णन हमें जन्म-मरण से मुक्ति देता है, तो मैं क्यों अन्य विषय का वर्णन करूँ।'' सुन्दर और बहुत ही भक्तिमय। उन दिनों पोतन के कुछ श्लोक हर कोई जानता था। पहले की कई फिल्में पोतन से आई हैं।

भक्तिविकास स्वामी: आपको पोतन स्कूल में पढ़ाई जाती थी?

नर्मदा स्वामी: निश्चित ही। आज की तरह निरपेक्षता नहीं थी। पोतन स्कूल में पढ़ानी आवश्यक थी।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे संस्कृत पढ़ाते थे?

नर्मदा स्वामी: हाँ, प्राथमिक स्तर से ऊपर तक। मैं संस्कृत की और अधिक शिक्षा लेना तथा आनन्द लेना चाहता था, किन्तु मुझे विज्ञान में धकेल दिया गया। कितनी भंयकर चीज़ें हमें करनी पड़ती थीं : मेंढक और तिलचट्टा काटना इत्यादि।

भक्तिविकास स्वामी: तो आधुनिकता पहले से ही शुरु हो गई थी, किन्तु फिर भी लोग भगवान् की पूजा करते थे। क्या युवा बालक भी कभी आश्रम इत्यादि में जाना चाहते थे?

नर्मदा स्वामी: बहुत कम। हमने एक रिश्तेदार के बारे में सुना था जो ऐसा था। पहले वह एम .ए . करने के लिए मद्रास गया और वहीं कुछ साधुओं के सम्पर्क

में आ गया। वह मोहित हो गया और फिर उसने सब कुछ त्याग दिया, किन्तु जब वह सोलह वर्ष का था तो उसका विवाह, नौ वर्ष की लड़की से पहले ही हो चुका था। जब उस लड़की की उम्र पति के साथ रहने की हुई, तो उसका पति सब कुछ छोड़ कर जा चुका था। हर किसी ने कहा, ''यह अच्छा नहीं है। तुम विवाहित हो। तुम जो कुछ भी करना चाहते हो, उसे घर में रहकर करो।'' सारे रिश्तेदार उसे वापिस ले आए किन्तु वह एक या दो साल ही रहा और फिर से चला गया। इसके बाद उसके रिश्तेदार उसे फिर से ले आए। वह पूरी तरह से बदल चुका था और अंततः उसने सब कुछ त्याग दिया।

भक्तिविकास स्वामीः क्या उसकी कोई संतान भी थी?

नर्मदा स्वामीः मेरे ख्याल से एक पुत्री थी। किन्तु वह गृहस्थ जीवन के सम्पर्क में नहीं था। इस प्रकार की कुछ घटनाएँ थीं। कई बार हम उन लोगों के बारे में सुनते जो घर छोड़कर संन्यासी बन गए और कभी लौट कर नहीं आए।

भक्तिविकास स्वामीः मुझे लगता है कि अधिकतर लोगों को यह अच्छा नहीं लगता होगा कि उनके सम्बन्धी ने संन्यास ले लिया है।

नर्मदा स्वामीः कई बार। किन्तु कई बार सम्बन्धी और यहाँ तक की पत्नी इस बात की प्रशंसा करती, ''बहुत अच्छा, वे एक भक्त बन रहे हैं।''

भक्तिविकास स्वामीः वे आदर करते थे। उनमें भी संन्यास के लिए सम्मान था। आज की तरह नहीं कि आमतौर पर जब कोई नौजवान धार्मिक संस्था में चला जाता है, तो माता-पिता किसी भी कीमत पर उसे वापिस लाने का प्रयास करते हैं।

नर्मदा स्वामीः किन्तु तब जब वे उस व्यक्ति के बहुत ही करीब होते थे जैसे पत्नी, माता या पिता। शायद पहले वे उसकी परीक्षा लेते थे और फिर बाद में कुछ नहीं। विशेषकर जब पत्नियाँ युवा होतीं।

भक्तिविकास स्वामीः एक युवती के लिए मुश्किल होता होगा जब उसका पति संन्यासी बनने के लिए चला गया हो। उसे कम आयु में ही विधवा की तरह कठोर जीवन जीना होता होगा।

नर्मदा स्वामी: नि:सन्देह। उस समय जब कुछ होता था और यदि माता-पिता अमीर होते तो वे देखभाल करते थे। यदि लड़की युवा होती और पति की मृत्यु या कुछ हो जाता तो वे लड़की को घर वापिस ले आते और देखभाल करते तथा सम्पति का कुछ भाग दे देते। वे उसके बच्चों की शिक्षा का भी ध्यान रखते। जैसे की मेरी माता जी के परिवार में: वे तीन बहनें और दो भाई थे। एक बहन का विवाह वहीं हुआ था और बड़ी बहन का विवाह उसी जिले में तीस या चालीस मील दूर हुआ था। उनके एक पुत्र और एक पुत्री थी और जब वह तीस वर्ष की थीं तो उनके पति की मृत्यु हो गई। एक प्रकार से उनके लिए हालात वहाँ अच्छे नहीं थे, तो मेरे मामा उन्हें वापिस ले आए। मेरी माता जी के घर वाले मेरे पिता जी से अमीर थे। इसलिए उन्होंने उसे एक घर और कुछ जमीन दे दी और देखभाल भी की। उन्होंने पुत्र तथा पुत्री को शिक्षा दिलाई और उनका विवाह भी कर दिया।

भक्तिविकास स्वामी: इसका अर्थ हुआ कि पत्नी के पास पति से अलग सम्पत्ति होती थी।

नर्मदा स्वामी: हाँ, उन्हें विवाह के समय हिस्सा दिया जाता था या जब बच्चा बड़ा हो जाता था तो यह उसके पास चली जाती थी। सब कुछ वैसे ही चलता किन्तु जमीन लड़के की हो जाती। जो कुछ उन्हें मिलता वे उसे दे देते। कुछ परिवारों में स्त्री अपने पति के यहाँ रह जाती क्योंकि बच्चे बड़े हो जाते तो वे बाहर नहीं जाना चाहते। जब लड़की पति के घर चली जाती और गृहस्थ जीवन में बच्चे बड़े होते और वहाँ से जाने का प्रश्न ही नहीं था। वे पति के परिवार का अंग बन जाते। किन्तु यदि वे युवा होती और कोई मुश्किल होती तो माता-पिता उन्हें वापिस ले आते। अमीर लोग विशेषकर कुछ सम्पत्ति देने में सक्षम होते। यदि लड़की और उसके बच्चे छोटे होते और परिस्थितियाँ ठीक होतीं, तो वे चुप हो जाते। जब परिवार का भरण-पोषण करने वाला मर जाता और परिस्थितियाँ अच्छी न होतीं और वे अमीर न होते तो परिवार उसे वापिस ले आता। वे उस परिवार से उसका बोझ ले लेते।

भक्तिविकास स्वामी: आप बता रहे थे कि आपने एक बार राम-लीला की थी और रावण पर तीर चलाया था।

नर्मदा स्वामी: (हँसते हुए) हाँ। हम उस पूरे दिन आपस में राम-लीला खेलते रहे। दूसरा लड़का रावण का और मैं भगवान् राम की भूमिका कर रहा था। जब राम-लीला का चरम आया तो मैंने तीर-कमान उठाया, आप तो जानते हैं हम बच्चे थे। एक तिकोनी धातु को तीर पर लगा दिया गया और मुझे यह समझ ही नहीं थी कि यदि यह लगा तो इससे चोट पहुँच सकती है। तीर के भारी होने के कारण, यह उसकी आँखों के पास लगी। उसकी आँखों के पास से खून आने लगा किन्तु सौभाग्य से उसकी आँखों को कोई नुक्सान नहीं पहुँचा (हँसते हैं)। मैं घबरा गया, इसलिए मैंने तीर कमान उठाया और वहाँ से भाग गया।

भक्तिविकास स्वामी: आपके पिता जी ने आपको डाँटा होगा।

नर्मदा स्वामी: मेरे पिता जी वहीं थे, मेरे घर के पास और उनके पिता जी भी वहीं थे। हर कोई वहीं था, इसलिए वे भागे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आपके पिता जी ने आपकी पिटाई की?

नर्मदा स्वामी: वे मुझे देखना भी नहीं चाहते थे। जब मैंने उनका गुस्सा देखा तो मैं वहाँ से भाग गया। हमारे घर के बगल में एक पोस्टमास्टर का घर था और वे बहुत अच्छे इन्सान थे। उन्होंने मेरे पिता जी से कहा इसे कुछ मत कहो।

भक्तिविकास स्वामी: लड़के को इसके बाद बुरा नहीं लगा?

नर्मदा स्वामी: नहीं, उसे बुरा नहीं लगा। उसे अस्पताल ले जाया गया।

भक्तिविकास स्वामी: तो आपके पिता जी कई बार आपको पीटते थे?

नर्मदा स्वामी: कई बार (हँसते हैं)।

भक्तिविकास स्वामी: आप क्या शरारतें करते थे?

नर्मदा स्वामी: लड़कों से लड़ाई करना, इधर-उधर कूदना और फल खाना इत्यादि। आमतौर पर घर के पिछवाड़े में बहुत सारे अच्छे फलों के पेड़ थे — पपीता, जामुन, जमरुद। हम घर के पिछवाड़े में छलांग लगाते और सफाया कर देते (हँसते हुए)। यदि कोई शिकायत करता था, तो बहुत पिटाई होती थी (हँसते हैं)।

भक्तिविकास स्वामी: मुझे स्मरण है कि मध्व सम्प्रदाय के ब्राह्मण जिन्होंने मुझे बताया कि उनके पिता जी उन्हें विष्णु-सहस्त्र नाम सिखाने के लिए पीटते थे। वे ब्राह्मण इस बात की बहुत ही प्रशंसा करते थे, क्योंकि उन्हें महसूस हुआ कि विष्णु-सहस्त्र नाम का जप जीवन की अमूल्य निधि है। छोड़िए, आप मुझे अपने बचपन की शरारतों के बारे में बता रहे थे।

नर्मदा स्वामी: मेरे साथ बहुत अच्छे लड़के थे, कई बार स्कूल न जाना (हँसते हैं)। मैं चाहे शहर में रह रहा था, मैं जाने के लिए छुट्टियों की प्रतीक्षा नहीं कर सकता था।

भक्तिविकास स्वामी: गर्मियों की छुट्टियाँ।

नर्मदा स्वामी: हाँ। हम गर्मियों की छुट्टियों में तैरने, खेलने और मन्दिर, जैसे चैन्नाकेशव जाया करते थे। वे सबसे सुन्दर अर्चा-विग्रह हैं। वे हर वर्ष एक उत्सव मनाते और वहाँ तीर्थ-यात्रियों के लिए बड़ा बाजार लगता। वे यह उत्सव दस दिनों तक मनाते और हर रात्रि अलग ढंग से मनाई जाती। विशेषकर श्री वैष्णव सम्प्रदाय के लोग अपने बहुत सारे शिष्यों के साथ घोड़ों और हाथियों पर आते हैं। वे गाँव में आते हैं और एक सप्ताह या पन्द्रह दिनों के लिए रहते हैं और भागवत पर प्रवचन होते हैं। हर कोई जाकर दर्शन करता है। हर कोई दान देता है। कोई फल देता है कोई दूध तो कोई दही...।

भक्तिविकास स्वामी: वे इतनी सारी चीज़ों का क्या करते हैं। क्या वे प्रसाद बनाते हैं?

नर्मदा स्वामी: जो कुछ भी उन्हें मिलता, वे बनाकर आने वाले श्रद्धालुओं में बाँट देते। वे अपने साथ अलग से गेहूँ भी लाते। कई बार परिवार भी तिरुपती साथ जाता।

भक्तिविकास स्वामी: स्कूल की छुट्टियों के दौरान?

नर्मदा स्वामी: हाँ, हम तीन दिन वहाँ बिताते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या उनके पास सारी सुविधाएँ थीं?

नर्मदा स्वामी: हाँ, शुरु से ही। वहाँ तीर्थ-यात्रियों के लिए धर्मशालाएँ हैं। वहाँ हम तीन दिन और तीन रातें रहा करते थे। एक विवाह हाल में यह सुविधा थी कि यदि आप दो सौ रुपए दें तो वे वहाँ सभी को बड़े बड़े बर्तनों में प्रसाद वितरित कर देते थे।

भक्तिविकास स्वामी: उस समय दो सौ रुपए बहुत बड़ी रकम थी।

नर्मदा स्वामी: हाँ, किन्तु बड़े बर्तनों में तीन प्रकार के व्यंजन होते थे। वे आपके क्षेत्र से हर किसी को बाँटने देते थे।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु अब वहाँ यह सुविधा नहीं है।

नर्मदा स्वामी: हाँ, नहीं है।

भक्तिविकास स्वामी: कृपया मुझे उत्सवों के बारे में और बताइए।

नर्मदा स्वामी: सबसे बड़े उत्सव होते थे — मकर संक्रान्ति और वैकुण्ठ एकादशी। हम सब, पूरा परिवार यहाँ तक कि छोटे बच्चे भी, नदी पर सुबह ढाई बजे स्नान करने जाते और फिर मन्दिर जाकर दर्शनों की प्रतीक्षा करते। वहाँ बहुत भीड़ होती थी।

हमारे बहुत सारे त्योहार होते थे और हम बहुत ही धूमधाम से मनाते थे। हर त्योहार का विशेष प्रकार का पकवान बनाया जाता था और विशेष प्रकार के रीति-रिवाज होते थे। उनमें से अधिकतर अब भुला दिए गए हैं या बिल्कुल ही नष्ट हो गये हैं। त्योहार का अर्थ है लोग इकट्ठे होते, एक दूसरे को शुभकामनाएँ देते और मिल बाँटने की भावना रहती, यदि कोई बुरी भावना होती तो उसे त्याग देते। और त्योहारों का अर्थ है धार्मिक त्योहार। अब इनका अर्थ है — पटाखे, नशा और शोर।

रथ-यात्रा मनाने के लिए हर मन्दिर का एक बड़ा रथ होता था, जो केवल लकड़ी से बना होता था। साल में एक बार वे रंग साफ कर दोबारा रंग करते। उत्सवों के दौरान हर कोई सहयोग करता। वे मन्दिर का रंग-रोगन करते और सजाते तथा लोग दान देते। कई जिलों से लोग आते। कई शहरों में तिरुपति की तरह मन्दिर थे और भव्य रथ-यात्राएँ होती थीं।

सुबह वे रथ निकालते और शाम को वापिस आते। उन दिनों वे त्योहार को नौ दिनों के लिए मनाते थे और हर रात भगवान् बाहर अलग-अलग वाहनों जैसे गरुड़, हंस पर आते। विशेषकर उन दिनों में भगवान् सोने से सजे वाहन पर सवारी करते। गरुड़-वाहन दिन बहुत ही विशेष होता था, जब भगवान् को गरुड़ जी पर विराजित कर लाया जाता। इस उत्सव के लिए मद्रास से विशेष फूल आते थे। फूलों की बहुत ज्यादा खुशबू होती थी। वे वाहन पर मालाएँ लाते, जिसे उठाने के लिए बीस लोगों की आवश्यकता होती। सैकड़ों लोग उठाने के लिए तत्पर होते।

भक्तिविकास स्वामी: ब्राह्मण उठाया करते थे।

नर्मदा स्वामी: अधिकतर ब्राह्मण। और फूलों की सुगन्ध हर जगह फैल जाती, बड़ी-बड़ी मालाएँ। अमीर लोग कोई एक सेवा देते जैसे गरुड़ सेवा। हर परिवार में एक परम्परा होती थी। वे लोगों में प्रसाद भी बांटते। शोभायात्रा सुबह नौ बजे शुरु हो जाती। हर कोई अपने घर के बाहर भगवान् के आगमन की प्रतीक्षा करता। हर घर के बाहर रथ खड़ा होता और लोग बाहर आकर कुछ न कुछ भेंट करते, शायद कुछ फल। जुलूस इस प्रकार दोपहर तक चलता रहता।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे आरती भी करते थे?

नर्मदा स्वामी: हाँ। वे कपूर और अन्य कई चीज़ों से आरती भी करते थे। वे सात दिनों या नौ दिनों के उत्सव के लिए सेवा करते। कुछ लोग उत्सव मनाने के लिए इतना उत्साहित होते थे कि वे बड़े शहरों या पास के गाँव से देखने आते थे। पाँच से दस मील में बहुत सारे गाँव होते थे। हर कोई अपने रिश्तेदारों के यहाँ आता और दो-तीन दिन त्योहार के लिए ठहरता। और हर कोई प्रेम और स्नेह से बहुत उल्लासित होता था। पास के क्षेत्र से हर कोई उत्सव में आता।

भक्तिविकास स्वामी: त्योहारों के अलावा क्या आप दर्शन के लिए मन्दिर जाते थे?

नर्मदा स्वामी: हाँ, हर शाम हम दर्शन के मन्दिर जरूर जाया करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: शाम को क्यों?

नर्मदा स्वामी: आरती के समय। लोग नियमित रूप से शाम को जाते थे। चाहे हम खेलने के लिए स्कूल जाया करते थे, फिर भी हम घर पर आकर नहाते और फिर मन्दिर जाते। हम मन्दिर में खेला करते थे और प्रसाद लेते तथा दर्शन भी करते। अब भी बच्चे मन्दिर के आंगन में खेलते हैं। बहुत बड़ी जगह, एक खेल के मैदान की तरह है। निश्चित ही यह इसके लिए नहीं बने हैं, किन्तु हमें नहीं पता था और हमें किसी ने रोका भी नहीं। और हमें भगवान् और उनके भक्तों के दर्शन करने तथा प्रसाद लेने का अवसर मिल जाता। इसने मेरे जीवन में बहुत सहायता की और अब भी कर रहा है। चाहे एक बच्चा होने के कारण मुझे इस बात की समझ नहीं थी कि मैं क्या कर रहा हूँ (हँसते हैं)। हम हर रोज़ मन्दिर में दो या तीन घण्टे बिताते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या पुजारी प्रसाद बाँटते थे?

नर्मदा स्वामी: पुजारियों के गाँव में हर किसी के साथ निजी सम्बन्ध थे और वे बच्चों को प्रेम करते थे। वे बच्चों को नामों से पुकारते और प्रसाद देते। इस प्रकार वे एक सम्बन्ध बना लेते थे। गाँव में हर कोई हर किसी को जानता है। ''वह यह है और यह उसका पुत्र है और यह उसका पुत्र है वगैरह वगैरह...।

भक्तिविकास स्वामी: पूरी संस्कृति आकर्षक प्रतीत होती है। आधुनिक समाज भयंकर है — काम, क्रोध, लोभ।[५४]

नर्मदा स्वामी: लोग शांत चित्त थे। अब गाँव लड़ाई, खून इत्यादि का अड्डा बन गए हैं। पहले यह सब हम नहीं सुनते थे।

भक्तिविकास स्वामी: कोई पुलिस नहीं थी।

नर्मदा स्वामी: नहीं। विशेष उत्सवों, या कुछ विशेष प्रबन्ध के अलावा हमने कभी पुलिस को नहीं देखा। बाकी समय पुलिस, थाने में रहती थी। अब सब कुछ बदल गया है। हर कोई एक दूसरे का साथ देता था। उत्सवों के समय — नवम्बर, दिसम्बर और जनवरी — नई फसलें आती थीं, इसलिए लोग शाम को

---

५४ तीन शत्रु – कामवासना, गुस्सा और लालच।

थोड़ा जल्दी आ जाते थे। रात को वे बहुत ही प्रेममय और अच्छे होते; वे भजन और कीर्तन करते।

भक्तिविकास स्वामी: अपने घरों में?

नर्मदा स्वामी: नहीं, हर स्थान पर मिलने की एक सार्वजनिक जगह होती थी: बरगद का पेड़ अच्छा मंच था। वहाँ चालीस या पचास लोग आराम से हर शाम इकट्ठे हो सकते थे। हरिदास करताल के साथ बहुत ही अच्छा संगीत गाते। बच्चे शाम सात बजे तक खेल खेलते थे। गाँव में आमतौर पर कोई बिजली नहीं होती थी, इसलिए रात होने पर वे कीर्तन और भजन गाते।

भक्तिविकास स्वामी: आप का जन्म कब हुआ?

नर्मदा स्वामी: मेरा जन्म सन् 1929 में हुआ।

भक्तिविकास स्वामी: इसका मतलब है आपके बचपन में लगभग 1940 के आसपास भारतीय स्वतंत्रता संग्राम बहुत ही तीव्र हो गया होगा। उस समय अंग्रेजों के प्रति क्या व्यवहार था।

नर्मदा स्वामी: जैसे-जैसे स्वतंत्रता संग्राम बढ़ा, लोग उनसे घृणा करने लगे। हमें समझ नहीं आया। कई बार मैंने जुलूसों में भाग लिया, *वन्दे मातरम्* चिल्लाया।[५५] मैंने पुलिस अफसरों को और जिला संग्राहकों को देखा। किन्तु कुछ वृद्ध पीढ़ी के लोगों के अधिकारियों के साथ सम्बन्ध थे, इसलिए वे अंग्रेजों का उनके अनुशासन के कारण आदर करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: प्रभुपाद जी ने कहा है कि कई मायनों में भारत अंग्रेजों के अधीन अच्छा था।

नर्मदा स्वामी: हाँ। कई लोग ऐसा कहते हैं। इंग्लैंड से श्रीमान हैल्डिंग मेरे पिता जी के अच्छे मित्र थे। वे रिजर्व पुलिस में मेजर थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आपके पिता जी उन्हें घर भी लाते थे?

---

५५ ''वन्दे मातरम्'' - भारतीय देशभक्ति की गीत।

नर्मदा स्वामी: हाँ, कई बार। वे, उनकी पत्नी और बेटी आते थे। उनकी केवल एक ही पुत्री थी। वे हमारे घर आया करते थे और हम भी उनके घर जाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु मुझे लगा कि हिन्दू ऐसे लोगों को अपने घर नहीं लाते थे क्योंकि वे माँस आदि खाने वाले थे।

नर्मदा स्वामी: शुरु से ही मेरे पिता जी इन सब लोगों को अच्छी तरह जानते थे।

भक्तिविकास स्वामी: आपके पिता जी को अच्छी अंग्रेजी आती थी?

नर्मदा स्वामी: हाँ,वे अंग्रेजी, तेलगु, हिन्दी और कन्नड़ जानते थे। मेरे पिता जी ने बी.ई मकैनिकल इंजीनियरिंग में की थी और बाद में आटो मोबाईल व्यापार में चले गए। उन्होंने बताया था कि मैंने शिलगुरी के इंजीनियरिंग विभाग में कुछ समय काम किया है।

भक्तिविकास स्वामी: और आपके दादा जी?

नर्मदा स्वामी: मेरे दादा जी किसान थे।

भक्तिविकास स्वामी: आपके पिता जी ने अपना व्यापार स्वयं किया था। क्या आपके पास भी जमीन है?

नर्मदा स्वामी: हाँ, कई फसलें, हर चीज़ भरपूर। हम गेहूँ, चावल और दाल हर चीज़ उगाते थे। यह उपजाऊ भूमि थी (हँसते हैं)। हमें बाजार से कुछ भी खरीदने की जरुरत नहीं थी, यह सब जमीन से आता था। हम इमली भी बाजार से नहीं खरीदते थे क्योंकि हमारे यहाँ इमली का भी पेड़ था। आमतौर पर ब्राह्मणों की यह आदत होती है कि वे बाहर नहीं खाते।

भक्तिविकास स्वामी: वे अपने खाने की शुद्धता के प्रति बहुत सजग रहते हैं।

नर्मदा स्वामी: हाँ। अब यह बदल गया है, किन्तु विशेषकर उत्सवों को मनाने का उत्साह अब नहीं रहा। वे बहुत उत्साहित हुआ करते थे। मेरे पिता जी, चाहे वे विशेषकर पूजा में इतनी रुचि नहीं रखते थे, फिर भी वे कुछ पूजा करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: यह अद्भुत है कि आपके माता जी पिता जी से अधिक धार्मिक थी।

नर्मदा स्वामी: हाँ, आमतौर पर महिलाएँ ज्यादा धार्मिक होती हैं। मैंने अपनी धार्मिक भावनाएँ माता से प्राप्त की हैं, जिसके लिए मैं अब बहुत ही आभारी हूँ। ऐसा नहीं हैं कि मेरे पिता जी धार्मिक नहीं थे। वे भी मन्दिर जाते थे और प्रसाद ग्रहण करते थे किन्तु उन्होंने कभी भी हमें धर्म की शिक्षा देने में रुचि नहीं दिखलाई। इसलिए कुछ वर्षों बाद जब मैं हाई स्कूल में गया तो गाँव के जीवन को भूल गया और इधर-उधर भटकता रहा। मैं शहर के बच्चों से संग करने लगा — क्रिकेट खेलने मैदान में जाता, टैनिस खेलने जाता, फिल्में देखने जाता और बाहर खाता। बेशक हम सख्ती से पालन नहीं करते थे, फिर भी धार्मिक थे।

भक्तिविकास स्वामी: उन दिनों में अधिकतर फिल्में धार्मिक होती थीं।

नर्मदा स्वामी: हाँ, किन्तु फिल्में तो फिल्में होती हैं (हँसते हैं)। फिर भी वे आज की फिल्मों से सौ गुना, लाखों गुना और करोड़ों गुना अच्छी थीं। वे सब भागवतम्, रामायण और महाभारत पर आधारित थीं। वे एक विशेष विषय चुनते — प्रह्लाद, अनिरुद्ध या कर्ण की कहानी। कर्ण सबसे प्रसिद्ध थे। लोग इसे पन्द्रह, बीस बार देखने जाते थे। कई प्रकार से वह एक अच्छा चरित्र था — कुलीन, उदार और साहसी, किन्तु वह किस्मत का मारा था। उसका संग गलत था, एक दु:ख भरा जीवन।

भक्तिविकास स्वामी: लोग उन फिल्मों को देखकर बहुत रोते होंगे।

नर्मदा स्वामी: (हँसते हैं) कुछ लोग तो फिल्म देखने से ही मना कर देते थे। वे कहते थे, ''मैं तीन घण्टे बैठकर रो नहीं सकता''— क्योंकि फिल्म तीन या चार घण्टे की होती थी। सारे दर्शकों की आँखों में पूरी फिल्म के दौरान आँसू होते थे। हर समय नहीं। कुछ हँसमुख दृश्य भी होते थे। यह रोना भक्तिमय नहीं था, शायद भावुकता थी।

भक्तिविकास स्वामी: अच्छी भावुकता, भक्तिमय भावुकता। जब आप हाई स्कूल जाते थे, तो क्या आप घर पर रहते थे?

नर्मदा स्वामी: शुरू में मैं मद्रास में हाई स्कूल गया।

भक्तिविकास स्वामी: आप छात्रावास (हॉस्टल) में थे?

नर्मदा स्वामी: हाँ, कम्यूनिटी छात्रावास में। इसके बाद मेरी माता जी ने मेरे पिता जी के साथ झगड़ा किया कि वे मेरे बिना नहीं रह सकतीं। इसलिए मैं नैल्लोर में रहा। वहाँ भी कालेज था।

भक्तिविकास स्वामी: माता का प्रेम। यह अच्छा है। आपके माता जी का आप से बहुत अधिक लगाव था, क्योंकि आप उनके इकलौते पुत्र थे।

नर्मदा स्वामी: हाँ, इसलिए वे मेरे पिता जी से लड़ीं (हँसते हैं)। मैं मद्रास केवल एक या डेढ़ साल ही रहा।

भक्तिविकास स्वामी: आमतौर पर कोई भी स्त्री अपने पति से झगड़ा नहीं करना चाहती।

नर्मदा स्वामी: हाँ, वह यह नहीं चाहती थीं। मैंने कभी नहीं देखा की मेरी माता जी किसी भी विषय पर मेरे पिता जी से असहमत हो सिवाए इसके। उन्होंने कहा, ''उसे यहाँ पढ़ने दो, यहाँ भी तो कॉलेज है। ये वहाँ क्यों जाएगा?''

भक्तिविकास स्वामी: आपके पिता जी आपकी अच्छी शिक्षा चाहते थे।

नर्मदा स्वामी: हाँ।

भक्तिविकास स्वामी: इसका मतलब क्या हुआ कि आपकी माता जी आपके पिता जी से लड़ी?

नर्मदा स्वामी: उन्होंने मेरे पिता जी से निवेदन किया, ''आपको उसे वापिस लाना चाहिए।'' वे उनसे कहा करती थीं, ''यदि आप उसे यहाँ नहीं लाएँगे तो मैं मद्रास जाकर वहीं रहूँगी।'' (हँसते हैं) इस प्रकार बाद में वे मान गए।

भक्तिविकास स्वामी: आप मद्रास में क्या करते थे?

नर्मदा स्वामी: मद्रास में बहुत सारे मन्दिर हैं। मैं त्रिपलीकेन में रहा करता था। नैल्लोर में हम मुख्य गली में रहते थे। बहुत अच्छे उत्सव हुआ करते थे। नैल्लोर

के दूसरी ओर वेणुगोपाल मन्दिर था और हम वहाँ अक्सर जाते थे। साल में एक बार वहाँ बहुत बड़ा उत्सव होता था। वहाँ कुछ लोग आग पर चलते थे (हँसते हैं)।

भक्ति विकास स्वामी: मैंने *थैपुसम्* में आग पर चलते देखा है, एक तमिल उत्सव।

नर्मदा स्वामी: हाँ। यह बड़ी आग होती है और वे इस पर दौड़ते हैं — इस ओर, उस ओर (हँसते हैं)। वहाँ एक बड़ा हाल भी होता है जहाँ विवाह और अन्य कार्यक्रम किए जाते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: रंगनाथ मन्दिर में?

नर्मदा स्वामी: वेणुगोपाल मन्दिर में, वहाँ सब कुछ है।

भक्तिविकास स्वामी: वह भी श्री वैष्णव मन्दिर है।

नर्मदा स्वामी: हाँ। वास्तव में मेरा विवाह भी वहाँ हुआ था। उनके पास पकाने, परोसने इत्यादि के सारे प्रबन्ध थे। उस समय विवाह बहुत ही भव्य होते थे। विवाह सात दिनों तक चलते थे जिसमें संस्कार और अलग-अलग पकवानों के साथ भोज होते थे। हर चीज़ घर पर बनाई जाती थी कोई कैटरिंग कम्पनी नहीं होती थी। अब यह छोटे होते जा रहे हैं — चार दिन फिर दो दिन अब एक दिन या एक से कम आधा दिन। शायद एक दिन वे इसकी परवाह भी नहीं करेंगे। वे एक दिन पशुओं की तरह सड़कों पर रहेंगे। इन संस्कारों से मन हट गया है। लोगों की कोई रुचि नहीं हैं। वे व्यस्त हैं किन्तु भगवान् ही जानते हैं किसलिए।

भक्तिविकास स्वामी: आप मन्दिर जाकर भगवान् से प्रार्थना किया करते थे?

नर्मदा स्वामी: (हँसते हुए) मैं केवल प्रसाद के लिए प्रार्थना करता था। चाहे मैं अर्चा-विग्रह के समक्ष खड़ा होता था, मैं प्रसाद के लिए प्रार्थना किया करता था (हँसते हैं)। मैं अर्चा-विग्रह के समक्ष जाता और प्रणाम करते हुए सोचता, ''ओह मुझे प्रसाद लेना है।'' और जब भी मेरी परीक्षा होती मैं प्रार्थना किया

करता, ''मुझे पास कर दीजिए।'' मैं केवल इन वस्तुओं के लिए प्रार्थना किया करता था, बस। शुरु में मैं केवल भोग चढ़ाता था, कोई प्रार्थना नहीं करता था। यह कुछ कुछ भक्तिमय था, किन्तु मैं हमेशा सोचता था, ''आज प्रसाद में क्या होगा?'' यह सोच कृष्ण से जुड़ी थी (हँसते हैं)। जब मैं और परिपक्व हुआ तो मुझे पता चला कि मुझे उपवास रखना चाहिए।

कई श्री वैष्णव लड़के अच्छी तरह से सिर मुण्डवा कर, शिखा और तिलक लगाकर स्कूल आते थे। मैं एक लड़के, कृष्णमचरी को जानता हूँ, जो लम्बा था और कभी शर्ट नहीं डालता था। वह तिलक लगाकर स्कूल आता था और शर्ट की जगह केवल उत्तरीय और धोती डालकर आता था। हम कॉलेज में भी इकट्ठे पढ़े। प्रिंसीपल ने उसे बुलाया और उससे शर्ट में आने को कहा। उसने कहा, ''नहीं, मैं शर्ट नहीं पहनूँगा।'' (हँसते हैं) उसने प्रिंसीपल को भी निडरता से कह दिया। वह कालेज बिना शर्ट, सिर मुण्डवाए और शिखा तथा तिलक के साथ कालेज आता था।

भक्तिविकास स्वामी: वह कौन सा विषय पढ़ता था?

नर्मदा स्वामी: गणित, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान।

भक्तिविकास स्वामी: अपने विषयों के बारे में बताएँ?

नर्मदा स्वामी: मैं भी विज्ञान पढ़ता था। यह बहुत मुश्किल था। हमारे पास कुछ और सोचने का शायद ही समय होता था। इस प्रकार मैं अपनी वास्तविक संस्कृति से दूर होता गया। फिर मैंने श्रील प्रभुपाद की एक पुस्तक पढ़ी और मेरा जीवन बच गया।

भक्तिविकास स्वामी: इस प्रकार, महाराज, आपने अपने जीवनकाल में सचमुच दो संसार देखे हैं। इसमें बहुत ज्यादा बदलाव...।

नर्मदा स्वामी: अपने जीवन में नहीं, केवल पिछले बीस वर्षों में।

भक्तिविकास स्वामी: आधुनिक सभ्यता के विकास पर आपकी क्या राय है?

नर्मदा स्वामी: विकास? क्या विकास? लोग कुत्ते बिल्लियों की तरह जी रहे हैं, गंदे, बदबूदार शहरों में एक साथ सड़ रहे हैं। आप यहाँ मुम्बई में इन

अमीर लोगों को छोटे से फ्लैट में रहते हुए देख सकते हैं। हिलने की भी जगह नहीं है। सिर्फ भेड़ चाल। व्यवहार की समझ भी नहीं है। लोगों को यह भी नहीं पता कि एक दूसरे से बात किस तरह करनी है। यहाँ तक कि आम मुद्दों पर भी वे रूखा बोलते हैं। ताज़ी हवा, ताज़ा खाना, ताज़ा पानी कुछ भी तो नहीं है। सब कुछ कूड़ा — हर चीज़ प्लास्टिक की बनी है, गंदा ऊँचा संगीत जो आपकी हड्डियों को झकझोर दे। कितना कुछ कहूँ? और यह महिला स्वतंत्रता बकवास है। हमारी बेटियों को वेश्याओं की तरह पाला पोसा जाता है। सौन्दर्य प्रतियोगिताएँ (घृणाभाव से मुस्कराते हैं)। यह उन्नति है? नहीं, यह अवनति है। हम कुत्ते, बिल्लियाँ, चूहे और बन्दर बनकर अवनति कर रहे हैं। यह डार्विन का उल्टा सिद्धान्त है। 'प्रगति' राजनीतिज्ञों का बहकाने वाला शब्द है।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आप आधुनिक जीवनशैली में कुछ अच्छाई देखते हैं?

नर्मदा स्वामी: हाँ: हरे कृष्ण आंदोलन। श्रील प्रभुपाद ने हमें नाम-जप का सबसे अद्भुत तरीका दिया है जिससे हम कलियुग के भवसागर से निकल सकते हैं। यह भयंकर कलियुग दोषों से भरा है, किन्तु एक उद्धार का उपाय है कि कृष्ण नाम के जप द्वारा हर कोई इस जीवन में प्रसन्न रह सकता है और आध्यात्मिक जगत जाने की तैयारी कर सकता है। यह व्यवहारिक है। यह कारगर है। पूरे जगत में लोग हरे कृष्ण का जप करके सुखी हो रहे हैं। किन्तु हमें सावधान रहना चाहिए कि हम कलियुग को अपने आंदोलन से दूर रखें। हम किसी भी प्रकार की धोखाधड़ी या ढोंग को बढ़ावा नहीं दे सकते जो इसे नष्ट कर दे। शुद्धता कायम रखनी चाहिए। हमें अपने सिद्धांतों में दृढ़ रहना चाहिए।

इसके प्रचार के साथ हमें पूरे संसार को संस्कृति दिखानी चाहिए। यदि हम फिर से गाँव के सादे जीवन को बना पाएँ; जहाँ कृष्ण केन्द्र में हो, तो यह हमारे आंदोलन को बढ़ाने में एक बहुत बड़ा कदम होगा। जो हम बोल रहे हैं वह हमें लोगों को करके दिखाना पड़ेगा। श्रील प्रभुपाद कृषि समुदाय चाहते थे। और हम अपने भक्तों को बेहतर जीवनशैली देना चाहते हैं। वे क्यों चूहों की तरह

रहें ? बच्चों के रहने का तो प्रश्न ही नहीं हैं। जिस प्रकार उनका लालन-पालन अब हो रहा है, उससे मैं बहुत ही असंतुष्ट हूँ। हमें यह पुरातन संस्कृति पुनर्जीवित करनी चाहिए; तब संसार के लिए आशा होगी। मुझे आगे कुछ भी शुभ दिखाई नहीं देता। बिना कृष्णभावनामृत के भविष्य अंधकारमय है।

भक्तिमय पालन-पोषण

आर.रंगनाथन तमिलनाडु में अपने बचपन के बारे में बताते हैं। अन्य चीज़ों में वे शिक्षा, त्योहार, उनके गाँव में विष्णु मन्दिर के आसपास ब्राह्मण-घरों में नित्य-कर्म के बारे में बताते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: आप श्रीमान् आर.रंगनाथन हैं। आर. का क्या अर्थ है ?

आर.रंगनाथन्: आर. का अर्थ है रामानुजम। यह मेरे पिता जी का नाम है। तमिल लोगों के नाम के पीछे उपनाम नहीं होते किन्तु हम अपने नाम के आगे पिता का नाम रखते हैं। और श्री वैष्णव सम्प्रदाय में हम यह पसंद करते हैं कि बालक का नाम भगवान् के नाम पर दिया जाए जैसे, रंगनाथन्, श्रीनिवासन्, गोपाल कृष्णन्, रामानुजम् इत्यादि।

पहले एक आदरणीय ब्राह्मण अपनी कई पीढ़ियों तक की पूरी वंश परम्परा को याद रख सकता था — अपने दादा, परदादा और परदादा के पिता इत्यादि पूरा वंश वृक्ष।

भक्तिविकास स्वामी: तो इस प्रकार वे परिवार पर गर्व करते थे।

आर.रंगनाथन्: हाँ। और परिवार का अर्थ केवल चार पाँच सदस्य नहीं होते थे, जो किराए के मकान में रह रहे हों। इसका अर्थ पूरा विस्तृत परिवार होता था : चाची, चाचा और चचेरे भाई सभी एक ही छत के नीचे, घर के बड़े सदस्य के अधीन रहते थे। हमारे घर बड़े होते थे, क्योंकि भाइयों, चाचियों, चचेरे भाइयों इत्यादि की चार पीढ़ियाँ एक साथ एक ही इमारत में रहते थे। हर परिवार के पास कम से कम पाँच गायें और भोजन उगाने के लिए बड़ी जमीन होती थी। हर घर में बड़ा कुआँ, सब्जियाँ तथा फल उगाने के लिए बागीचा और गायों के भूसे के बड़े-बड़े ढेर को संभाल कर रखने के लिए भुसोरा होता था।

हम उसी जगह पर रहते थे, जहाँ हमारे पूर्वज सौ सालों से भी अधिक रहे थे। हमारे पूर्वज आदरणीय, सैद्धान्तिक और भगवान् को समर्पित आनन्दमय

जीवन व्यतीत करते थे। वे हमसे भी यही चाहते थे कि हम भी वैष्णव परिवार की परम्परा को बनाए रखें।

भक्तिविकास स्वामी: आपका जन्म कब हुआ?

आर.रंगनाथन्: मेरा जन्म तमिलनाडु के जिले थन्जवौर में मेन्नारगुड़ी कस्बे के पास सेरांगुलम गाँव में सन् 1946 में हुआ था। मेरे परिवार में हम छः भाई और दो बहनें हैं। बहनें सबसे छोटी हैं।

भक्तिविकास स्वामी: आप का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ है?

आर.रंगनाथन्: हाँ। सेरांगुलम गाँव में एक हज़ार साल से भी पुराना भगवान् श्रीनिवासन् का मन्दिर है। दक्षिण भारत में भगवान् की सेवा में लगे ब्राह्मण मन्दिर के इर्द-गिर्द, *अग्रहारम्* क्षेत्र में रहते हैं, जो ब्राह्मणों के रहने का स्थान है। मन्दिर के चारों और ऊँची वर्गाकार चारदीवारी होती है और चारों ओर ही *अग्रहारम्* होते हैं। हमारे गाँव में *अग्रहारम्* में 200 वैष्णव परिवार, भव्य घर और बड़े-बड़े परिवार हैं। इस प्रकार *अग्रहारम्* में कम से कम 2000 लोग रह रहे होंगे और अन्य जातियों के साथ गाँव में कुल मिलाकर 5000 लोग होंगे।

घर के पिछवाड़े में पश्चिमी गली में कावेरी नदी की धारा, पामणी बहती है। मन्दिर के दीवार के दक्षिण की ओर पानी का एक बहुत बड़ा टैंक है। एक छोटी धारा के द्वारा इसे जोड़कर पामणी से पानी भरा जाता है। *अग्रहारम्* से दूर भगवान् शिव का मन्दिर है, जिसका मुख श्रीनिवासन् मन्दिर की ओर है।

भक्ति विकास स्वामी: हाँ, भगवान् शिव और निःसन्देह मुरुगन की पूजा तमिलनाडु में बहुत ज्यादा है।[५६] किन्तु श्री वैष्णव देवी-देवताओं की पूजा से अलग रहते हैं और केवल भगवान् नारायण और उनकी अंतरंगा पत्नी श्री (लक्ष्मी) की पूजा करते हैं।

आर.रंगनाथन्: हमारे गाँव में एक ही परिवार स्मार्त है, जो शिव मन्दिर में *अर्चकर* (मन्दिर के पुरोहित) है। दक्षिण भारत में *अर्चकर* शब्द, उत्तरी भारत

---

५६ मुरुगन - शिव जी के पुत्र, एक शक्तिशाली देवता का तमिल नाम।

के पुजारी के समान है) है। यह मन्दिर अधिक प्रसिद्ध नहीं है। हमारे गाँव के वैष्णव भगवान् श्रीनिवासन् और तीन मील दूर मन्नारगुड़ी में राजगोपालन् मन्दिर के अतिरिक्त किसी अन्य मन्दिर में नहीं जाते। श्री वैष्णव इस सिद्धान्त के बहुत ही पक्के हैं।

भक्तिविकास स्वामी: क्या कोई इन ढोंगी अवतारों या योगियों को मानता है?

आर.रंगनाथन्: हमने कभी इन ढोंगियों के बारे में सुना ही नहीं। हम केवल पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु और उनके प्रामाणिक भक्तों को जानते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: अपने बचपन के बारे में बताएँ। आपके पिता जी क्या करते थे?

आर.रंगनाथन्: वे मुख्यत: जमीन जायदाद की देखरेख करते थे। सालाना आमदनी जमीन से आती थी, जैसा कि उस समय के अधिकतर ब्राह्मण करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या *अग्रहारम्* क्षेत्र के ब्राह्मणों की मन्दिर में कोई सेवाएँ थीं?

आर.रंगनाथन्: हाँ, किन्तु अधिकतर ब्राह्मणों की प्रतिदिन निश्चित सेवा नहीं होती थी। केवल कुछ ही परिवार जो *अर्चक* थे, नित्य सेवा करते थे। अन्य की केवल उत्सवों पर ही सेवा लगती थी, अन्यथा वे घर पर शालीग्राम की सेवा करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे रोज़ श्रीनिवासन् मन्दिर में नहीं आते थे?

आर.रंगनाथन्: नि:सन्देह। कोई भी भगवान् के दर्शन किए बिना रोज के कार्यों के बारे में सोच भी नहीं सकता था। हर कोई उनके दर्शन के लिए लालायित रहता था, जो उनके जीवन का केन्द्र थे। उनकी प्रतिदिन सुबह की आम दिनचर्या थी सुबह साढ़े चार या पाँच बजे उठना, खेतों में जाकर शौचादि से निवृत्त होना और फिर स्नान करना। वे नदी पर भी नहाने जाते थे। घर का कुआँ केवल घर के कामों, खाना बनाने, पूजा करने, बागीचे में पानी देने के लिए उपयोग किया जाता था और सामुदायिक कुआँ पानी पीने तथा शालीग्राम का अभिषेक करने में उपयोग किया जाता था।

नहाने के बाद वे तिलक लगाते, संध्या-वन्दन करते और 108 बार गायत्री मंत्र का जप करते। संध्या-वन्दन यदि पूरी तरह से किया जाए तो लगभग बीस मिनट लगते हैं। कई ब्राह्मण यह संध्या-वन्दन सुबह नदी के किनारे सूर्योदय के समय करते थे। अन्य घर आकर करते थे। वे नदी पर जाते और वहाँ से आकर सामवेद के मंत्रों का सुन्दरता और मधुरता से उच्चारण करते। लगभग 6.30 प्रातः मन्दिर का घण्टा जोर से बजता जो पूरे गाँव में सुनाई देता और हर कोई — पुरुष, स्त्रियाँ तथा बच्चे — जल्दी से मन्दिर की ओर जाते। घण्टा बजने का अर्थ था, भोग लग चुका है। पर्दा खुलने के बाद दर्शन का समय होता। वृद्ध प्रथम पंक्ति में होते, जवान और बच्चे उनके पीछे और स्त्रियाँ सबसे अंत में। सभी भक्त लगभग पन्द्रह मिनट तक मिलकर *दिव्य प्रबन्धम्* से स्तुति करते।[५७]

भक्तिविकास स्वामीः स्त्रियाँ पुरुषों के साथ गातीं?

आर.रंगनाथन्ः स्त्रियाँ ऊँचा नहीं गाती थीं, धीमी आवाज में।

भक्तिविकास स्वामीः आपने यह भी बताया कि स्त्रियाँ सबसे पीछे खड़ी होती थीं। क्या उन्हें भगवान् के निकट आने का अवसर मिलता था?

आर.रंगनाथन्ः हाँ। स्तुति के बाद, लोग चले जाते और हर कोई नज़दीक आकर भगवान् के दर्शन करता। उनके हाथ पर चरणामृत (वह जल जिससे भगवान् को नहलाया जाता है) की तीन बूँदे दी जातीं और वे इसे बहुत ही सम्मान और प्रसन्नता से ग्रहण करते। उनके पास भगवान् के चरणों का प्रतिनिधित्व करने वाले मुकुट होते जिन्हें आने वाले भक्तों के सिर पर रखा जाता और भगवान् का प्रसाद हाथों में दिया जाता। इस प्रकार उस समय स्त्रियाँ भगवान् के निकट से दर्शन कर लेती हैं।

तब हर कोई घर चला जाता है। पुरुष शालीग्राम शिला के लिए नित्य पूजा इत्यादि करते।

भक्तिविकास स्वामीः क्या सभी पुरुष घर में पूजा करते थे, या उनमें से कुछ?

---

५७ दिव्य प्रबंधम् - संस्कृत शैली की तमिल भाषा में चार हजार श्लोकों का संग्रह जो तेंगलई (श्री वैष्णव संप्रदाय की दो शाखाओं में से एक) पूजा में आवश्यक माना जाता है।

आर.रंगनाथन्: हमारे घर में मुख्यत: मेरे पिता जी करते थे और हम छोटे बालक उन्हें हर दिन देखते थे। इस प्रकार हम धीरे-धीरे सीख गए कि क्या करना है। हम भी भगवान् के लिए फूल इकट्ठा करके और पूजा की सामग्री एकत्रित करने में सहायता करते थे। हमें स्थानीय पुरोहित ने पूजा के समय उच्चारण किए जाने वाले मंत्र सिखाए थे और हम इनका अभ्यास अपने पिता जी के साथ उच्चारण करके करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: स्त्रियों के बारे में बताएँ। वे सुबह क्या करती थीं? क्या वे भी सुबह सुबह नहाती थीं?

आर.रंगनाथन्: हाँ। हर किसी को सुबह सबसे पहले नहाना होता था। इसके बाद ही वे रसोई में जा सकती थीं या पूजा कर सकती थीं। स्वच्छता और शुद्धता जरूरी थी। वे इस मामले में बहुत ही सख्त थे। स्त्रियों को मासिक धर्म के दौरान खाना बनाने की आज्ञा नहीं थी। इस समय के दौरान वे हर किसी से दूर, एक अलग जगह पर रहती थीं। और जब स्त्रियाँ खाना बना रही होती थीं, तो छोटे बच्चों की देखभाल बड़े बच्चे करते थे। क्योंकि बच्चे भी गन्दे रहते हैं, वे रसोई में न तो घुस सकते थे और न ही खाना बनाते समय स्त्रियाँ उन्हें छू सकती थीं।

सबसे पहले स्त्रियाँ ताज़ा दूध उबालकर भगवान् को भोग लगाती थीं। भोग लगने के बाद वे दूध को मेरे पिता जी के अलावा सबको दे देती थीं, क्योंकि मेरे पिता जी सुबह की पूजा को विराम दिए बिना पानी भी नहीं पीते थे।

इसके बाद स्त्रियाँ अन्दर से पूरा घर और बरामदा गाय के गोबर से लीपकर साफ करतीं। वे घर के प्रवेशद्वार में चावल के आटे को छिड़ककर कई सुन्दर और जटिल रंगोलियाँ बनाकर सजातीं। अधिकतर वे सुडौल आकृतियाँ बनातीं, जिनका कोई विशेष अर्थ नहीं होता था, किन्तु कुछ मछली या सूर्य की तरह प्रतीत होते थे। देखने में ये सुन्दर प्रतीत होते थे और हर घर यह कोशिश करता कि उसके द्वारा बनाई आकृति सबसे अधिक आकर्षक हो। मार्गलि के महीने में, रंगोली में छोटे छोटे उपलों के बीच बिखरे कद्दू के फूल इसकी शोभा और बड़ा देते। हर घर के बाहर कम से कम तीन दर्जन फूल इस प्रकार सजाए

होते हैं। मुझे इनके महत्व का तो मालूम नहीं किन्तु ये बहुत ही अच्छे दिखाई देते हैं। लड़कियाँ को बहुत ही छोटी उम्र से ही इन आकृतियों को निपुणता से बनाना सिखाया जाता।

मन्दिर में समय पर जाने के लिए वे जल्दी ही यह सब कर लेती थीं। घर वापिस आने के बाद स्त्रियाँ खाना बनाने लगतीं। घर के दूसरे हिस्से में पुरुष पूजा कर रहे होते थे और पूजा समाप्त होने से थोड़ा पहले स्त्रियाँ भगवान् को भोग लगवाने के लिए पकवान तैयार कर लेतीं। पूजा में आधा या एक घण्टा लगता और खाना बनाने में दो घण्टे। पूजा की तैयारी और फूल इकट्ठे करने इत्यादि का समय मिलाकर पूजा और खाना बनाने का काम लगभग एक ही समय पर समाप्त होता है।

भोजन पीतल के बर्तन में बनाया जाता है। ये सब बड़े बर्तन भगवान् के समक्ष लाए जाते थे और हर चीज़ भगवान् को भोग लगाई जाती थी। उन दिनों एक असली ब्राह्मण और वैष्णव परिवार कुछ भी खाने से पहले हर चीज़ भगवान् को अर्पित करते थे। बाहर बना खाना न कोई खाता था और न ही भगवान् को अर्पित करता था। उनमें से कई तो आज भी इस विषय में बहुत सख्त हैं।

असली कट्टर वैष्णव केवल मन्दिर या अन्य वैष्णव ब्राह्मण के यहाँ ही खाते थे। कुछ केवल रिश्तेदारों के यहाँ ही खाते थे। मैंने कुछ जगहों पर ब्राह्मणों के बारे में सुना है जो इस बात पर इतने सचेत रहते थे कि अपने घर के अलावा बाहर पानी भी नहीं पीते थे तथा अपने बड़े बच्चों के हाथ का बना ही खाते थे, क्योंकि वे अन्यों को इतना दृढ़ नहीं मानते थे।

जैसे ही भोजन भोग लगवाने के लिए आता, रसोई साफ कर दी जाती। और स्त्रियाँ किसी भी प्रकार के प्रसाद को साफ कर देतीं जो तीन या चार घण्टे से अधिक रखा होता। वे चावल को छोड़कर अन्य किसी चीज़ को नहीं रखती थीं। चावलों को पूरी रात पानी में भिगोकर रखा जाता था। किन्तु वे कुछ भी व्यर्थ नहीं करती थीं। बिल्कुल नहीं। स्त्रियाँ आमतौर पर बिल्कुल सही मात्रा में बनाती थीं और कुछ भी अधिक मात्रा का प्रसाद दोपहर में बच्चों को दे दिया जाता था।

भोग में पन्द्रह मिनट लगते थे। तब प्रसाद को पकाने वाले बर्तनों से निकाल लिया जाता था और सुबह 9.30 से 10.00 बजे के बीच हमें भरपूर नाश्ता मिलता था।

इकट्ठे भोजन करना जीवन का महत्वपूर्ण अंग था। यह विदेशों की तरह नहीं था, जहाँ कोई घर में आता है और फ्रिज से उठाकर खा लेता है। उदाहरण के तौर पर कोई भी महिला तब तक नहीं खाती थी जब तक उसके पति ने नहीं खाया। खाना पारिवारिक पर्व होता था। आज भी कई संयुक्त परिवार हैं जहाँ निश्चित समय पर पचास या साठ सदस्य इकट्ठे बैठकर भोजन करते हैं।

खाना हम सबको एक दूसरे के निकट ले आता था। यह हमारे शरीर का ही नहीं, अपितु पूरे अस्तित्व का पोषण करता है। उन दिनों लोग अच्छा और भरपूर भोजन करते थे। वे हृष्ट-पुष्ट और साफ मन के होते थे। सारा भोजन प्रेम और सावधानी से बनाया, पकाया और परोसा जाता था। यह कितना अच्छा था — केवल स्वाद ही नहीं अपितु इसकी हर चीज़। हर चीज़ घर की बनी होती। आज भी कई पारम्परिक परिवार जितना हो सके, हर चीज़ घर पर ही बनाते हैं। वे धान से अपने चावल स्वयं निकालते हैं, अपने अचार, पापड़ इत्यादि स्वयं बनाते हैं।

आजकल आप किरयाना की दुकान पर जाकर पैकेट में बना बनाया खरीद सकते हैं और बहुत ही आसानी से परोस सकते हैं। किन्तु उन दिनों हर रोज खाना बनाना एक सम्पूर्ण कला थी, जिसमें कई तकनीकों के साथ बहुत सारा श्रम तथा प्रेम का सम्मिश्रण होता था। इस प्रकार यह निश्चित ही बहुत ही आनन्द देने वाला था। स्त्रियाँ इसे अच्छा बनाने के लिए कष्ट उठाती थीं क्योंकि यह भगवान् को अर्पित करने के लिए होता था। तब हर कोई इस सुस्वादिष्ट प्रसाद को ग्रहण करके संतुष्ट होता और प्रसन्नतापूर्वक भरपूर खाता। यही स्त्रियों का आनन्द होता, खाना बनाना और सभी को प्रसाद लेकर प्रसन्न देखना।

घर की प्रधान स्त्री हर किसी को प्रसाद परोसने का प्रबन्ध करतीं, यह सुनिश्चित करती कि हर किसी ने पर्याप्त प्रसाद लिया है और संतुष्ट है। केवल विशेष अवसरों पर — जैसे, श्राद्ध, जब हमने बहुत सारे अतिथियों को बुलाया

हो — स्त्रियों को परोसने की आज्ञा नहीं थी। यहाँ तक कि आम दिनों में भी केवल उन्हीं स्त्रियों को जो शुद्ध होतीं और जिन्होंने दीक्षा ली होती, को रसोई के अन्दर काम करने या बर्तनों को छूने की आज्ञा होती।

भक्तिविकास स्वामी: इसका अर्थ है स्त्रियों की भी दीक्षा होती थी, किन्तु शायद गायत्री मंत्र की नहीं।

आर.रंगनाथन्: विवाह के तुरन्त बाद स्त्री कुल-आचार्य से दीक्षा ग्रहण करती थी। हवन के साथ एक उत्सव होता और भगवान् विष्णु के चिह्न शंख, गदा, पद्म और चक्र को पुरुषों की तरह गर्म ठप्पे से नवविवाहिता की भुजाओं पर अंकित किया जाता था। उन्हें पूरी तरह से भक्त के रूप में स्वीकार किया जाता था किन्तु परम्परा यह थी कि गायत्री मंत्र का उच्चारण केवल ब्राह्मण पुरुष ही करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: रोज़ खाने में क्या होता था?

आर.रंगनाथन्: किसी भी वस्तु को परोसने से पहले पानी दिया जाता था। फिर थोड़ा सा फल और शक्कर और दूध की कुछ बूँदे ताज़े केले के पत्ते पर डाली जाती थीं, आज की भाँति प्लास्टिक या चीन के कूड़े का उपयोग नहीं किया जाता था। फिर सब्जी से बने पकवान परोसे जाते थे, आमतौर पर एक एक सूखी और एक तरल सब्जी, और दही में खीरा दिया जाता था। इसके बाद वे चावल परोसते — मुख्य व्यंजन, हर किसी की थाली में एक बड़ा सा ढेर — और वे इसके ऊपर अच्छी तरह घी डालते। इसके बाद हम कई स्तुतियाँ करते और अपने हाथ से थाली के चारों ओर पानी छिड़कते। हम अपने हाथ से थोड़ा सा जल भी पीते थे। फिर साम्भर परोसा जाता और हम प्रसाद ग्रहण करना शुरू करते।

जो कुछ भी वे परोसते वह शुद्ध वैष्णव-रीति भोजन होता था। लोगों ने प्याज और लहसुन के बारे में सुना भी नहीं था। पूरे *अग्रहारम्* में किसी को प्याज की गंध भी मालूम नहीं थी।

भक्तिविकास स्वामी: चाय या कॉफी?

आर.रंगनाथन्: किसी ने इसके बारे में नहीं सुना था। हम दूध पीते थे। हमें किसी अन्य वस्तु की आवश्यकता ही नहीं थी। घर में पर्याप्त मात्रा में दूध हमेशा होता था। हमें इसकी कमी का भी नहीं पता था। कई बार वे दूध में कुछ अनाज का चूरा (धान्यक-कन्जी) मिलाते। कॉफी केवल 35 साल पहले ही शुरू हुई जब मैं तेरह वर्ष का था। सत्रह वर्ष की आयु तक तो मैंने कॉफी का स्वाद भी नहीं लिया था।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु अब कॉफी दक्षिण भारत में हर जगह है। लगभग हर कोई यहाँ तक कि श्रीवैष्णव पुरोहित भी इसे पीते हैं।

आर.रंगनाथन्: हाँ।

भक्तिविकास स्वामी: क्या कुछ ऐसी सब्जियाँ भी थीं, जिनका लोग उपयोग नहीं करते थे?

आर.रंगनाथन्: वे अंग्रेजी सब्जियाँ, टमाटर, फूलगोभी या आलू नहीं खाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: केवल पारम्परिक सब्जियाँ।

आर.रंगनाथन्: वे इसके लिए बहुत सचेत थे। किन्तु केवल पारम्परिक सब्जियों में ही कई प्रकार की सब्जियाँ बन जाती थीं। एक ही सब्जी से वे तीन प्रकार की सब्जियाँ बना लेते थे और तीनों का स्वाद अलग होता था। वे एक गाढ़ी तरी वाली, एक पतली तरी और एक सूप की तरह बना लेते थे।

इसके अतिरिक्त वे केवल उन सब्जियों को लेते थे, जो उसी दिन तोड़ी गई हों। हर गृहस्थ का एक बागीचा होता था, जहाँ से हर सुबह सब्जियाँ तोड़ी जातीं और पकाकर भोग लगाया जाता था। आज भी श्री रंगम में बाजार में बिकने वाली सब्जियाँ उसी दिन ताज़ी तोड़ी होती हैं।

भक्तिविकास स्वामी: सुबह नाश्ते के बाद लोग क्या करते थे?

आर.रंगनाथन्: शायद काम या थोड़ी देर आराम करते थे। और दोपहर को वे *मध्याहन्निकम्* करते।

भक्तिविकास स्वामी: मतलब ?

आर.रंगनाथन्: संध्या-वन्दन की भाँति, किन्तु इसे दोपहर (*मध्यानम्*) में किया जाता है। यह लगभग 11.00 या 11.30 के आसपास समाप्त हो जाता था। पक्के तौर पर कहूँ तो इसे बिल्कुल उस समय करना चाहिए जब सूर्य परकाष्ठा पर हो। फिर एक बजे कई दूध लेते थे, कई बार कुछ लोग साथ में थोड़ा वड़ई लेते। किन्तु अधिकतर लोग शाम से पहले दोबारा नहीं खाते थे और तब भी वे हल्का भोजन लेते थे। सुबह का भोजन भारी और पूरे दिन के लिए पर्याप्त होता था।

दो बजे से साढ़े चार बजे तक हर घर में वे भागवतम् पढ़ते। या कुछ लोग स्थानीय विद्वान के घर जाते जो दो या तीन घण्टे प्रवचन देता। और मन्दिर के हाल में ही प्रचार हो जाता था। प्रतिदिन हरि-कथा होती थी।[५८] कई बार दूसरे गाँव के लोग भी सुनने आते थे, किन्तु अधिकतर स्थानीय लोग ही होते।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे दोपहर की गर्मी में आराम भी करते थे ? यह पूरे भारत में एक आदर्श है।

आर.रंगनाथन्: कोई भी दोपहर को नहीं सोता था। यह वैष्णव मर्यादा के विरुद्ध है। दिन में सोने की आज्ञा उन्हें थी, जो बीमार हैं। किन्तु हम ज्यादा बीमार नहीं होते थे। हम सब रात को फर्श पर सोते थे। आजकल वे मोटे सिराहने और कोमल (गद्दे) इत्यादि का उपयोग करते हैं, किन्तु पहले हमने कभी बड़े सिराहने तथा गद्दों का उपयोग नहीं किया। हम सोते थे और फिर सुबह उठ जाते थे। हमें सोने में कोई मुश्किल नहीं थी। रात आते-आते हम बहुत थक जाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: उष्ण कटिबंध (बहुत गर्म) क्षेत्र में रहते समय एक चीज़ जो मुझे पसंद है कि बाहर खुले वातावरण में सोना। मैं सोचता हूँ कि इतनी दूर दक्षिणी भारत में आप शायद लगभग पूरा साल बाहर सोते हैं।

आर.रंगनाथन्: हाँ। हर घर के बाहर बरामदा होता है जिसका मुँह सड़क की ओर होता है। बड़ी टाईल वाली छत होती है, जो हवादार होने के साथ-साथ बारिश से भी बचाती है। वहाँ एक प्रकार का ऊँचा मंच होता है जहाँ लोग दिन

---

५८ हरि-कथा - हरि के विषयों में चर्चा

में बैठते हैं तो रात को सोते हैं। इस प्रकार सभी चारों ऋतुओं में लोग बरामदे के नीचे सोते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: दिसम्बर में भी? क्या बाहर इतनी ठण्ड नहीं होती?

आर.रंगनाथन्: हम कम्बल ओढ़ लेते। सोलह वर्ष की आयु तक मैं कभी भी अन्दर नहीं सोया। बहुत कम अवसरों पर जब मैं बीमार था, तो अन्दर सोया।

भक्तिविकास स्वामी: बारिशों के समय क्या करते थे?

आर.रंगनाथन्: हाँ, वर्षा ऋतु में भी हम बाहर सोते थे, क्योंकि पानी टाईलों से टपक कर नहीं आ सकता था। हम अन्दर तब जाते जब बारिश के समय तेज हवा के कारण पानी की बौछारें अन्दर आ रही हों। इसके अलावा कोई भी आमतौर पर अन्दर नहीं सोता था जबकि स्त्रियाँ अक्सर अन्दर सोती थीं। कोई अलग पलंग नहीं थे: हर कोई सोने के लिए सामूहिक स्थान का उपयोग करता था। इस प्रकार हर किसी को जल्दी उठना होता था, क्योंकि बाकी सब भी जल्दी उठ जाते।

पुरुष आमतौर पर बाहर चटाई या सूती कपड़ा बिछाकर सोते और सर्दियों में हल्के क बल का उपयोग करते। उठने के बाद सोने वाली जगह को बुहारकर पोछा लगाया जाता था, क्योंकि उस स्थान को अशुद्ध माना जाता था। न ही कोई दिन में बिस्तर को छूता था। यह सब एक कोने में रख दिए जाते थे। जागने के समय वे इन सबको लपेटकर ऊँचे स्थान (अटारी) पर रख देते थे। सप्ताह में एक बार वे कम्बलों को साफ करते थे। कुछ घरों में वे कम्बलों को रोज़ साफ करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: आप अपने स्कूल जाने के बारे में बता रहे थे। कृपया मुझे इसके बारे में और बताएँ।

आर.रंगनाथन्: स्थानीय स्कूल केवल प्राथमिक शिक्षा तक था। यह स्कूल सुबह 10.30 बजे शुरू होता था। इसलिए छोटे बच्चे 10.00 बजे से पहले माता-पिता के साथ खाना खाते और फिर स्कूल के लिए निकल पड़ते। उच्च शिक्षा स्कूल जाने वाले बड़े बच्चों को चार मील चल कर जाना पड़ता था। वे 4.30 बजे या

5.00 बजे के आसपास घर वापिस आते थे। स्कूल से लौटने के बाद बच्चे नहाते और धोती तथा चद्दर पहन लेते।

भक्तिविकास स्वामी: आप स्कूल में क्या पहनते थे?

आर.रंगनाथन्: निक्कर और ढीली शर्ट। यह वर्दी थी। स्कूल से घर लौटने पर हमारे माता-पिता इस बात पर जोर देते थे कि हम नहाएँ, कपड़े बदलकर तिलक लगाएँ और संध्या-वन्दन करके गायत्री करें। शाम को संध्या-वन्दन के बाद हम *विष्णु-सहस्त्र-नाम* का उच्चारण करते जिसमें लगभग बीस या पच्चीस मिनट लगते हैं। तभी हम प्रसाद ले सकते थे।

भक्तिविकास स्वामी: स्कूल में तिलक?

आर.रंगनाथन्: हाँ, सुबह तिलक लगाना आवश्यक था। आज भी आप शायद ही मेरे पिता जी को बिना तिलक के देख पायेंगे।

भक्तिविकास स्वामी: श्री वैष्णव तिलक बहुत ही अच्छा है; मध्य में लाल चिह्न के साथ मोटी सफेद रेखाएँ। यह दृढ़ता से विष्णु निष्ठा की घोषणा करता है।

आर.रंगनाथन्: मेरे पिता जी कहा करते थे कि बिना तिलक के एक व्यक्ति *ब्रह्म-हत्ति* की तरह लगता है।

भक्तिविकास स्वामी: ब्राह्मण की हत्या करने वाला।

आर.रंगनाथन्: हाँ। यदि हमारे तिलक नहीं लगा होता था तो वे कहते, ''यह क्या है? तुम्हारा मस्तक खाली है?'' कई बार हमारे बड़े इसके लिए हमें मारते भी थे। हमारा यह तिलक कृष्ण का प्रतिनिधित्व करता है।

भक्तिविकास स्वामी: आप बता रहे थे कि बड़े बच्चों को स्कूल के लिए दूर जाना पड़ता था। वे खाना कब खाते थे?

आर.रंगनाथन्: जैसा कि मैंने पहले बताया, सुबह वे अन्य परिवार के सदस्यों के साथ लगभग 9.30 बजे लेते थे। फिर वे अपने साथ स्कूल में दही-चावल ले जाते थे। यह पिछले दिन बने और पानी में भिगो कर रखे चावलों से बना होता

था। पानी को चावलों से फैंक दिया जाता था, और फिर दही तथा थोड़ा सा नमक मिला दिया जाता था। लड़के यह स्कूल में किसी अचार के साथ ले जाते थे। और यदि घर में नाश्ता सुबह देरी से होता, तो वे यही व्यंजन नाश्ते के लिए भी ले लेते। शाम को लौटने के बाद वे एक कप दूध लेते थे और फिर रात को भोजन लेते थे। रात को भोजन हल्का होता था, भारी नहीं होता था। स्त्रियाँ साम्बर तथा कई प्रकार की सब्जियाँ बनाती थीं और भगवान् को भोग लगाती थीं।

भक्तिविकास स्वामी: आप बता रहे थे कि वे उच्च शिक्षा स्कूल में रामायण पढ़ाया करते थे।

आर.रंगनाथन्: हाँ। यह तमिल कक्षा में वैष्णव ब्राह्मणों—असली ब्राह्मणों, असली विद्वानों द्वारा पढ़ाई जाती थी। अधिकतर वे महाभारत और रामायण तमिल अनुवाद में एक एक दृश्य पढ़ाते थे। और वे इसे एक साहित्यिक विषय की तरह नहीं पढ़ाते थे अपितु असली भावनाओं के साथ पढ़ाते थे। अध्यापक वर्णन में खो जाते थे, जैसे कि वे जंगल में सीता-राम के साथ रह रहे हों। वे तमिल विद्यार्थियों को निमग्न कर देते थे। यदि आप नहीं जानते तो बताना मुश्किल है, किन्तु भाषा की जटिलताओं में हर प्रकार के हाव-भाव तथा काव्य वृतान्त हैं।

भक्तिविकास स्वामी: मुझे बंगाली जानने से कुछ अंदाजा है।

आर.रंगनाथन्: यही एक कक्षा थी, जिसे हम सबसे ज्यादा पसंद करते थे। हम इसका आनन्द लेते और प्रतीक्षा करते थे। वे बताते कि किस प्रकार वाल्मीकि जी ने अपनी रामायण में कथा का वर्णन किया है और फिर वे तुलना करते कि किस प्रकार कम्ब की रामायण उसी तरह है।[५९] हर स्तर पर वे पूर्ववर्ती आचार्यों की टीका के अनुसार श्लोक की व्याख्या करते।

और एक संस्कृत कक्षा भी होती थी, जहाँ हम कई श्लोक सीखते। वे हमें श्लोकों का लय से उच्चारण करना सिखाया करते थे। दुर्भाग्य से अब संस्कृत नहीं पढ़ाई जाती। राजनीतिक स्वार्थों के प्रभाव के चलते, बहुत ही अमूल्य ज्ञान व्यवहारत: मानव समाज से लुप्त हो चुका है।

५९ वाल्मीकि - संस्कृत में मूल रामायण के संकलन कर्ता। कम्ब - रामायण के तमिल संस्करण के लेखक।

भक्तिविकास स्वामी: आपने कहा था कि स्कूल के बाद आपके यहाँ गोष्ठि सभा होती थी।

आर.रंगनाथन्: हाँ। वे आसपास के गाँव में स्कूलों के सर्वोत्तम विद्यार्थियों को बुलाते थे और सभी स्थानीय लोग भी इसमें आते थे। वे अलग-अलग विषयों, विशेषकर रामायण, महाभारत तथा अल्वारों के इतिहास पर चर्चा करते थे।[६०] ''कौन सा चरित्र सर्वोच्च है राम या सीता?'' या ''आपको रामायण पसंद है? आप क्यों पसंद करते हैं?'' इत्यादि विषय होते थे। हर कोई अपने विचार रखता और श्रोताओं तथा जजों को प्रभावित करने का प्रयास करता। हर बहस करने वाला, विषय की कई ढंगों से व्याख्या करता और अपने तर्क की प्रधानता स्थापित करने का प्रयास करता। उदाहरणत: वे वाद करते कि एक तरह से रावण अच्छा व्यक्ति था।

भक्तिविकास स्वामी: ऐसा प्रतीत होता है कि वे भक्ति की ओर उन्मुख थे। क्या कभी शंकराचार्य के अद्वैत दर्शन भी प्रस्तुत किए जाते थे?

आर.रंगनाथन्: नहीं, यह केवल वैष्णव होते थे। केवल वैष्णव शास्त्रों के विषय ही लिए जाते थे। धीरे-धीरे यह क्षीण होने लगा और अन्य विषय, यहाँ तक कि जिनका कोई मत नहीं था वे भी शामिल होने लगे। वे लोगों को आकर्षित करने के लिए ऐसे विषय चुनने लगे, किन्तु उन्होंने गोष्ठियों की वास्तविक सुन्दरता खो दी।

भक्तिविकास स्वामी: स्कूल में और क्या सिखाया जाता था?

आर.रंगनाथन्: पारम्परिक विषय — तमिल, संस्कृत और शास्त्र कथाएँ इत्यादि। प्राथमिक स्कूल में हमें *दिव्य प्रबन्धम* तथा *विष्णु-सहस्त्र-नाम* का कुछ अंश पढ़ाया जाता था। उच्च शिक्षा स्कूल में आधुनिक विज्ञान और अंग्रेजी भी होती थी।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे डार्विन की क्रमिक-विकास का सिद्धान्त भी पढ़ाते थे?

---

६० अलवार - श्री वैष्णव सम्प्रदाय के प्राचीन संत जो उस सम्प्रदाय के प्रमुख आचार्य श्रीपाद् रामानुजाचार्य से पहले आए।

आर.रंगनाथन्: आमतौर पर वे मूल चीज़ें पढ़ाते थे जैसे ''H_2O का अर्थ है पानी,'' और इसमें हाईड्रोजन और आक्सीजन होती है। क्रमिक-विकास का सिद्धान्त भी पढ़ाया जाता था, किन्तु विस्तार से नहीं।

भक्तिविकास स्वामी: हम पशुओं से आए हैं, यह विचार पूरी तरह से वैष्णव मत के विरुद्ध है।

आर.रंगनाथन्: निश्चित ही — यह साधारण समझ के भी विपरीत है। अंग्रेजों ने धीरे-धीरे पश्चिमी मत और विचारों को डालने के लिए आधुनिक शैक्षणिक ढाँचा बनाया था। इस प्रकार हर चीज़ का स्तर गिरने लगा और भारतीय समाज की वास्तविक शुद्धता खो गई। आजकल स्कूलों में रामायण नहीं पढ़ाई जाती। पहले वह व्यक्ति शिक्षित माना जाता था जो रामायण और महाभारत में निपुण है, किन्तु अब इन्हें स्कूल में पढ़ाने पर रोक लगा दी है। अपितु हमें पढ़ाया जाता है कि हमारे वंशज बन्दर थे।

भक्तिविकास स्वामी: अध्यापकों और विद्यार्थियों में सम्बन्ध कैसा होता था?

आर.रंगनाथन्: बच्चों पर अध्यापकों का पूरा नियंत्रण था और यदि आवश्यकता हो तो वे विद्यार्थी को दण्ड भी दे सकते थे। विद्यार्थी अध्यापक का बहुत ज्यादा सम्मान करते थे और थोड़ा डर भी था।

भक्तिविकास स्वामी: अध्यापकों का बहुत सम्मान होता था, नहीं? कोई भी यह आशा नहीं करता था कि एक अध्यापक कुछ गलत कहे या करे।

आर.रंगनाथन्: हाँ। अध्यापकों का बहुत सम्मान और विश्वास किया जाता था। माता-पिता कभी अध्यापक और बच्चों के बीच के व्यवहार में हस्तक्षेप नहीं करते थे। अध्यापक को सदैव सही माना जाता था। अध्यापक माता-पिता को बुलाते और परामर्श देते थे कि कैसे बच्चों को सही करके व्यवहार करना सिखाएँ। यदि आवश्यक होता तो वे इस बात पर जोर देते कि घर पर बच्चे के जीवन में बदलाव लाया जाए।

अध्यापक विद्यार्थियों में रुचि लेते थे और उन्हें सुधारने का प्रयास करते थे। उनका जीवन बिना किसी छुपे उद्देश्य के नि:स्वार्थ, दयामय और अनुशासित होता था।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे अधिकतर ब्राह्मण कुल से होते थे?

आर.रंगनाथन्: 99 प्रतिशत ब्राह्मण थे।

भक्तिविकास स्वामी: अध्यापक का गुरु की तरह सम्मान होता था।

आर.रंगनाथन्: निश्चित ही। बच्चे उनसे डरते भी थे। बच्चे होने के कारण स्वभावत: हम बहुत ही चंचल थे। किन्तु अध्यापक हमें अनुशासन में रखते थे। अनुशासन बहुत सख्त था। बच्चे इस बात से डरते थे कि अध्यापक उनके माता-पिता को शिकायत कर देंगे। यह बहुत ही शर्म की बात थी।

भक्तिविकास स्वामी: लड़कियों की शिक्षा के बारे में बताएँ?

आर.रंगनाथन्: लड़कियाँ केवल प्राथमिक शिक्षा स्कूल तक जाती थीं और पढ़ना तथा लिखना ही सीखतीं थीं। अन्य जो कुछ भी उन्हें जानना होता था, वे घर पर ही सीखतीं थीं।

भक्तिविकास स्वामी: श्री वैष्णव सम्प्रदाय में कई पर्व मनाए जाते हैं। क्या उनमें से कुछ के बारे में बताएँगे?

आर.रंगनाथन्: व्यवहारत: हर महीने ही पर्व होता था। वार्षिक *ब्रहोत्सवम्* मुख्य उत्सवों में से एक था।[६१] श्रीनिवासन् मन्दिर में यह दस दिन तक मनाया जाता था किन्तु यह सेरनगुलम और आसपास के गाँवों के लोगों का ध्यान बीस दिन पहले ही खींच लेता था। हम सब मन्दिर के अन्दर तथा बाहर की सफाई में जुट जाते, दीवारों की सफेदी करते, रथों की मर मत कर उन्हें पुन:स्थापित करते और अन्य बहुत सारे काम होते थे।

राजगोपालन् मन्दिर में *ब्रह्मोत्सवम्* 18 दिनों तक चलता था। वास्तव में अन्य मन्दिरों में *ब्रह्मोत्सवम्* दस दिन ही चलता था। मुझे लगता है कि केवल मन्नारगुड़ी के राजगोपालन् मन्दिर में ही यह 18 दिनों तक मनाया जाता था। मन्नारगुड़ी को ''दक्षिणी-वृन्दावन'' (दक्षिण भारत का वृन्दावन) के नाम से भी

६१ ब्रह्मोत्सवम् - वर्ष की सबसे महत्वपूर्ण उत्सव जो विभिन्न मंदिरों में विभिन्न तिथियों में मनाया जाता है।

जाना जाता है। मन्दिर बहुत ही विशाल है और राजगोपालन् विग्रह की सुन्दरता अद्भुत है। वे बांसुरी पकड़े हैं और एक गाय इत्यादि के साथ हैं।

हर सुबह अर्चा-विग्रह बहुत ही भव्य ढंग से पालकी पर बैठकर शोभायात्रा में जाते हैं। अलग-अलग प्रकार से सजी पालकियों का उपयोग किया जाता है। पुष्प-रथम्, सूर्य प्रभा, आदि-शेषन, गरुड़, हंस, हाथी, घोड़ा इत्यादि रथ हैं। हर रोज हम भव्य सजावट करने में मदद करते। हम सब इकट्ठे शोभायात्रा के साथ मन्दिर की गलियों में जाते। हर घर में वे रुकते और परिवार का हर सदस्य आता और अर्चा-विग्रह को भेंट अर्पित करता।

अंतिम दिन रथ-यात्रा होती। विद्यार्थियों को रथ-यात्रा में रथ खींचने के लिए प्रोत्साहित करने तथा सुविधा देने के लिए सभी स्कूल उस दिन छुट्टी घोषित कर देते। शाम को शोभायात्रा मन्दिर से जुड़ी गलियों में जाती। यह बहुत बड़ा रथ होता था। हजारों लोगों के खींचने के बावजूद इसे हिलाना मुश्किल होता था। रथ कभी भी नहीं रुकता था, केवल जब भोग लग रहा हो, तभी रथ रोका जाता था। यह पूरे दिन कई घण्टों तक चलता था। कई बार रथ दिन के अंत तक भी अपने गंतव्य पर नहीं पहुँच पाता था और उत्सव एक या दो दिन और चलता रहता। उस समय हम थकते नहीं थे, किन्तु इसके बाद हमारे शरीर दर्द करते थे। फिर उत्सव के दसवें दिन एक बहुत बड़ा आयोजन होता, जिसे *अन्नकुट्टु* कहते हैं, इस समय भगवान् मन्दिर के कुएँ के पास सुन्दर हरे-भरे बागीचे में आते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: उनके पास अपना बागीचा था?

आर.रंगनाथन्: हाँ, मन्दिर के परिसर के भीतर। वे घास पर सूती सफेद कपड़ा बिछा देते और अलग-अलग प्रकार के चावल के व्यंजन और अन्य भोग बहुत ही भव्य ढंग से रखते। इस प्रकार शाम को भगवान् आते और बहुत बड़ा भोग उन्हें लगाया जाता और फिर हर किसी में वितरित कर दिया जाता। कई हजारों लोग इसमें भाग लेते।

भक्तिविकास स्वामी: और हर कोई खुश होता।

आर.रंगनाथन्: हाँ, हर कोई खुश होता। वे इसका आनन्द लेते और हर साल इसकी प्रतीक्षा करते।

भक्तिविकास स्वामी: क्या लोग आसपास के गाँव से आते थे?

आर.रंगनाथन्: हाँ, लोग कई मील दूर आसपास के गाँव से बड़ी संख्या में आते थे।

भक्तिविकास स्वामी: रात को वे कहाँ रहते थे?

आर.रंगनाथन्: जो पड़ोसी गाँव के थे वे रात को अपने गाँव जाकर सुबह आ जाते थे। अन्य मन्दिर के हाल या लोगों के आंगन में सो जाते थे।

हर रोज़ उत्सव के दिनों में लोग बहुत ही सुबह मन्दिर आ जाते थे। सुबह के अभिषेक और शोभायात्रा के बाद, बहुत बड़े प्रसाद हाल में प्रसाद वितरित किया जाता था। वहाँ एक ही समय में कुछ हजार लोग प्रसाद ग्रहण कर सकते थे। बड़े उत्सवों के समय, दस हजार से भी अधिक लोग हर सुबह प्रसाद लेते थे। वे उच्च कोटि के दही-चावल और अन्य व्यंजन जिनका भगवान् को भोग लगा होता, वितरित करते।

प्रसाद वितरित करने से पहले स्थान को गायत्री मंत्र से शुद्ध किया जाता था और फिर बैठने के लिए कुशा की चटाइयाँ बिछाई जाती थीं। *अर्चकर* जिस जल से शालीग्राम को नहलाया गया था, वह जल लेकर आते। हर कोई इस जल को ग्रहण करता और फिर प्रसाद ग्रहण करता।

उत्सव में हर रोज़ वे प्रथम श्रेणी का नाश्ता जिसमें दही-चावल और साम्बर होते परोसते। फिर दोपहर को भरपूर प्रसाद होता। दोपहर के भोजन में तीन प्रकार की सब्जियाँ, विभिन्न प्रकार की तरी वाली सब्जियाँ, मिठाई, साम्बर, रसम (चावल के साथ लिए जाने वाला बहुत ही पतला एक तरह का सूप) और कई प्रकार के मिश्रित चावल जैसे 'इमली-चावल', 'नारियल-चावल', 'दही-चावल', 'नींबू-चावल', 'मीठे-चावल' और 'आम्र-चावल' होते।

भक्तिविकास स्वामी: आप मुझे बता रहे थे कि बच्चे मन्दिर-पर्वों में मदद किया करते थे।

आर.रंगनाथन्: हाँ, हम हलवाइयों की सब्जियाँ तथा लकड़ी लाने और काटने, उत्सव से पहले हर जगह सजाने के लिए केले के पेड़ रखने में, प्रसाद वितरित करने में, जगह साफ करने में और अन्य कई सेवाओं में मदद किया करते थे। प्रसाद परोसने के लिए हम बनाने वाले बर्तनों से छोटे परोसने वाले बर्तनों में प्रसाद डाल कर देते।

जब हर वस्तु तैयार होती, हम हर व्यंजन का थोड़ा सा हिस्सा केले के पत्ते पर डालते। बड़े तीर्थम् (शुद्ध किया जल) देते और हर कोई इसे पी लेता और फिर भगवान् का नाम लेते हुए वे प्रसाद लेना आरम्भ करते। हर कोई भरपेट प्रसाद ग्रहण करता और अपने घर लौट जाता।

इस प्रकार, एक समूह के बाद अन्य समूह को परोसा जाता और अक्सर छः या सात समूह होते। आमतौर पर सभी समूह एक साथ ही प्रसाद खत्म करते। हर गुट के बाद हम तुरन्त पत्ते हटा देते, हाल को गाय के गोबर और पानी से शुद्ध करते, और अगले 1500 या 2000 लोगों के लिए जगह को बुहारते।

हम बिना किसी भेद के हर किसी को प्रसाद परोसते किन्तु पकाने और परोसने के लिए व्यक्ति को शुद्ध और दीक्षित होना चाहिए।

भक्तिविकास स्वामी: क्या हर कोई धोती तथा कमरबंद या अन्य पारम्परिक वेशभूषा पहनता था?

आर.रंगनाथन्: निश्चित ही। हर कोई सुबह नहा धोकर, तिलक लगाकर और दक्षिण-भारतीय शैली में कमरबंद बांधकर आता था। उस समय लगभग विदेशी वेशभूषा होती ही नहीं थी। यदि कोई मन्दिर में विदेशी वेशभूषा पहन कर आने का साहस करता, तो वे उसे शायद थप्पड़ मारते और जाने को कह देते।

भक्तिविकास स्वामी: त्योहारों के दिनों में स्त्रियाँ गहने इत्यादि पहनती थीं?

आर.रंगनाथन्: हाँ। यह स्वाभाविक है कि सभी स्त्रियाँ हमेशा कुछ न कुछ गहने: बालियाँ, नथिनी, बिछुए, चूड़ियाँ इत्यादि पहनती थीं। किन्तु उत्सवों के बाद स्त्रियाँ विशेष सिल्क के कपड़े और गहने पहन कर मन्दिर आतीं।

भक्तिविकास स्वामी: केवल मन्दिर में।

आर.रंगनाथन्: अन्य स्थानों पर भी। किन्तु हर कोई मन्दिर जाने के लिए, विशेषकर दीपावली तथा पोंगल वाले दिन अच्छे कपड़े पहनता था।

भक्तिविकास स्वामी: क्या वे दर्शन के लिए रोज अच्छे कपड़े पहनते थे?

आर.रंगनाथन्: हर रोज़। वे प्रतिदिन भगवान् को दिखाने के लिए अच्छे कपड़े और गहने पहनते। वे अच्छे कपड़े केवल मन्दिर में पहनते थे, और फिर वापिस घर आकर साधारण कपड़े पहनते। रोज़मर्रा के लिए पुरुष और स्त्रियाँ साधारण सूती के कपड़े पहनते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या जो ब्राह्मण नहीं है वे भी मन्दिर आते थे?

आर.रंगनाथन्: हाँ, वे भी आते, रथ-यात्रा तथा अन्य उत्सवों में भाग लेते और प्रसाद भी ग्रहण करते। किन्तु कुछ क्षेत्रों में उनका प्रवेश वर्जित था। जो ब्राह्मण नहीं थे, उन्हें अर्चा-विग्रह कक्ष और रसोई में जाने की आज्ञा नहीं थी।

भक्तिविकास स्वामी: इसका अर्थ हुआ कि ब्राह्मणों को रथ-यात्रा के समय अ-ब्राह्मणों के छूने पर बुरा नहीं लगता था?

आर.रंगनाथन्: नहीं। इस प्रकार होने पर वे बुरा नहीं मानते थे। रथ-यात्रा प्रत्येक के लिए थी। हर किसी को रथ खींचने की आज्ञा थी।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु आमतौर पर ब्राह्मण, अ-ब्राह्मणों को छूते भी नहीं थे।

आर.रंगनाथन्: नहीं, ऐसा नहीं था।

भक्तिविकास स्वामी: इतने सख्त नहीं थे?

आर.रंगनाथन्: नहीं। किन्तु अर्चाविग्रहों को गलियों में केवल ब्राह्मण ही ले जाते थे। फिर भी दर्शन सभी कर सकते थे, पर वे अर्चाविग्रह के बहुत निकट नहीं जा सकते थे। आजकल बहुत ही बदलाव आ गया है। अब वे अ-ब्राह्मणों को भी शोभायात्रा में अर्चाविग्रह ले जाने की आज्ञा दे देते हैं।

रामानुज, नामालवार और अन्य महान् आचार्यों के आविर्भाव दिवस पर भी त्योहार मनाए जाते थे। इन दिनों वे प्रसाद में ऐसे व्यंजन बनाते जो उन आचार्यों को पसंद थे और फिर सभी को बाँट देते थे।

मार्गिल के महीने में सर्दियों में, एक अन्य भव्य उत्सव होता है। हर रोज सुबह सुबह लोग मन्दिर के आसपास की गलियों में संकीर्तन करते हैं और फिर यह समूह मन्दिर लौट आता है।

भक्तिविकास स्वामी: संकीर्तन में वे किन नामों का उच्चारण करते थे?

आर.रंगनाथन्: हरि के नामों का। इसे गोविन्द-नाम संकीर्तन पुकारा जाता था। एक भक्त गाता था और अन्य उसके बाद मृदंग तथा करताल के साथ गाते। सुबह सुबह कई छोटे बालक मन्दिर के बाहर ग्रेनाइट के फर्श पर सो रहे होते और संकीर्तन की ध्वनि सुनकर जाग जाते और बिना मुँह धोए ही संकीर्तन में शामिल हो जाते। किन्तु पाँच या छः वरिष्ठ भक्त, जो कीर्तन का नेतृत्व करते वे सुबह 4.00 या 4.30 बजे नहा धोकर, तिलक लगाकर शुरु करते। अधिकतर इसमें नौजवान पुरुष या बच्चे होते जिनकी उम्र 5 से 35 के आसपास होती। यह एक, डेढ़ या दो घण्टे तक चलता रहता।

बाद में वे *थिरुप्पावै* के तीस श्लोक गाते। *थिरुप्पावै* तमिल में गोपी भाव में *आण्डाल* के भजन हैं।[६२] एक पंक्ति इस प्रकार है: (तमिल में गाते हैं) ''जन्म जन्मांतरों तक मेरा कर्तव्य आपकी सेवा करना है। मेरी अन्य कोई अभिलाषा नहीं है।'' यह बहुत ही सुन्दर है।

फिर वे पोंगल का भोग लगवाकर सुबह हर किसी में बाँट देते हैं। और सात बजे तक सारे पर्व हो जाते हैं और हर कोई चला जाता है।

त्योहारों के समय कई वैष्णव वेदों तथा दिव्य प्रबन्धम् का उच्चारण करने के लिए मन्दिर में इकट्ठे होते हैं। सौ लोग इकट्ठे गाते, वे दो समूह में बँटकर बारी-बारी से गाते। एक समूह के श्लोक समाप्त होने पर दूसरा समूह अगला

---

६२ आण्डाल - भगवान् विष्णु की शाश्वत पत्नी लक्ष्मी की आंशिक अवतार। भगवान् के प्रति उनके भक्तिमय भजन दिव्य प्रबंधम् के अंग हैं और श्री वैष्णवों को बहुत अच्छे लगते हैं।

श्लोक गाता। वे बहुत ही सुन्दर और भावनात्मक ढंग से गाते। फिर वे भगवान् के लिए *मंगलम्* गाते।

भक्तिविकास स्वामी: यह क्या है ?

आर.रंगनाथन्: *मंगलम्* संस्कृत शब्द है जिसका अर्थ है ''कल्याण'' या ''मंगल।'' ये प्रार्थनाएँ भगवान् के मांगल्य के लिए हैं; ''आपका यश चारों ओर फैले,'' ''आप सदैव विजयी और प्रसन्न रहें,'' इत्यादि। निश्चित ही भगवान् स्वयं हर प्रकार की मंगलता के स्त्रोत हैं, इसलिए हम जैसे तुच्छ जीव उनके यश को बढ़ाने के लिये कुछ नहीं कर सकते । वे सदैव स्वाभाविक रूप से परम आनन्द में स्थित रहते हैं। किन्तु इस प्रकार से प्रार्थना करना प्रथा है। प्रार्थनाएँ एक श्लोक पर समाप्त होती हैं जिसका अर्थ है : ''हर कार्य भगवान् की प्रसन्नता के लिए किया जा रहा है।''

फिर मन्दिर के *अर्चकर* हर किसी को तीर्थम् देते हैं और सभी भक्तों के सिर पर एक प्रकार का मुकुट रखते हैं जो भगवान् के चरणों का प्रतिनिधि होता है। फिर हर कोई प्रसाद ग्रहण करता है।

श्री वैष्णव महान आचार्यों के आविर्भाव को भी मनाते हैं। जैसे जब मैं सात वर्ष का था, तो मेरे *उपनयनम्* के बाद मेरे पिता जी मुझे रामानुजाचार्य के जन्म-स्थल श्रीपेरम्बुदूर ले आए। कई दिन पहले उन्होंने गाँव के लोगों से चावल, दाल तथा अन्य वस्तुएँ इकट्ठी कीं। उन्होंने ये सब चीज़ें ट्रक द्वारा श्रीपेरम्बुदूर पहले भेज दीं और वे इकट्ठे किए हुए धन के साथ मुझे रेलगाड़ी द्वारा ले गए। रामानुजाचार्य के आविर्भाव दिवस पर यह दस दिन के पर्व का समय था। जब मेरे पिता जी वहाँ पहुँचे तो उन्होंने यह सब जियार को भेंट किया। जियार मेरे पिता जी को अच्छी तरह से जानते थे। मेरे पिता जी जियार से बहुत प्रेम और आदर करते थे और जियार भी मेरे पिता जी के प्रति बहुत ही स्नेहिल और दयालु थे। जियार मेरे पिता जी को त्योहार में रसोई की देखरेख में मदद करने में लगाते, और निश्चित करते कि हर किसी को सही से प्रसाद समय पर मिले। वहाँ गुरुकुल में मेरी उम्र के बच्चों का समूह था, जो चार हजार श्लोकों का *दिव्य प्रबन्धम्* मुँह जबानी उच्चारण बहुत ही सुन्दरता से करता था।

जब कोई आचार्य या जियार हमारे यहाँ आते तो हम अपने गाँव में एक भव्य उत्सव का भी आयोजन करते। पूरा गाँव उनका आदर करने आता। उनके साथ बहुत सारे अनुयायी होते और पूरे जुलूस में कई गायें, घोड़े तथा पाँच या छः हाथी होते। वे स्वभावतः कुलीन और आदरणीय प्रतीत होते। और गाँव के लोग उनका स्वागत पूर्ण-कुम्भ (चावल और नारियल से बनी पारम्परिक भेंट) के साथ करते।

भक्ति विकास स्वामीः क्या आप आचार्य या जियार के बारे में विस्तार से बताएँगे?

आर.रंगनाथन्: श्री वैष्णव परम्परा में हर शिष्य का गुरु होना चाहिए, जो भगवान् और भक्त के बीच में कड़ी होता है। गुरु को आचार्य कहा जाता था, जिसका अर्थ है जो अपने आचरण से सिखाता है। आचार्य का कार्य होता था कि वे नित्य प्रार्थनाओं को नेतृत्व करता, शास्त्रों की व्याख्या करता और आमतौर पर भक्तों को वैष्णव सिद्धान्तों का ज्ञान देता और प्रेरित करता।

हर वैष्णव परिवार परम्परा-आचार्य से जुड़ा होता है। वे या तो कुल आचार्य से जुड़े होते हैं या मन्दिर या मठ के संन्यासी अध्यक्ष से। मन्दिर या मठ के संन्यासी अध्यक्ष को जियार कहते हैं। दूसरे शब्दों में पुश्तें कुल गुरु या उनकी पीढ़ी से जुड़ी होती हैं या मन्दिर विशेष के पदाधिकारी जियार से। यहाँ तक कि आचार्य जो गृहस्थ आश्रम में होते थे, वे बहुत ही सरल, आदर्श और पूरी तरह से आध्यात्मिक कार्यों में संलग्न रहते थे।[६३]

---

६३ श्रील प्रभुपाद टिप्पणी करते हैं, ''योगियों या आध्यात्मवादियों अर्थात् बहुत बुद्धिमान लोगों के परिवार में जन्म प्रशंसनीय है, क्योंकि ऐसे परिवार में जन्म लेने वाले बच्चे को शुरु से ही आध्यात्मिक उन्नति करने का अवसर मिलता है। आचार्य या गोस्वामी परिवारों में तो यह विशेष रूप से सही है। ऐसे परिवार बहुत विद्वान होते हैं और परम्पर तथा प्रशिक्षण को समर्पित होते हैं। इसलिए वे आध्यात्मिक गुरु बनते हैं। भारत में कई आचार्य परिवार हैं, लेकिन उचित शिक्षा और प्रशिक्षण के अभाव के कारण उनका पतन हो गया है। भगवान् की कृपा से अब भी कई परिवार हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी आध्यात्मिकता का पोषण करते हैं। निस्संदेह ऐसे परिवारों में जन्म लेना बहुत ही सौभाग्य की बात है। (भगवत् गीता 6.42 व्याख्या)

भक्तिविकास स्वामी: क्या आचार्य या जियार पैदल आते थे? वे पुरानी प्रथाओं के प्रति बहुत ही सख्त थे, इन्हीं में से एक थी कि साधु या संन्यासी को किसी भी प्रकार के वाहन का उपयोग नहीं करना चाहिए।

आर.रंगनाथन्: हाँ, वे पैदल आते थे। जहाँ कहीं भी वे पड़ाव डालते थे, वहाँ एक बड़ा सा तम्बू लगा दिया जाता था। जियार और उनके समूह के लोग घर में रहते थे। उनके रहने के लिए एक या दो घर खाली कर दिए जाते थे और उस घर के स्वामी उस समय किसी और के घर रहते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या हर बार वही जियार आते थे या अन्य?

आर.रंगनाथन्: एक ही जियार आते थे क्योंकि किसी गाँव में रहने वाले अधिकतर लोग एक ही परम्परा में होते। आमतौर पर जियार एक महीना ठहरते। उनके आगमन पर हर सुबह अलग-अलग घरों में एक कार्यक्रम का आयोजन होता। जियार की उपस्थिति में हर कोई इकट्ठा हो जाता और भगवान् की प्रशंसा में कई स्तुतियाँ गाते। जियार दार्शनिक विषयों तथा शास्त्रों में से भगवान् की लीलाओं पर प्रवचन करते। प्रवचन के अंत में लोग उन्हें फल, धन और कई बार गाय या भूमि इत्यादि भेंट करते। जियार अक्षत प्रसाद हर किसी में बाँट देते। फिर पूर्ण प्रसाद हर किसी में वितरित किया जाता।

जियार के आगमन के समय एक दिन स्थानीय विद्वानों का अभिनन्दन करने के लिए भव्य आयोजन किया जाता था। सभी स्थानीय ब्राह्मण इकट्ठा होकर आते और जियार उनमें से भक्तिमय विद्वत्ता में विख्यात व्यक्ति का सम्मान करते। वे सम्मान चिह्न के रूप में उनके कंधों या सिर पर कपड़ा लपेट देते और उनकी उपलब्धियों की प्रशंसा करते। विद्वान प्रवचन करते और स्थानीय लोगों को अपने लोगों की विद्वत्ता पर गर्व और प्रसन्नता होती।

भक्तिविकास स्वामी: विद्वत्ता का बहुत ध्यान रखा जाता था।

आर.रंगनाथन्: ओह हाँ, यह एक महान प्रथा थी। विद्वता बहुत ही महत्वपूर्ण थी और बहुत ही सम्माननीय थी। विद्वत्ता का अर्थ शास्त्रों का ज्ञान था न कि यह एम.ए., बी.एस.सी. वगैरह। साधारण ब्राह्मण से भी आशा की जाती थी कि वह

सम्प्रदाय की शिक्षाओं में और शास्त्रों के श्लोकों में निपुण होगा। कई विद्वान सचमुच असाधारण थे जिन्हें आप कुछ भी पूछें, वे उत्तर दे देते। उन्हें भगवान् का वरदान प्राप्त था; नहीं तो उन्हें इतना ज्ञान नहीं होता। निश्चित ही उन्होंने इसके लिए कठोर परिश्रम भी किया होता। महान विद्वानों के बारे में कहा जाता था कि ''उन्होंने स्वरूप-सिद्ध महात्माओं की सेवा करके और उनके अधीन कई वर्षों तक सीखकर, शास्त्रीय ज्ञान के दूसरे छोर को छू लिया है।

विशेषकर आचार्य को बहुत अधिक विद्वता चाहिए होती। यह केवल सम्मानीय पदवी नहीं थी। उन दिनों कई विरोधी मत के विद्वान भी होते थे, इसलिए एक आचार्य को ज्ञान के साथ-साथ अनुभूति भी चाहिए होती थी ताकि वह उन सबकी चुनौतियों का जवाब दे सके।

इसलिए अपनी विद्वत्ता द्वारा वे अपने सम्प्रदाय की गरिमा बनाए रखते थे। वे अन्य भक्तों को आनन्द और ज्ञान देने के लिए भागवतम् के श्लोकों में से कई भक्तिमय अर्थ भी निकालते थे। इसलिए ऐसे विद्वानों को भागवत कहते थे जिसका अर्थ है, ''जो भागवतम् की शिक्षाओं को यथारूप जानते हैं और अपने आचरण द्वारा सिखाते हैं'' और उनका बहुत ज्यादा सम्मान होता था।

किन्तु असल में, हर वैष्णव को बचपन से केवल सर्वश्रेष्ठ उच्च भक्तों को ही नहीं अपितु अन्य सभी वैष्णवों को आदर देना सिखाया जाता था। हर वैष्णव दूसरे भक्त को मिलने पर तुरन्त कहता है, ''मैं भगवान् के दासों का दास हूँ,'' नारायण दास दासानुदास। तुरन्त दोनों भक्त एक दूसरे को प्रणाम करते। उनमें से कोई भी भक्त आदर लेने के लिए खड़ा नहीं रहता था। स्त्रियों के लिए भी यह प्रथा थी कि वे शाम के समय बड़ों को प्रणाम करें। यहाँ तक कि वे पड़ोसियों के घर में जातीं और बाहर बैठे वृद्ध वैष्णवों को प्रणाम करके आतीं।

भक्ति विकास स्वामी: क्या आप मुझे कुल की प्रथाओं या अन्य आयोजनों के बारे में बताएँगे? ब्राह्मणों में *उपनयनम् संस्कार* एक महत्वपूर्ण पारिवारिक आयोजन होता है।

आर.रंगनाथन्: *उपनयनम्* आमतौर पर सात साल की उम्र या इससे पहले किया जाता था। इसके लिये यह देखा जाता कि बच्चा संध्या वन्दन ठीक से कर रहा है

या नहीं। मेरे पिता जी ने मेरी माता जी को कह दिया कि जब तक मैं संध्या वन्दन नहीं करता मुझे खाना न दें: ''यह आपकी जिम्मेदारी है कि यह स्कूल जाने से पहले संध्या वन्दन करे।''

एक अन्य संस्कार होता है जनेऊ बदलने का और अगले दिन गायत्री जप करने का। ये साल में एक बार आते हैं, जब सारे ब्राह्मण अपने पुराने जनेऊ बदलते हैं। कई प्रकार के आयोजन और संस्कार होते और सभी भगवान् की पूजा पर केन्द्रित होते। इस प्रकार हम अपने गृहस्थ जीवन में भी उन्हें नहीं भूल सकते, और न ही भूल सकते कि जीवन का उद्देश्य भगवान् की सेवा करना है।

एक व्यक्ति की मृत्यु पर बहुत बड़ा आयोजन होता था। जैसे ही किसी व्यक्ति का अंत निकट होता, रिश्तेदार किसी गरीब ब्राह्मण को देने के लिए बछड़े के साथ गाय ले आते। फिर मृत्यु के समय वे गाय और बछड़े को दान कर देते। ऐसी मान्यता है कि दिवंगत आत्मा गाय की पूँछ पकड़ती हैं और गाय उसे आध्यात्मिक जगत् ले जाती है। व्यक्ति की मृत्यु के दिन और मृत्यु के बाहरवें दिन, वे ब्राह्मण को बछड़े के साथ गाय दान देते थे। एक बहुत अच्छी गाय दी जाती थी, जो पाँच लीटर तक दूध देती।

भक्तिविकास स्वामी: एकादशी पालन के बारे में बताएँ?

आर.रंगनाथन्: एकादशी का अर्थ होता था, केवल तुलसी जल लेना।[६४] लोग उस दिन और कुछ नहीं लेते थे और वे आम दिनों की अपेक्षा इस दिन ज्यादा आध्यात्मिक कार्य करते थे। वे इस दिन चटाई के बिना फर्श पर सोते थे।

भक्तिविकास स्वामी: एकादशी से पहली रात के बारे में बताएँ?

आर.रंगनाथन्: एकादशी से पहले (दशमी) शाम को वे बहुत ही हल्का भोजन लेते थे। वे गरीष्ठ भोजन नहीं लेते थे क्योंकि वे सचमुच उपवास करना चाहते थे। द्वादशी को वे सुबह सात बजे व्रत का पालन करते। पहले वे ब्रह्मचारियों को भोजन देते और फिर बाकी लोग प्रसाद ग्रहण करते। एकादशी के अगले दिन द्वादशी को वे कई प्रकार के पकवान बनाते। पकवान वैज्ञानिक दृष्टि से इस प्रकार

६४ जल जिसमें तुलसी पत्र भिगोए गए हों।

बनाए जाते कि चौबीस घण्टे के उपवास के बाद पेट उन्हें आसानी से पचा ले। हम ठण्डी तासीर वाले व्यंजन लेते जो खाली और गर्म पेट को आराम दे। हम उपवास के बाद उल्टा-सीधा खाकर पेट नहीं भरते थे।

भक्तिविकास स्वामी: तमिलनाडु में सबसे प्रसिद्ध और महत्वपूर्ण त्योहार पोंगल है।

आर.रंगनाथन्: हाँ। हमने इसको एक और नाम दिया हुआ है। हर त्योहार का हमेशा एक वैष्णव नाम होता है और यहाँ तक कि हर पकवान का भी। हर चीज़ के लिए उपयोग किए जाने वाले अधिकतर नाम हरि से सम्बन्धित होते हैं। इसलिए हमारे वैष्णव ब्राह्मणों की भाषा दूसरों के लिए समझनी मुश्किल होती है।

पोंगल के बाद गायों का त्योहार होता था, जिसे *मट्टू पोंगल* (मट्टू का अर्थ है गाय) कहा जाता है। उस दिन सुबह सुबह, स्त्रियाँ कई प्रकार के पोंगल प्रसाद को नदी के तट पर ले जातीं और हल्दी की पत्तियों पर फैला देतीं। स्वाभाविक ही कई पंछी आकर इस दावत का आनन्द लेते। स्त्रियाँ प्रार्थना करती कि जिस प्रकार ये चिड़ियाँ एक साथ रहती और खाती हैं उसी प्रकार उनके परिवार भी एक साथ रहें। इसी दिन भाई अपनी बहनों को अपने सामर्थ्य अनुसार गहने, कपड़े और धन देते।

मट्टू-पोंगल के लिए गायों को नदी में नहलाकर कुमकुम, तिलक और फूलों से सजाया जाता। बाद में कुछ हजार गायों को इकट्ठे बड़े और खुले स्थान पर लाया जाता। बहुत स्वादिष्ट पोंगल गायों को खिलाने के लिए बनाया जाता। गाय केले के पत्ते पर पोंगल का आनन्द लेतीं।

मन्दिर में हजारों गायों की सेवा की जाती। मन्दिर में प्रवेश करते ही वातावरण के अलग होने का अहसास हो जाता। गायों के बीच पवित्रता का अनुभव होता। हम हमेशा बहुत सारी गायों के रंभाने की आवाज सुना करते थे। मन्दिर में दो या तीन हाथी भी होते थे। इस प्रकार हम कई बार उनके गरजने की आवाजें भी सुनते।

हमारे घर में लक्ष्मी नाम की गाय थी। वह इतनी समझदार थी कि जब मैं एक साल का था तो मेरी माता मुझे गाय के सामने फर्श पर ही बैठा देती थीं।

फिर मेरी माता घर के कामों को देखतीं और लक्ष्मी मेरी देखभाल करती। वह बंधी भी नहीं होती थी। जब भी उसका मन करता वह घर के अन्दर आती और बाहर चली जाती।

यहाँ तक कि घर की औरतें भी बिना डर के गाय हाँक लेतीं। हमारे परिवार में एक 86 वर्ष के वृद्ध थे, जो हर रोज़ गाय की नाक से बंधी रस्सी पकड़कर उसे अन्दर या बाहर लाते। हम उन्हें सावधान करते कि वे खतरा मोल न लें क्योंकि वे बहुत ही बूढ़े और कमजोर हो गए थे। गाय बहुत ही बड़ी और ताकतवर थी जिसके बड़े-बड़े सींग थे किन्तु वह इतनी पालतू थी कि कोई भी आशा नहीं करता था कि वह दुर्व्यवहार करेगी। यदि गाय चाहती तो वह बिना प्रयास के ही उन्हें सींगों पर उठा लेती। किन्तु हमारे रिश्तेदार हमें बताते, ''यह मेरी गाय है, और यह इतनी अच्छी और पालतू है कि यह कभी ऐसा काम नहीं करेगी। बहुत ही छोटी उम्र से हम गाय को हाँकना शुरु कर देते थे। यह हमारी पारिवारिक प्रथा थी। गाय हमें कोई नुक्सान नहीं पहुँचाती थी।''

भक्तिविकास स्वामी: जब गायों से अच्छा व्यवहार किया जाए तो वे भी प्रेम करती हैं। आजकल अधिकतर गायों के साथ दुर्व्यवहार किया जाता है और लोग इनके निकट जाने से डरते हैं।

आर.रंगनाथन्: कई अमीर परिवारों के पास सैकड़ों गाय होती थीं और खेत जोतने के लिए बैल भी होते थे। इन सबकी बहुत ही अच्छे से देखभाल की जाती थी। दक्षिण भारत में एक जाति है जिसे कोनार कहा जाता है, जिनका मुख्य काम कई गृहस्थों की गायों की देखभाल करना होता था। ब्राह्मण स्वयं अपनी गायों को नहीं दोहते थे। हर परिवार का कोनार होता जो गायों को दोहता, उन्हें खिलाता, उनकी देखभाल करता और दूध मथता।

इस प्रकार यह समुदाय *मट्टु-पोंगल* वाले दिन कई प्रकार के आयोजन करता है। और इस दिन उनके समुदाय के सभी सदस्यों का सम्मान किया जाता। हर घर कोनार और उनके पूरे परिवार को नए कपड़े, दान, कई प्रकार के तेल और अन्य उपहार देता।

पुश्तैनी नाई भी होते थे, जो विशेषकर ब्राह्मण परिवारों की सेवा करते थे। वे उनका मुण्डन करते थे। पुश्तैनी धोबी भी होते थे, जो औरतों और बच्चों के कपड़े धोते थे। आमतौर पर पुरुष नहाते समय अपने कपड़े स्वयं धोते थे किन्तु कई बार वे अपने औपचारिक कपड़ों को चमकाने के लिए धोबी की सेवाएँ लेते थे।

भक्तिविकास स्वामी: घर के बगीचे की देखभाल कौन करता था?

आर.रंगनाथन्: घर में सदैव कम से कम एक दर्जन लोग होते थे, इसलिए शायद आधे से अधिक बच्चे शाम को बगीचे की देखरेख करते। यह शौक था। बाहर के लोग भी हर रोज़ बाज़ार में सब्जी बेचते थे।

भक्तिविकास स्वामी: क्या आप भी अपने घर में तेल स्वयं बनाते थे?

आर.रंगनाथन्: कई बार, किन्तु गाँव में भी एक स्थान था, जहाँ तेल का उत्पादन होता था। बैल ऊखल से बंधे होते थे और वे इसके इर्द-गिर्द घूमकर सरसों के बीज को पीसते थे। हम यह तेल सुबह-शाम लालटेन जलाने के काम में लाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: पहले हम धार्मिक कर्मकाण्डों के बारे में बात कर रहे थे। भारत में आज भी विवाह एक बहुत भव्य आयोजन होता है।

आर.रंगनाथन्: किन्तु यह पहले की तरह नहीं होता। अब विवाह जल्दी ही एक या दो दिन में हो जाते हैं। बस चुटकियों में खत्म। पहले सभी विधि-विधानों को उनके अर्थ और उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए, भव्यता से मनाया जाता था।

शादियों को भव्यता से मनाया जाता था। यह कम से कम पाँच दिनों का आयोजन होता था। पूरा गाँव शामिल होता था। यहाँ तक कि दुल्हन के परिवार वाले बारातियों को भी निमंत्रण पत्र देते थे और दोनों ओर से आदान-प्रदान होता था। यह बहुत ही भव्य आयोजन होता था। विवाह में ही कई प्रकार के रीति-रिवाज होते थे, जो अक्सर भगवान् कृष्ण और रुक्मिणी की लीलाओं का संकेत करते थे। कई प्रकार के स्वदेशी वाद्य जैसे *नादस्वरम्* इत्यादि पीछे से बजते रहते।[६५] दूल्हा और दुल्हन कुछ प्रकार के खेलों में हिस्सा लेते, जिससे उनके

६५ नादस्वरम् - एक नली की हवा से बजने वाला यंत्र। यह सैक्सोफोन जैसा होता है किन्तु उससे थोड़ा सरल होता है।

शारीरिक और मानसिक सामर्थ्य की परीक्षा होती। और एक भजन गाया जाता, जो उस लीला का वर्णन करता जिसमें भगवान् अण्डाल से विवाह करने आए थे। विवाह के कई पहलू होते थे। किन्तु आजकल कुछ लोग ही जानते हैं कि उनका अस्तित्व भी है, उनके महत्व की सराहना तो दूर की बात है।

भक्तिविकास स्वामी: किस आयु में बच्चों की शादी होती थी?

आर.रंगनाथन्: चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में। बाद में यह आयु बाईस या तेईस वर्ष कर दी गई और अब यह तीस वर्ष के आसपास है। बड़े विवाह निश्चित करते और सारे प्रबन्ध करते। दूसरा विवाह करने के भी कई किस्से थे किन्तु उनके साथ अलग से व्यवहार किया जाता था और नीची नजर से देखा जाता था।

भक्तिविकास स्वामी: किसे नीचा देखा जाता था दूसरी पत्नी को या जिसने दूसरा विवाह किया है उसे?

आर.रंगनाथन्: दोनों को।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु क्या हिन्दुओं में दूसरा विवाह करना आम नहीं था, विशेषकर यदि पहली पत्नी बांझ हो या केवल लड़कियाँ उत्पन्न हुई हों?

आर.रंगनाथन्: जिन लोगों को मैं जानता हूँ उनमें नहीं। यदि किसी की जवान पत्नी मर जाए तभी उसका पुन: विवाह स्वीकार्य था।

भक्तिविकास स्वामी: जीवन साथी माता-पिता द्वारा निश्चित किए जाते थे।

आर.रंगनाथन्: हाँ।

भक्तिविकास स्वामी: विवाह से पहले क्या लड़का जानता था कि लड़की कौन होगी? क्या वे एक ही गाँव के होते थे या अलग-अलग गाँवों से चुने जाते थे?

आर.रंगनाथन्: वे विवाह पर ही पहली बार मिलते थे। आमतौर पर वे दुल्हन को किसी दूसरे गाँव से चुनते थे, कई बार दुल्हन उसी गाँव की होती थी। ज्योतिषी से परामर्श लेना महत्वपूर्ण होता था। यदि उनकी कुण्डली मिल जाती तो उन्हें यकीन हो जाता कि वर और वधू एक दूसरे के लिए योग्य हैं।

भक्तिविकास स्वामी: आजकल विवाह दु:खपूर्ण और बोझ हो गए हैं और यदि पति-पत्नी में शाँति बनी रहे तो इसे बहुत बड़ी उपलब्धि माना जाता है।

आर.रंगनाथन्: हम शायद ही ऐसी समस्याओं के बारे में जानते या सुनते थे। लोग बहुत खुश थे। उनकी सादगी और भोलापन उनके बीच गलतफहमी पनपने नहीं देता था। जो कुछ भी पुरुष चुनते थे, स्त्रियाँ सहयोग करती थीं और पालन करती थीं। आपसी मतभेद का प्रश्न ही नहीं था। बहुत ही कम ऐसे दृश्य देखने को मिलते थे।

भक्तिविकास स्वामी: इसका अर्थ है कि पुरुष ने जो कह दिया स्त्री को वह मानना ही पड़ता था।

आर.रंगनाथन्: यह प्रथा थी, किन्तु साथ ही स्त्रियों के साथ बहुत अच्छे ढंग से व्यवहार किया जाता था। झगड़े का प्रश्न ही नहीं होता था। आप देखिये, पूरी सोच यह थी कि सभी स्वयं को भगवान् के दास के रूप में देखते थे और उनका उद्देश्य भगवान् की सेवा था।

भक्तिविकास स्वामी: इस प्रकार विवाह के बाद भी वे भगवान् की सेवा में लगे रहते थे।

आर.रंगनाथन्: हाँ। वे तब भी बड़ों के उपदेशों के अधीन भगवान् की सेवा में रत रहते थे। बड़ों के आदेशों की अवहेलना करने का प्रश्न ही नहीं था। अनुशासन का पालन किया जाता था। जो बड़ों ने कहा उसका उल्लंघन नहीं किया जा सकता था।

भक्तिविकास स्वामी: उनमें बड़ों के प्रति बहुत सम्मान था।

आर.रंगनाथन्: हाँ। क्योंकि बहुत ही वृद्ध लोग, अस्सी या सौ साल के, परिवार में मौजूद होते थे। युवाओं को नेतृत्व करने का कोई अवसर ही नहीं था, और उन्हें बड़ों की बात माननी ही होती थी। जब युवा पीढ़ी स्वयं को बड़ा मानने लगती थी तो मुसीबतें शुरु हो जाती थीं।

भक्तिविकास स्वामी: कुछ न कुछ तो पारिवारिक झगड़े होते होंगे।

आर.रंगनाथन्: भटकाव की घटनाएँ बहुत कम थीं, किन्तु अब धीरे-धीरे यह आम लोगों के बीच पति-पत्नी में गाली-गलोच के स्तर तक पहुँच चुके हैं। पहले ऐसा नहीं था।

मेरे पिता जी कहा करते थे कि हम सब एक ही वंश और गोत्र के हैं। यदि हमारी किसी से नहीं भी बनती तो भी याद रखो कि हम एक ही परिवार से हैं और किसी न किसी तरह से शांति बनाए रखो।

आज भी हमारी यही प्रथा है। मैं यहाँ दुबई में रह रहा हूँ और मेरा बड़ा भाई भारत में है, किन्तु आज भी मैं उनका आदर करता हूँ और जो कुछ भी वे कहते हैं मुझे मानना है। ऐसा नहीं है कि उन्हें मुझे रोजमर्रा के कामों के बारे में बताना है, किन्तु यदि कोई पारिवारिक मसला है जिसमें सभी शामिल हैं तो उनका निर्णय सर्वोपरि माना जाएगा। चाहे मेरे बच्चे बड़े हो गए हैं फिर भी कई बार मैं उनसे सलाह लिया करता हूँ।

भक्तिविकास स्वामी: यदि कोई झगड़ा हो तो उसे बड़े सुलझाते हैं।

आर.रंगनाथन्: हाँ। अधिकतर झगड़े जमीन या सम्पत्ति को लेकर होते हैं। अन्य महत्वपूर्ण पहलू है विवाह के लिए लड़की चुनने का। यदि लड़की अच्छी होती तो घर में कोई परेशानी नहीं होती। नहीं तो समस्या शुरू हो जाती। एक बार यदि झगड़ा शुरु हो जाए और शीघ्र ही निपटारा न कर लिया जाए, तो यह हमेशा चलता रहता। कई बार एक ही परिवार के भाई झगड़कर अलग रहने लग जाते। किन्तु यह बहुत ही कम था — शायद पूरे *अग्रहारम्* में दो या तीन।

किन्तु मेरे परिवार में कोई झगड़ा नहीं था। मैंने कभी अपने माता-पिता को झगड़ते हुए नहीं देखा, एक बार भी नहीं। कई बार उनकी राय अलग-अलग होती थी, किन्तु वे इसे अपने तक सीमित रखते थे, ताकि बच्चे परेशान न हों। हमारे माता-पिता कई मुश्किल समय से भी गुजरे, किन्तु उन्होंने कभी हमें अपनी परेशानियों के बारे में नहीं बताया। हमें उन सब परेशानियों के बारे में कई सालों बाद पता चला। और उस समय कई चीज़ें बदल गई थीं और वे परेशानियाँ भी समाप्त हो चुकी थीं।

भक्तिविकास स्वामी: उन्हें किस प्रकार की परेशानियाँ थीं?

आर.रंगनाथन्: कई बार उन्हें पैसों की तंगी थी, जैसे बाढ़ के कारण फसल बर्बाद हो गई या जब जमीन से कोई आय नहीं थी।

भक्तिविकास स्वामी: उनके बारे में बताएँ जिनके पास भूमि ही नहीं थी। क्या वे भिखारी थे?

आर.रंगनाथन्: नहीं, आज की तरह के भिखारी नहीं थे। हर किसी का कोई न कोई व्यवसाय होता था। उनमें कम से कम इतना आत्म-सम्मान तो था ही कि वे जोंक की तरह न रहें। यदि परिस्थिति वश गरीब लोगों के पास कभी कुछ नहीं होता तो भी भीख मांगने की आज्ञा नहीं थी। कोई न कोई उन्हें प्रसाद दे देता। यदि कोई भी गरीब की मदद नहीं करता था, तो इसे पूरे गाँव का अपमान माना जाता था। किन्तु आज कई लोग सड़कों पर भीख मांग रहे हैं।

भक्तिविकास स्वामी: क्या लोग हमेशा अधिक भोजन बनाते थे?

आर.रंगनाथन्: हाँ, वे अधिक भोजन बनाते थे और अक्सर गरीबों को खिलाते थे। यदि कोई भूखा व्यक्ति आ जाता, तो मेरी माता जी उसका तुरन्त स्वागत करतीं।

भक्तिविकास स्वामी: पुलिस या कानून व्यवस्था कैसी थी?

आर.रंगनाथन्: हमने कभी पुलिसवाले को न देखा और न ही सुना। वातावरण शाँत होता था। घर खुले रहते थे और कोई डर नहीं होता था। घरों को ताले भी नहीं लगाए जाते थे, किन्तु फिर भी चोरी की कोई भी घटना नहीं होती।

भक्तिविकास स्वामी: सरकार के बारे में बताएँ।

आर.रंगनाथन्: हमें इसकी बहुत कम जानकारी थी।

भक्तिविकास स्वामी: तो मन्दिर को धन कहाँ से मिलता था और प्रबन्ध कैसे होता था?

आर.रंगनाथन्: मन्दिर के पास बहुत बड़ी जमीन थी और ट्रस्टियों का एक समूह होता था जो इसका प्रबन्ध देखता था। वे बहुत ही आदरणीय लोग होते थे और केवल वैष्णवों में से ही चुने जाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: वे भगवान् और सम्पत्ति का रख रखाव करते थे।

आर.रंगनाथन्: वे भगवान् की सम्पत्ति, आय और हर चीज़ की देखरेख करते थे। लोग प्रसन्न थे कि भगवान् की दया से उनके पास ऐसे सुन्दर अर्चाविग्रह और मन्दिर हैं।

भक्तिविकास स्वामी: इसका अर्थ है कि सरकार कोई कर नहीं लगाती थी?

आर.रंगनाथन्: नहीं, बिल्कुल नहीं। वैष्णव मन्दिर और इसके कार्यों का प्रबन्ध करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: ऐसा प्रतीत होता है कि भारत की असली संस्कृति में जन्में लोगों के लिए कृष्ण भावनाभावित होने में कोई समस्या नहीं थी। यह उनके लिए बहुत ही स्वाभाविक था। उन्हें और किसी बात का पता ही नहीं था। उनके मन कई प्रकार के संशयों या गलत विचारों या भोग के सपनों से भरे नहीं थे। उनके पास अपना घर और परिवार था, किन्तु यह सब कृष्ण के इर्द-गिर्द था। लाखों लोग आम जीवन जी रहे होंगे और संत-तुल्य भक्त होंगे। लोगों के लिए कृष्ण का स्मरण करना और भगवद्धाम जाना आसान था। भारत-भूमि कितनी आनन्दमय थी।

आर.रंगनाथन्: किन्तु आज इसकी दशा देखिए।

भक्तिविकास स्वामी: फिर भी संस्कृति जिन्दा है। जयपुर के राधा-गोविन्द मन्दिर में सैकड़ों लोग मंगल-आरती में भाग लेते हैं। सर्दियों में भी, जब तापमान शून्य तक चला जाता है तब भी कुछ लोग तो जरूर आते हैं। और कार्तिक के महीने में पूरा मन्दिर पूरा दिन खचाखच भरा होता है। और पूरे भारत में आज भी कई संत-तुल्य लोग और विद्वान हैं।

आर.रंगनाथन्: फिर भी देश की आम आध्यात्मिक स्थिति ठीक नहीं है।

भक्तिविकास स्वामी: यह मैं मानता हूँ। यह कैसे हुआ? इतनी महान संस्कृति इतने थोड़े समय में इतना कैसे गिर गई?

आर.रंगनाथन्: मैं आपको मन्दिर प्रबन्ध के बारे में बता रहा था। अब सरकार ने मन्दिर की जमीन ले ली है। असली ट्रस्टियों की जगह सरकारी अधिकारी हैं और हर प्रकार का भ्रष्टाचार शुरु हो गया है। रातों रात वातावरण खराब हो गया। उन्होंने नीतियाँ बना दीं जैसे, ''जमीन जोतने वाले की,'' जिसका अर्थ है कि ब्राह्मणों की जमीन अचानक उनकी नहीं रही। यदि कोई आपकी जमीन जोतने में लगा है, तो वह फसल का बड़ा हिस्सा ले जाएगा। इस प्रकार जमीन के मालिक जोतने वाले की कृपा पर आश्रित हैं। यहाँ तक कि मालिक अपनी जमीन को बेच या नियंत्रण भी नहीं रख सकता। ब्राह्मणों को बहुत आघात पहुँचा, क्योंकि जमीन ही उनकी आय का स्त्रोत थी।

इस प्रकार नई पीढ़ी को नौकरी करने के लिए मजबूर होना पड़ा। मूल रूप से ब्राह्मण लोग बुद्धिमान होते हैं, इसलिए जहाँ भी वे जाते हैं वे अच्छा करते हैं। कई दक्षिण भारतीय ब्राह्मण उच्च पदों पर सरकारी अधिकारी हैं या भारत और संसार में अन्य उत्तरदायी पदों पर हैं। दुबई में मेरी कम्पनी में भी अधिकतर उच्च पदों पर दक्षिण भारतीय ब्राह्मण हैं।

ब्राह्मणों को उच्च पदों पर देखकर कई लोगों को ईर्ष्या हो गई और वे नौकरी में आरक्षण ले आए ताकि ब्राह्मणों को सरकारी नौकरियों से रोका जा सके। इस प्रकार आज अधिकतर नौकरियाँ अक्सर किसी मूर्ख को दे दी जाती हैं जिसे कुछ भी नहीं आता। और देखिए कितनी गन्दी स्थिति हैं अब : भारत सरकार का अर्थ है रिश्वत, भ्रष्टाचार और अयोग्यता।

भक्तिविकास स्वामी: आप बता रहे थे कि जब आप लम्बे समय बाद गाँव लौटे तो बहुत दु:खी हुए थे।

आर.रंगनाथन्: ओह, भयंकर! आज भी मै चीत्कार कर उठता हूँ, जब मैं इन पुरातन मन्दिरों की स्थिति के बारे में बात करता हूँ। पिछली बार मैं मन्नारगुड़ी मन्दिर गया था, पुरोहित ने मुझसे दस रुपए मांगे। मैं रो पड़ा। मैंने अपनी आंखों

से देखा है कि किस प्रकार पुरोहित कितने सम्मान से रहा करते थे। उनके मौजूदा हालात देख कर मुझे रोना आ गया।

मन्दिर गन्दे और जर्जर हैं। कोई ध्यान नहीं करता। वही मन्दिर जो सुख और आनन्द तथा शक्ति से पूर्ण था, वह आज अंधकारमय और लगभग उजाड़ बन चुका है। मुझे नहीं लगता कि वे रोज सही से पूजा भी कर रहे हैं। गौशाला को गोदाम में तबदील कर दिया है जिसमें चावल के बोरे भरे पड़े हैं, शायद ही कोई गाय बची है और जो हैं उनकी सही से देखभाल नहीं होती। कितनी बुरी स्थिति है। जब भी मैं सोचता हूँ कि किस प्रकार मन्दिरों की व्यवस्था हो रही है तो पागल सा हो जाता हूँ। इसमें भाग लेने की भावना टूट चुकी है; हमें इसे पुनर्जागृत करना होगा।

इसलिए मैं हरे कृष्ण भक्तों को सुझाव देता हूँ कि वे नए मन्दिरों के निर्माण की जगह इन वैष्णव तीर्थ धामों का भार संभालें और उनकी पहले की गरिमा को फिर से स्थापित करें। कम से कम 108 वैष्णव *दिव्य देशम* मन्दिरों का पुनरुद्धार, सजावट और पुरानी गरिमा को स्थापित करना चाहिए।[६६] हम यह निश्चित करें की त्योहार समय पर हों, पुरोहितों का सम्मान हो और उनके गुजारे का प्रबन्ध होना चाहिए।

मुझे डर है कि इस नास्तिक समय में नए मन्दिर बनाने से समय के साथ और अधिक मन्दिरों की उपेक्षा हो जाएगी। जिस प्रकार कलियुग बढ़ रहा है, नए मन्दिर बनाना बहुत ही खतरनाक है। यदि आज आप कोई मन्दिर बनाते हैं, कल को लम्बे समय तक आप उस मन्दिर का प्रबन्ध नहीं कर पाएँगे या चला नहीं पाएँगे।

भक्तिविकास स्वामी: सरकार के पास महत्वपूर्ण पुरानी इमारतों का पुनरुद्धार करने की नीति है।

आर.रंगनाथन्: यह ठीक है, किन्तु उस संस्कृति का क्या जिसने ऐसी इमारतों को बनाने के लिए लोगों को प्रेरित किया था? इनके उपयोग का क्या जिसके

६६ दिव्य देशम् – श्री वैष्णव सम्प्रदाय के सबसे महत्वपूर्ण तीर्थस्थान।

लिए ये बनी थीं; भगवान् की पूजा के लिए? वे पुरातत्व प्रदर्शनी या पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए मन्दिर की मरम्मत कर सकते हैं किन्तु इन्होंने वह संस्कृति नष्ट कर दी है जो इसका प्राण थी। मन्दिर कोई दर्शनीय ऐतिहासिक इमारत नहीं कि आप आएँ और देखें। जो व्यक्ति मन्दिर आए, वह इसके भक्तिमय वातावरण से मोहित होकर इसमें खो जाए। ''पुरातत्व विभाग'' का अर्थ है कि यह मन्दिर पहले ही मृत है। इसलिए यह काम भक्तों के हाथों में होना चाहिए, जिनके मन में भगवान् के लिए भावनाएँ हैं, सरकारी नौकरों के हाथ नहीं।[६७]

मेरी युवावस्था के समय मंदिर के भक्तिमय वातावरण के बारे में मुझे आज भी अच्छी तरह से याद है। मैं आज भी उन उत्सवों को तथा दिव्य प्रबन्धम् सुनने की यादों का आनन्द लेता हूँ। कई प्रकार की विशेष प्रथाएँ थीं, जिन्हें मैं भूल गया हूँ या उनके बारे में मुझे सही से नहीं मालूम। किन्तु मुझे याद है कि वे लोग कितने शानदार ढंग से जीते थे।

हम अपने रोज़ के जीवन से प्रसन्न थे। सुबह हम भगवान् के लिए फूल तोड़ने जाते और इस पूरे समय भगवान् का गुणगान करते। पूरा दिन प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से हम कई प्रकार के आध्यात्मिक कार्यों में लगे रहते। हमें और किसी चीज़ की आवश्यकता नहीं होती थी। हमें कहीं और जाने या कुछ करने की कोई अभिलाषा नहीं थी। हमें और धन या भौतिक साधनों की आवश्यकता नहीं थी।

न ही हम आधुनिक सुविधाओं के लिए लालायित थे। हम कैसे आधुनिक रहन-सहन में ढल गये, हमें पता ही नहीं चला। मैंने अपने बचपन में कार भी नहीं देखी थी। बीस वर्ष की आयु तक मैंने कभी कार की सवारी भी नहीं की थी। अब काम पर जाने के लिए, दोस्तों को मिलने के लिए हर जगह, हर चीज़ के लिए कार चलाना जीवन का एक अभिन्न अंग बन गया है। यहाँ तक कि भोजन लेने के लिए हमें कार पर जाना पड़ता है। और भोजन फ्रिज में रखा, प्लास्टिक के थैलों में बंद आता है।

---

६७ इस साक्षात्कार के बाद स्थानीय श्री वैष्णवों ने सेरंगुलम् में मंदिर जीर्णोद्धार की जिम्मेदारी अपने ऊपर ले ली है।

मुझे इन चीज़ों के बारे में पहले पता ही नहीं था। मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि मैं कभी किसी अपार्टमैंट में आसमान में पंछी की तरह लटका होऊँगा। एक इमारत में जहाँ कई लोगों के बीच फँसा हुआ जो मेरा नाम भी नहीं जानते। किन्तु यहाँ आज मैं दुबई में अच्छी नौकरी करते हुए रह रहा हूँ, मेरे पास कार है, पर्याप्त धन है और जीवन के सारे आराम हैं, किन्तु इन चीजों ने मुझे सुख नहीं दिया।

कृष्ण की कृपा से मुझे और भौतिक इच्छाएँ नहीं हैं। किन्तु क्या आप जानते हैं कि मैं क्या चाहता हूँ? मैं वापिस गाँव में भगवान् पर केन्द्रित जीवन में लौटना चाहता हूँ। यही कारण है कि हम भारतीय यहाँ इन कीर्तनों और उत्सवों में भाग लेते हैं, इकट्ठे प्रसाद बनाते और बाँटते हैं। यह केवल श्रील प्रभुपाद जी की कृपा से है। इन चीज़ों ने हमें पुनः जीवन दिया है। नहीं तो हम माया में थे।

भक्ति करो या मरो

अपने बचपन को याद करते हुए, रसराज दास परामर्श देते हैं कि हिन्दू समाज की आध्यात्मिक और दार्शनिक नींव खो चुकी है और असली वैदिक संस्कृति के केवल अवशेष बचे हैं। उनके अनुसार हम आधुनिक समय में आध्यात्मिक ज्ञान के मुख्य स्त्रोत, श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों और उपदेशों को आधार बनाकर इस आध्यात्मिक जीवनशैली को वापिस ला सकते हैं। नहीं तो भारतीयों के पास इतना सामर्थ्य नहीं है कि वे भौतिकतावादी आधुनिक जीवनशैली के आतंक में अपनी संस्कृति को बनाए रख सकें।

यह साक्षात्कार 1994 में लिया गया।

भक्तिविकास स्वामी: कृपया अपने बारे में बताएँ — आपका जन्म कब हुआ, आपके परिवार की पृष्ठभूमि और जब आप बड़े हो रहे थे, तब भारत कैसा था।

रसराज: मेरा जन्म मद्रास में सन् 1951 में हुआ। हम मूलत: श्री वैष्णव इयेंगर परिवार से हैं।[६८] हमारे पूर्वजों का घर मद्रास में पार्थ-सारथी मन्दिर के पास है।

भक्तिविकास स्वामी: तो आप असली मद्रासी लोग हैं।

रसराज: मेरे दादा जी यहाँ रहे हैं और परदादा जी मेरे ख्याल से कोयम्बटूर के आसपास से आए थे।[६९] मेरे परदादा जी के बारे में मुझे नहीं मालूम कि वे क्या करते थे, किन्तु मेरे दादा जी त्रिपलिकेन के स्कूल में गणित के अध्यापक थे, जहाँ अधिकांशत: ब्राह्मणों के बच्चे पढ़ने जाते थे।[७०] मेरी माता जी बताती थीं कि मेरे पिता जी अपने जाति में पहले व्यक्ति थे जिन्होंने उस क्षेत्र में व्यापार किया था। इससे पता चलता है कि उन दिनों, सन् 1930 के आसपास, ब्राह्मणों

६८ इयेंगर – श्री वैष्णव ब्राह्मणों की पारिवारिक उपाधि।

६९ कोयम्बटूर – तमिलनाडु में एक बड़ा शहर।

७० त्रिपलिकेन – मद्रास का जिला।

के लिए व्यापार करना कितना दुर्लभ था। चालीस के दशक में मेरे पिता जी फार्मास्युटिकल के व्यापार में आ गए और दवाइयाँ आयात करते थे। जब दूसरा विश्व युद्ध हुआ, तो विदेशी दवाइयों की बहुत माँग थी और उन्होंने अच्छा धन कमाया। एक मोटा सा हिसाब है कि एक प्लाट को जमीन कहा जाता है, एक एकड़ का चौथाई भाग, जिसका मूल्य सौ रुपए था और उन दिनों में मैलापोर मद्रास के प्रथम दर्जे का इलाका था। और मैंने अपनी माता से सुना था कि मेरे पिता जी हर महीने हजारों रुपए कमाते थे।

भक्तिविकास स्वामी: यह बहुत बड़ी रकम है।

रसराज: आज भी यह अच्छी आमदन है, नहीं ? हम अंदाजा भी नहीं लगा सकते कि इस रकम से उन दिनों क्या-क्या खरीदा जा सकता था। मैं अनुमान लगाने के लिए केवल कुछ चीज़ों के दामों को याद कर सकता हूँ। मेरी माता जी बताते थे कि उनके पिता जी, जो एक कस्टम अधिकारी थे, हर महीने केवल 27 रुपए कमाते थे। किन्तु जब उन्होंने मेरी माता जी का विवाह किया तो उन्होंने मेरी माता जी को 75 सोने की मुद्राएँ दीं।

जब मैं बच्चा था तो चावल का एक थैला (जूट से बनी बोरी) खरीदते थे जिसे गोनि कहते हैं। एक गोनि में पचास किलो चावल आते थे। मध्यम वर्गीय परिवार भी एक बार में कम से कम एक गोनि खरीदते थे। और उस समय इसकी कीमत तेरह रुपए थी। प्रथम दर्जे के चावल।

सन् 1957 या 58 के आसपास जब मेरी उम्र सात या आठ वर्ष थी, मैं दो इडलियाँ आधे आने में खाता था। यह आज की गणना के अनुसार तीन पैसे हैं। उन दिनों शाकाहारी भोजनालय होते थे जिन्हें ''ब्राह्मण होटल'' कहते थे।[७१] इसका आदर्श रूप में अर्थ था कि भोजन बहुत ही अच्छे ढंग से बना है और परोसने से पहले भगवान् को भोग लगवाया गया है। उन दिनों ब्राह्मणों ने बाहर काम करना शुरु कर दिया था और ये होटल उनके खान-पान का प्रबन्ध करते थे। किन्तु जैसे जैसे मैं बड़ा हुआ मैंने देखा कि ''ब्राह्मण होटल'' नाम तो रह गया है किन्तु भगवान् को भोग लगवाने की प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो गई है।

७१ भारतीय परिपेक्ष में होटल का आमतौर पर अर्थ भोजनालय होता है।

भक्तिविकास स्वामी: आज भी मद्रास बहुत पारम्परिक स्थान के नाम से जाना जाता है और उस समय और भी अधिक होगा। कृपया हमें अपने बड़े होने के समय वहाँ के बारे में कुछ और बताएँ।

रसराज: भारत के अन्य शहरों की तरह मद्रास भी एक पुरातन शहर है। यहाँ कई मन्दिर हैं, जिनमें कई हजारों वर्ष पुराने प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर हैं। यहाँ शिव जी का कपिलेश्वर मन्दिर भी है। लगभग दो हजार वर्ष पूर्व माता पार्वती ने मोर का रूप धारण करके भगवान् शिव की आराधना की थी। इसी समय के आसपास महान संत कवि तिरुवल्लुवर मैलापोर रहे और सुविख्यात ग्रंथ *तिरुक्कुरल* लिखा।

शहर में सबसे प्रसिद्ध मन्दिर पार्थ-सारथी पेरुमाल कोविल (पेरुमाल का अर्थ है परम भगवान् विष्णु या कृष्ण और कोविल का अर्थ है मन्दिर) है। यह श्री वैष्णव के 108 महत्वपूर्ण मन्दिरों में से एक है। मन्दिर कम से कम 5091 वर्ष पुराना है जब भगवान् कृष्ण स्वयं कुरुक्षेत्र के युद्ध के बाद आए थे। वे मन्दिर में कुछ दिन रहे थे और फिर वहीं अर्चाविग्रह के रूप में रह गए। यह आज के कलियुग के शुरु होने के समय था। आज भी यदि आप मन्दिर जाएँगे तो पाएँगे कि उत्सव-मूर्ति के चेहरे पर असंख्य तीरों के निशान हैं — अर्जुन के रथ को युद्धभूमि में हाँकने के बाद आप भगवान् से क्या आशा करते हैं।[७२]

जब भगवान् पार्थ-सारथी मन्दिर आए तो पहले ही वहाँ नृसिंह पेरुमाल विग्रह थे। इसलिए मन्दिर सचमुच बहुत पुरातन है। शहर में भी अन्य प्राचीन कृष्ण के मन्दिर हैं। आदि-केशव पेरुमाल कोविल सतयुग से भी पहले का है।[७३] इसलिए मद्रास सचमुच बहुत ही प्राचीन शहर है। अभी-अभी इसे पुराना नाम चेन्नई दोबारा दे दिया गया है।

मैं दो प्राचीन मन्दिर: केशव पेरुमाल कोविल और माधव पेरुमाल कोविल के आंगन में रोज़ खेलते हुए बड़ा हुआ हूँ। हर रोज़ शाम को छः बजे के आसपास आरती होती थी और पुजारी उसी समय भोग लगवाया हुआ बहुत

---

७२ उत्सव-मूर्ति - बड़े विग्रहों के साथ छोटे विग्रह।

७३ दूसरे शब्दों में कई लाख वर्ष पहले से।

स्वादिष्ट प्रसाद लेकर आते। वे गर्म *वेन पोंगल, सर्करी पोंगल,* और कई बार बहुत अच्छी *सुण्ड़ल* वितरित करते थे।[७४] खाने के बाद हम बच्चे दोबारा अपना हाथ आगे कर लेते और पुजारी से कहते, ''मामा, मामा थोड़ा और प्रसाद दे दो!'' और वे हमें थोड़ा और दे देते। निःसन्देह उन दिनों मुझे पेरुमाल प्रसाद की दिव्यता का भान नहीं था, इसलिए हम कहते थे, हमने इसे खाया है। उचित ढंग से कहूँ तो हमें कहना चाहिए कि हमने ग्रहण किया।

वर्षों बाद, जब मैं बड़ा हुआ और बुरे कर्मों की वजह से काम करने अमरीका चला गया, मेरा पतन हो चुका होता, किन्तु मैं श्रील प्रभुपाद जी की पुस्तकों, श्री श्री राधा-कुञ्ज-बिहारी (डैट्रायट में इस्कॉन मन्दिर के विग्रह) और वहाँ के भक्तों की कृपा से बच गया। उन्होंने मुझे फिर से भगवान् कृष्ण तथा उनके नित्य दास के रूप में स्थिति के प्रति जागरुक कर दिया। मैं अथाह धन कमा रहा था किन्तु फिर भी दुःख पा रहा था, क्योंकि मैं कृष्ण के साथ अपने सम्बन्ध को भूल चुका था। श्रील प्रभुपाद जी की पुस्तकें पढ़ने के बाद मेरे बचपन के अनुभव दार्शनिक समझ बनाने लगे और मैं इन सिद्धांतों को अपने जीवन में अपनाने लगा।

इस्कॉन मन्दिर में मैं अमरीकी भक्तों से सुना करता, ''आओ प्रसाद ग्रहण करें।'' तब मुझे याद आता कि हमारे बचपन में धार्मिक वृद्ध वैष्णव यह नहीं कहते थे, ''आओ प्रसाद खाएँ।'' वे कहते थे, ''आईए प्रसाद ग्रहण करें।''

मुझे याद है हर बार प्रसाद बहुत ही स्वादिष्ट होता था जो घी, इलायची, लौंग, कर्पूर और मिश्री इत्यादि कई चीजों से बना होता था। प्रसाद लेने के बाद हम भाग जाते और खेलते। इस प्रकार जिस संस्कृति में हम पैदा हुए, उस महान संस्कृति के महत्व से अनजान रह कर बड़े हुए।

एक वृद्ध महिला हमारे घर के सामने रहती थीं। वे अपने पड़ोस से बच्चों को शाम को अपने घर बुलाती थी और *विष्णु-सहस्त्र-नाम* सिखाती थीं। हर शाम हम उनके साथ बैठते और भगवान् के हज़ार नामों का उच्चारण करते।

---

७४ वेन पोंगल - सफेद पोंगल; सर्करी पोंगल - भूरी चीनी से बनाई मीठी पोंगल; सुण्ड़ल - मटर से बना सूखा पकवान।

हम श्री वैष्णव थे, इसलिए विष्णु को भोग लगवाए बिना घर में हम कुछ भी नहीं लेते थे। जब हम बच्चे रसोई में चले जाते तो मेरी दादी कहतीं, ''अभी भोजन को हाथ मत लगाओ। इसे पेरुमाल को भोग नहीं लगा।'' हम विष्णु की बहुत बड़ी तस्वीर को भोग लगवाते।

भक्तिविकास स्वामी: कौन से विग्रह की तस्वीर? श्री रंगनाथ?

रसराज: यह चिदम्बरम के पेरुमाल, गोविन्दराज की तस्वीर थी।[७५] हमारे पास शालीग्राम शिला भी थी। उनकी सही से पूजा नहीं होती थी, किन्तु फिर भी कम से कम हर किसी की चेतना भगवान् के चित्र विग्रह में थी। हम हर सुबह चित्र रूप में भगवान् को प्रणाम करते।

भक्तिविकास स्वामी: यह छपी हुई थी या चित्रित की हुई?

रसराज: एक बहुत बड़ी पाँच या छः फुट की चित्रित तस्वीर थी। उन दिनों छपे हुए चित्र नहीं होते थे। यह पुरानी पारिवारिक पीढ़ियों से चली आ रही थी।

भक्तिविकास स्वामी: आप के कितने बहन भाई हैं?

रसराज: सात भाई और चार बहनें। हमारा बड़ा परिवार था।

भक्तिविकास स्वामी: उन दिनों अधिकतर परिवार बहुत बड़े होते थे। अपने पारिवारिक जीवन के बारे में कुछ बताएँ।

रसराज: कई चीज़ें हैं। जब हम बच्चे थे, पति-पत्नी लोगों के बीच आपस में बात नहीं करते थे। मेरे चाचा और चाचियों के बीच लोगों में बहुत कम बातचीत होती थी। जब मेरी बड़ी बहन का विवाह हुआ तो छोटों के लिए यह बहुत बड़ा खुशी का अवसर होता, यदि हम नवविवाहित को लोगों के बीच बात करते हुए पकड़ लेते। भारतीय संस्कृति में, जहाँ तक मुझे अब भी याद है, पति-पत्नी लोगों के बीच आपस में दूरी बनाए रखते थे। वे एक दूसरे से केवल अकेले में बात करते थे। यदि किसी को लोगों की उपस्थिति में अपनी पत्नी से बात करते हुए अक्सर देख लिया जाता था, तो उसे *असत्* कहा जाता था। *सत्* का अर्थ है

७५ चिदम्बरम् - तमिलनाडू में मंदिरों से भरा एक प्रसिद्ध शहर।

''नित्य'' और *असत्* का अर्थ हुआ जो क्षण भंगुर स्तर पर है, भौतिक सम्बन्धों से आकर्षित और आसक्त है।

भक्तिविकास स्वामी: संयुक्त परिवार प्रणाली लज्जा और सम्मान बनाए रखने में मदद करती थी।

रसराज: हाँ। संयुक्त परिवार का एक और पहलू है कि दादा और दादी मुखिया होते थे। हमारे घर में केवल माता-पिता थे। किन्तु संयुक्त परिवार में दादा और दादी का माता-पिता से उच्च पद होता है। जैसे-जैसे लोग वृद्ध होते जाते हैं, उनका और अधिक सम्मान किया जाता है। उनकी देखभाल की जाती है और आदर दिया जाता है। जब मैं विदेश में रहता था तो मैंने देखा कि किस प्रकार वृद्ध लोगों के पास व्यवहारत: रहने की कोई जगह नहीं है। अब यह भारत में भी हो रहा है।

भक्तिविकास स्वामी: भयावह — उपेक्षित, दु:खी।

रसराज: उन्हें वृद्ध-आश्रम में भेज दिया जाता है।

भक्तिविकास स्वामी: कितने दु:खी। कितने दु:खी।

रसराज: उनके अंतिम वर्ष मौत की प्रतीक्षा में बीतते हैं, दु:खी और अकेले। अमरीका में आप जितने बूढ़े होते जाएँगे, उतनी ही आपकी उपेक्षा होती जाएगी, जबकि पहले भारत में आप जितने वृद्ध होते जाते उतना ही आपका सम्मान होता जाता। संयुक्त परिवार में दादा और दादी हमेशा परिवार के मुखिया होते थे, चाहे पिता कितना ही क्यों न कमाता हो।

भक्तिविकास स्वामी: यह मैंने भी देखा है। आप बड़ों के विरुद्ध नहीं जा सकते। एक व्यक्ति पचास साल का हो सकता है, जिसके पोते भी हों किन्तु जब उसका पिता जीवित है, वह उनके अधीन है।

रसराज: यह देखना मुश्किल नहीं है कि क्यों भारत और विदेशों में बड़ों के साथ व्यवहार में इतना अन्तर है। विदेशों में जीवन का उद्देश्य इन्द्रिय भोग है। इसलिए जितना आप बूढ़े होते जाएँगे उतना ही कम आप भोग कर पाएँगे। तब आप वह प्राप्त नहीं कर पाएँगे जो वे जीवन का उद्देश्य मानते हैं।

और कोई भी ऐसे लोगों के साथ नहीं रहना चाहता और न ही देखभाल करना चाहता है, क्योंकि उन्हें देखकर उसे अपना आने वाला अंत भी दिखाई देता है। वृद्धों को मुख्य जीवनधारा से बाहर कर दिया जाता है, इसलिए जब तक युवा लोग बूढ़े नहीं हो जाते तब तक उनको हर चीज़ रमणीय प्रतीत होती है। फिर वही चक्र दोहराया जाता है।

भक्तिविकास स्वामी: हाँ। कई दोबारा युवा बनने का बुरी तरह से प्रयास करते हैं जैसे चेहरा खिंचवाकर (फेस लिफ्ट) इत्यादि कई पागलपन की चीज़ें करके।

रसराज: दूसरी ओर भारत में, कम से कम पिछली पीढ़ी में, आध्यात्मिक जीवन में प्रगति और ज्ञान प्राप्त करना जीवन का उद्देश्य माना जाता था। अधिकतर लोग इन्द्रियों पर नियंत्रण करना चाहते थे। इस प्रकार जो जितना वृद्ध होता जाता था, वह उतना ही आध्यात्मिक जीवन को समर्पित होने में सक्षम होता जाता था। इन्द्रिय नियंत्रण भी सरल था। इसलिए वृद्धजनों को युवाओं से श्रेष्ठ माना जाता था। युवा उनका ज्ञान और अनुभव सीखना चाहते थे और उनका अनुभव स्वीकार करते थे।

भक्तिविकास स्वामी: सही कहा। यह सही है। आप जवानी में की गई भूलों से सीखते हैं।

रसराज: बिल्कुल ठीक। किन्तु आधुनिक समाज में लोगों के पास जीवन का उचित उद्देश्य नहीं है, इसलिए वृद्धों का निरादर करना जैसी सामाजिक विसंगतियाँ अब भारत में प्रवेश कर गई हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आज के समय में भारतीय नहीं समझ पा रहे कि जीवन के आध्यात्मिक उद्देश्य में लौटे बिना वे इन चीज़ों को ठीक नहीं कर सकते।

भक्तिविकास स्वामी: पश्चिमी (विदेशी) समाज पूरी तरह से संकट में है और विदेशी प्रचार के प्रभाव से भारतीय अन्धाधुंध उसका पालन कर रहे हैं।

रसराज: उस प्रचार का मुख्य हिस्सा यह विचार है कि भारत में स्त्रियों से अनुचित व्यवहार किया जाता है। कुछ वर्ष पहले मैं भारत में प्रवचन दे रहा था। श्रोताओं में कई पढ़ी-लिखी, सुसंस्कृत, मध्यम-आयु की महिलाएँ थीं जिन्हें लग

रहा था कि उन्हें दबाया जा रहा है। मैंने उनसे पूछा, ''मान लो शाम को आप सब्जी खरीदने के लिए बाज़ार जाते हैं। क्या कोई आदमी जो आपको जानता भी नहीं है आपसे हैलो कह सकता है?''

उन्होंने कहा, ''नहीं।''

मैंने पूछा, ''क्या आप सोचती हैं कि एक आदमी आपको जानता भी नहीं है और वह आपसे आपका नाम पूछ सकता है?''

उन्होंने कहा, ''नहीं! वह नहीं पूछ सकता।''

''आप क्या सोचती हैं कि वह आपको पूछ सकता है, 'क्या आप किसी दिन मेरे साथ रात्रि भोजन पर चलेंगी?'''

उन्होंने उत्तर दिया, ''असंभव! कोई भी अनजान व्यक्ति हमारे साथ इस प्रकार व्यवहार नहीं कर सकता। यदि कोई इस प्रकार हमसें बात करने की कोशिश करेगा, तो लोग उसकी पिटाई कर देंगे।''

''किन्तु विदेशों में,'' मैंने उनको बताया, ''पुरुष अनजान महिलाओं से इस प्रकार बात करते हैं। तो आप क्या कहते हैं स्त्रियों को कहाँ ज्यादा सम्मान मिलता है, भारत में या विदेशों में?''

तो फिर उन्होंने उत्तर दिया, ''भारत में।''

तो फिर मैंने कहा, ''इसलिए यह विचार कि भारत में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता झूठा प्रचार है। असल में भारत ही ऐसा स्थान है, जहाँ स्त्रियों के साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया जाता है। ''

भारत में स्त्रियों के सतीत्व का आदर किया जाता है। यदि समाज स्त्री के इस गुण का सम्मान नहीं करता, और वास्तव में इसे गिराने के हर अवसर को प्रोत्साहित करता है तो यह किस प्रकार की आजादी है? पतित होने की आजादी? उनके मन में स्त्रियों के लिये किस प्रकार का आदर है?

पारम्परिक भारत में स्त्रियाँ आर्थिक रूप से भी सुरक्षित थीं, फिर भी उनके पास बहुत कुछ कहने को था, बहुत नियंत्रण था। पिता आमतौर पर माता से परामर्श लिए बिना कुछ नहीं करता था। यह बहुत ही उच्च श्रेणी का जीवन है।

भक्तिविकास स्वामी: निश्चित ही। दो पीढ़ियाँ पहले पश्चिम (विदेशों) में भी इस प्रकार के विचार थे, स्त्रियों का सम्मान इत्यादि। स्त्रियाँ दुकान पर कुछ भी अकेले खरीदने नहीं जाती थीं।

रसराज: यह ठीक है। आप बिल्कुल सही हैं। सत्तर के मध्य दशक में जब मैं जनरल मोटर्स में काम करता था, तो मेरे एक सहकर्मी थे, जो पैंतालीस वर्ष के होंगे। उस समय मैं छब्बीस वर्ष का था। उन्होंने मुझे बताया था कि जब वे कॉलेज में थे, तो लड़के और लड़कियाँ अपनी मर्जी से मिलते जुलते नहीं थे। उन्होंने कहा, ''यह सब नया है। हमने ऐसी चीज़ें नहीं देखीं।''

यह केवल 60 का दशक था जब यह तथाकथित उदारवाद आया। या शायद इसे पशुवाद कहा जाना चाहिए। इससे पहले कई बालिग, विशेषकर अमीर घराने के, अवैध सम्बंध बनाते थे। किन्तु यह सब पर्दे के पीछे होता था।

भक्तिविकास स्वामी: हाँ, 60 के दशक में उन्होंने इसे नैतिक बना दिया।

रसराज: ऐसा ही है। युवाओं का माता-पिता से विश्वास उठ गया, क्योंकि माता-पिता एक दूसरे को धोखा देते थे और फिर झगड़कर अलग हो जाते थे। इसलिए ऐसे युवाओं के लिए इन्द्रिय-नियंत्रण और बड़ों का आदर करने जैसे उपदेश ढोंग थे। इसने हिप्पी पीढ़ी को पैदा किया। 60 के दशक के बच्चों ने उस समाज को नकार दिया जिसमें वे बड़े हुए थे।

अब भारत में भी आज के माता-पिता यही कुछ कर रहे हैं। वे विदेशों की नकल कर रहे हैं। भारतीय फिल्में और टी.वी. के नाटक भी ऐसे विषयों पर सहमति पर आधारित हैं। उदाहरणत: एक शादीशुदा कामकाजी महिला का पर-पुरुष के साथ सम्बंध। फिर भी वे सोचतीं हैं कि वे अपने बच्चों को नैतिक मूल्यों के साथ बड़ा कर सकती हैं। ये माता-पिता यह समझते ही नहीं कि अगली पीढ़ी इन सबको ढोंग मानकर उठा कर पटक देगी।

कोई कह सकता है, ''क्या आज के भारतीय समाज में कोई बुराई नहीं है? आप इसे कैसे नकार सकते हैं?'' हमारा जवाब होगा, ''हाँ, बहुत सारी समस्याएँ हैं। हमें सोचना पड़ेगा कि इन्हें कैसे हल करना है। मान लो एक निपुण संगीतज्ञ है, जो बूढ़ा हो गया है और एक युवक जिसने कभी संगीत सीखा नहीं है। दोनों ही नहीं गा सकते, किन्तु दोनों की स्थिति बिल्कुल अलग है।

इसी प्रकार, विदेशों में और भारत में सामाजिक समस्याएँ हो सकती हैं — विशेषकर अमरीका, जो अपनी संस्कृति हर किसी पर लादना चाहता है — एक युवक की भाँति है जिसने कभी संगीत नहीं सीखा। इसमें कभी भी बढ़िया आध्यात्मिक या सांस्कृतिक प्रणाली नहीं थी। भारत एक महान बूढ़े निपुण संगीतज्ञ की तरह है। इसके पास महान आध्यात्मिक और सांस्कृतिक प्रथाएँ हैं। इसलिए हल अलग होना चाहिए। हमें अपनी समस्याओं को सुलझाने के लिए वापिस आध्यात्मिक प्रथाओं में लौटना चाहिए, न कि इनकी पूरी तरह उपेक्षा करके विदेशों की नकल करनी चाहिए।

भक्तिविकास स्वामी: भारत में मानव समाज को देने के लिए अभी भी अच्छी बातें हैं। स्त्री और पुरुष में पाबंदियों से समाज सभ्य बनता है। इसके बिना हर चीज़ नरक बन जाती है।

रसराज: एक अन्य विषय जिस पर हमें बात करनी चाहिए वह है दहेज। कानूनी रूप से अब यह अवैध है, फिर भी यह भारतीय जीवन का उसी प्रकार अंग है जिस प्रकार सदैव रहा था। आजकल इसके खिलाफ बहुत जोर शोर से प्रचार किया जा रहा है। समाचार पत्रों की ख़बरें पढ़ कर इसमें कोई सन्देह नहीं लगता कि यह प्रथा बिगड़कर बुराई बन गई है। किन्तु श्रील प्रभुपाद वर्णन करते हैं कि पुरातन भारत में दहेज जरूरी नहीं था। माता-पिता अपनी पुत्री के प्रति प्रेम प्रकट करने के लिए स्वैच्छिक रूप से दहेज देते थे। दहेज का सही संस्कृत शब्द है *वर-दक्षिणा*। वर का यहाँ अर्थ है पत्नी और दक्षिणा का अर्थ है जिसे अपनी इच्छा से आदर और प्रेम प्रकट करने के लिए दिया गया हो। मात्रा महत्वपूर्ण नहीं थी।

जो कुछ भी लड़की दहेज के रूप में लाती थी, वह उसी का होता था और वह इसे बेचती नहीं थी। आमतौर पर वे इसे अपनी बेटियों को दे देते थे और यह

इसी प्रकार चलता रहता। गहने, सोने के बर्तन इत्यादि। नि:सन्देह पुराने दिनों में भारत में हर कोई इतना अमीर तो होता ही था कि वह इस प्रकार दक्षिणा दे। मेरी स्मृति में यह प्रथा एक प्रकार की आर्थिक सुरक्षा और परिवार को स्थिरता प्रदान करती थी। यदि पति किसी मुसीबत में होता, तो पत्नी अपनी चीज़ों को गिरवी रख देती और फिर यह पति का कर्त्तव्य होता था कि वह बाद में इन्हें छुड़वा ले और अपनी पत्नी को वापिस लौटा दे ।

पुराने दिनों में लोगों के अच्छे कर्म होते थे, इसलिए वे अपने पुत्र या पुत्रियों को धन देते थे। आजकल अपने बच्चों के प्रति माता-पिता का उतना स्नेह भी नहीं रहा।

भक्तिविकास स्वामी: कोई उत्तरदायित्व नहीं।

रसराज: कोई धर्म नहीं।[७६] इसी का नतीजा है कोई धन नहीं।

भक्तिविकास स्वामी: भयंकर, भयंकर, भयंकर।

रसराज: ओह, मैं बता रहा था कि संयुक्त परिवार में सभी पुरुष, मतलब बड़े बच्चे, हमेशा सुबह मन्दिर जाते थे और फिर स्कूल, दफ्तर या कहीं भी जाते थे। और जब हम शाम को लौटते थे तो हम अपने पैर धोते और अपने घर में ही पहले पेरुमाल कक्ष में जाते। फिर हम कुछ स्तुति या शास्त्रों के श्लोकों का उच्चारण करते। नहीं तो माता जी हमें खाने को कुछ भी नहीं देती थीं। खाने के बाद हम पढ़ते थे, घर का काम (पढ़ाई) करते इत्यादि।

भक्तिविकास स्वामी: विदेशों में भी, मेरी माता जी एक आईरिश थीं और पक्की कैथोलिक थीं। वे हर सुबह बलपूर्वक मुझे चर्च ले जाने के लिए और परिवार के सभी सदस्यों को ले जाकर इकट्ठे प्रार्थना करने के लिए कहतीं।

रसराज: हाँ, धर्म पूरे संसार में था। भारत के पास विशेष चीज़ थी और आज भी है यदि हम चाहते है तो — वैदिक संस्कृति, जो सर्वश्रेष्ठ है।

---

७६ धर्म का अर्थ शास्त्रों में दिये गये नियम और उसमें निहित कर्तव्य की भावना हैं जिनका पालन करना आवश्यक है। उच्च आध्यात्मिक दृष्टि से धर्म का अर्थ प्रत्येक जीव की स्वाभाविक प्रकृति है।

भक्तिविकास स्वामी: बहुत ही उन्नत, बहुत विकसित।

रसराज: यह सभी संस्कृतियों से महान है। और अन्य देशों की तुलना में भारत में *अज्ञात-सुकृति* प्राप्त करने के अवसर बहुत ही अधिक हैं।[७७]

भक्तिविकास स्वामी: ओह हाँ, निश्चित ही।

रसराज: आमतौर पर लोग आध्यात्मिक रूप से मूर्ख होते हैं, चाहे वे भारतीय हों या विदेशी। किन्तु भारत में प्राप्त *अज्ञात-सुकृति* उच्च है क्योंकि मूल रूप से जीवन विधि-विधानों के अनुसार है। किन्तु पश्चिम में पादरी जो थोड़ा बहुत भी कहते हैं, लोग आमतौर पर वह भी नहीं मानते। भारत में विष्णु हैं। वे अक्सर विष्णु-प्रसाद ग्रहण कर रहे हैं। व्यवहारत: अवैष्णवों में भी यह जीवनशैली है। यह बहुत ही महान बात है।

भक्तिविकास स्वामी: आप कह रहे हैं कि अवैष्णव भी कृष्ण प्रसाद ले रहे हैं?

रसराज: हमेशा! हर कोई विष्णु के भव्य मन्दिर जाता है और वे हमेशा विष्णु-प्रसाद ग्रहण करते हैं। कोई भी पेरुमाल कोविल बिना प्रसाद लिए नहीं आता।

भक्तिविकास स्वामी: स्मार्त भी?

रसराज: हर कोई। हर कोई विष्णु मन्दिर जाता है। विष्णु को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। स्मार्त भी विष्णु का बहुत आदर करते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: किन्तु वैष्णव शिव मन्दिर नहीं जाते।

रसराज: यह हर परिवार पर निर्भर करता था। किन्तु अधिकतर वैष्णव अपने आप को परम पुरुष की पूजा तक सीमित रखते थे, पर वे देवी-देवताओं का अनादर नहीं करते थे। मुख्य बात यह है कि हर कोई विष्णु मन्दिर जाता और विष्णु मन्दिर का प्रसाद हमेशा बढ़िया होता था।

घर की औरतों — मेरी माता जी, चाची इत्यादि — का जीवन पंचांग के इर्द-गिर्द घूमता था, जिसमें लगभग तमिलनाडु के हर मन्दिर के प्रमुख त्योहार

---

७७ अज्ञात सुकृति - अनजाने में प्राप्त धार्मिक लाभ।

के दिन होते थे। स्त्रियाँ कैलेंडर देखतीं और त्योहारों के बारे में चर्चा करती थी। अक्सर मैं सुबह उठ जाता था और रसोई में जाता। मेरी माता जी और मेरी दादी चर्चा कर रहीं होतीं कि किस प्रकार इस दिन इस इस मन्दिर में गरुड़ सेवा है। मैं उनसे पूछता, ''क्या यह बहुत प्रसिद्ध है?'' और मेरी दादी मन्दिर में भगवान् की बहुत ही अद्भुत लीलाओं के बारे में बताती।

तमिलनाडु के नाच्चियार मन्दिर में भगवान् को गरुड़ वाहन पर वर्ष में दो बार विराजित करके शोभायात्रा में लाया जाता है। मेरी माता जी ने बताया कि त्योहार की अद्भुत बात यह है कि गर्भगृह में केवल पाँच पुजारी ही गरुड़ वाहन को उठा सकते हैं। किन्तु जब वे वाहन पर भगवान् को विराजित करके भीतर के आंगन में ले कर आते हैं तो कम से कम पन्द्रह लोग उठाने के लिए चाहिए होते हैं। फिर जब भगवान् सहित वाहन बाहर के आंगन में पहुँचता है तो चालीस पचास लोग गरुड़ पर विराजित भगवान् को उठाने के लिए लग जाते हैं। और जैसे ही भगवान् मन्दिर की दीवारों से बाहर आते हैं तो कम से कम सौ लोग गरुड़ वाहन पर विराजे भगवान् को उठाने के लिए संघर्ष करते हैं। यह आश्चर्यजनक रूप से भारी हो जाता। शोभायात्रा के बाद जब भगवान् दोबारा मन्दिर में प्रवेश करते हैं, तो पूरी घटना उल्टी हो जाती है। जब भगवान् बाहर के आंगन में प्रवेश करते हैं तो सौ लोगों की आवश्यकता नहीं होती। अन्दर के आंगन में पचास लोग पर्याप्त होते और क्रमशः गर्भगृह में दोबारा पाँच लोग ही भगवान् और गरुड़ को ले जाते। यह त्योहार आज भी होता है और यह घटना हर बार होती है।

इस प्रकार हर दिन स्त्रियाँ पंचांग देखती और राज्य के मुख्य मन्दिरों में भव्य उत्सवों के बारे में जानकारी लेतीं और हमें हर रोज़ नई कथा सुनने को मिलती। दूर के मन्दिरों में त्योहार के अनुसार ही घर में भोग बनता। इस प्रकार स्त्रियाँ हमेशा अलग-अलग त्योहारों के लिए पकवान बनाने में व्यस्त रहतीं। दीपावली पर मेरे पिता जी परिवार के सभी सदस्यों और बच्चों के लिए ही नहीं अपितु पार्थ-सारथी के लिए सिल्क की धोती और लक्ष्मी जी के लिए सिल्क साड़ी भी खरीदते थे। दीपावली के दिन उत्सव-मूतिलम्बाहर शोभायात्रा में आतीं और स्त्रियाँ उन पर छज्जे से फूलों की बौछार करतीं। पुरुष और बच्चे भगवान्

का गली में स्वागत करते और धोती इत्यादि अन्य कपड़े चढ़ाते। इसके बाद वे मन्दिर वापिस चले जाते और विग्रह उपहारों से ढक जाते।

भक्तिविकास स्वामी: इन सबका वे क्या करते थे? वे इसे भण्डार में रखते थे?

रसराज: हाँ। विग्रहों को हर रोज़ तैयार किया जाता था। इसलिए इन भेंट किए हुए कपड़ों का उपयोग किया जाता था।

भक्तिविकास स्वामी: क्या भगवान् को चढ़ाने के बाद ब्राह्मण पुजारी भी कुछ कपड़े ले लेते थे?

रसराज: मुझे इसके बारे में नहीं मालूम। मुझे याद है मेरी माता जी हमेशा नया कपड़ा डालने से पहले लक्ष्मी जी को चढ़ाती थीं।

भक्तिविकास स्वामी: क्या इसे मन्दिर में चढ़ाया जाता था?

रसराज: घर पर। जो कोई भी साड़ी वे लेकर आतीं, वे इसे मन्दिर में दो तीन दिन के लिए रख देतीं। फिर वे इसे लेकर पहनतीं। *ईशावास्यम् इदं सर्वम्:* इस सिद्धान्त को अपनाया जाता था, ''हर वस्तु भगवान् की है।''[७८] दूसरे शब्दों में बिना भोग लगवाए किसी भी वस्तु का उपयोग नहीं किया जाता था।

भक्तिविकास स्वामी: भगवद्-केन्द्रित जीवन।

रसराज: चाहे लोगों को इसके पीछे सिद्धान्त नहीं मालूम था, किन्तु उनके जीवन में यह दर्शन झलकता था।

भक्तिविकास स्वामी: श्रील प्रभुपाद ने कहा है कि आधुनिक हिन्दुत्व, बिना सिद्धान्त की वैदिक संस्कृति है। सिद्धान्त का ज्ञान आवश्यक है। जब तक आचार्य, एक प्रबल आध्यात्मिक नेता, सही सिद्धान्त नहीं सिखाता, यह खो जाता है और हर चीज़ बिगड़ जाती है।

रसराज: हाँ आप ठीक कहते हैं। मैं आपको बताऊँगा कि बिना अच्छी दार्शनिक समझ के किस प्रकार संस्कृति सरलता से बिगड़ या नष्ट हो जाती है। कई भारतीय

---

७८ ईशोपनिषद् से उद्धरण।

बिना दर्शन के, केवल सीख से शाकाहारी हैं। जब वे विदेश जाते हैं तो विदेशियों की नकल करके मांसाहारी बन जाते हैं। उन्हें यह मालूम ही नहीं होता कि वे भारत में शाकाहारी क्यों थे, इसलिए वे इसे नए सामाजिक परिवेश में ढलने के रूप में देखते हैं। वे दफ्तर या ऐसे ही किसी सामाजिक अवसरों पर जाते हैं और सबको मांस खाते हुए देखते हैं, इसलिए वे भी, यह सोच कर मांस खाते हैं कि यह एक सामाजिक प्रथा है। वे यह अनुभव ही नहीं करते कि यह कितना गलत हैं।

कुछ लोग किसी न किसी तरह से शाकाहारी बने रहते हैं, किन्तु इससे वे आध्यात्मिक नहीं बन जाते। श्रील प्रभुपाद ने कहा है कि बन्दर भी शाकाहारी हैं। आध्यात्मिक जीवन के लिए यह जरूरी है, किन्तु पर्याप्त नहीं। जब आप भक्त बन जाते हैं, तो आप श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों से दार्शनिक और आध्यात्मिक आधार पर सीखते हैं कि क्यों मांस नहीं खाना चाहिए। अंग्रेजी का मीट शब्द संस्कृत या भारत की अन्य भाषाओं में मांस है। यह दो शब्दों के योग से बना है मां (मैं) और स: (वह)। इसलिए मांस का अर्थ हुआ: ''जैसे मैं तुम्हें (पशु को) मारकर खा रहा हूँ, उसी प्रकार तुम्हें भी किसी जीवन में मुझे मारकर खाने का अवसर मिलेगा।'' मांस खाने वाला विशेषरूप से पापकर्म इकट्ठे कर रहा है। इसलिए यदि आप चिकन खाते हैं, आप चिकन के रूप में पैदा होंगे और खाए जाएँगे। मांस खाने वाले के बारे में क्या कहना। मनु वर्णन करते हैं कि जो पशु हत्या करता है, इसे बाजार तक ले जाता है, जो बेचता है, जो पकाता है, जो खाता है सभी को पापकर्म लगता है। किन्तु भक्त के मांस न खाने के पीछे कारण है कि वे भगवान् कृष्ण को अर्पित किए बिना कुछ भी नहीं खाते। और हम भगवान् कृष्ण को केवल शाकाहारी वस्तुओं का ही भोग लगवा सकते हैं। यह भगवद्गीता में वर्णित है।

अभी पीछे ही मैं हवाई जहाज से मुम्बई से दिल्ली जा रहा था और मेरे आगे की सीट पर बैठे व्यक्ति ने देखा कि जहाज में परोसे जाने वाले भोजन को मैं नहीं ले रहा। तो उसने मेरी ओर देखा तथा कहा, ''मैं जानता हूँ, इस्कॉन के भक्त भगवान् कृष्ण को भोग लगवाया हुआ भोजन ही खाते हैं, नहीं?'' मैंने कहा, ''नहीं।'' वह सचमुच विचलित हो गया। तो मैंने वर्णन किया, ''हम ऐसा

कोई भोजन नहीं खाते जो कृष्ण के लिए न बना हो!'' भोग तो बाद में लगता है। तब हम ग्रहण करते हैं।

यदि कोई दर्शन और आध्यात्मिक कारण समझ लेता है, तो मांस खाने की बात तो छोड़िए, वह शाकाहारी भोजन भी नहीं खाएगा, यदि इसे प्रेमपूर्वक भगवान् के लिए नहीं बनाया गया और न ही भोग लगवाया गया है।

फिर भी जब कोई बचपन से ही शाकाहारी है तो उसके लिए बदलना आसान है: ''जैसी संगत, वैसी रंगत।''

भक्तिविकास स्वामी: *संगात् संजायते काम:।*[७९]

रसराज: हाँ। आप भटक सकते हैं और आपको पता भी नहीं चलेगा। इसलिए बिना दर्शन के, संस्कृति बहुत ही जल्दी नष्ट हो सकती है। सभी संस्कृतियाँ किसी न किसी प्रकार के दर्शन पर आधारित हैं। आधुनिक भौतिकवाद भी फ्रॉयड, ह्यूम और रसल जैसे नास्तिकों के दार्शनिक विचारों से विकसित हुआ है। किन्तु असली मूल्यों की संस्कृति केवल तभी जीवित रह सकती है, यदि यह भगवान् के सकारात्मक ज्ञान पर आधारित हो।

यह ज्ञान भारत में महान विज्ञान के रूप में सर्वश्रेष्ठ शिखर तक पहुँचा। संसार इस ज्ञान के एक कण को भी छू नहीं पाया। यह उन्नत संस्कृति संसार का बहुत कल्याण कर सकती है। लेकिन इस बेतुके मिकी-माऊस, इन्द्रिय-भोग में लगने की गलत पाश्चात्य जीवनशैली ने इस संस्कृति को कपटता से नष्ट कर दिया है। यह महानतम् विपदा है और हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस पागलपन को रोकें। हमें लोगों को वास्तविक दर्शन देकर लोगों को जीवन का उद्देश्य दिखलाना है। यह इस्कॉन का महत्वपूर्ण कार्य है। वैदिक संस्कृति के जो कुछ अवशेष अभी भी बचे हैं, हम उसमें अपना योगदान दे सकते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: आप के पालन-पोषण में कई पारम्परिक शिक्षाएँ थीं। बाद में आप अमरीका चले गए और वहाँ आपने एक प्रकार का रहन-सहन अपनाया, किन्तु अंततः आप कृष्णभावनामृत में पूरी तरह से आ गए।

७९ भगवत् गीता (2.62) से: ''संग से इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं।''

रसराजः मुझे लगता है *अज्ञात-सुकृति* के कारण मैंने श्री वैष्णव परिवार में जन्म लिया, किन्तु मेरे पापपूर्ण स्वभाव वश प्रारम्भ में मैं शुरू से इसका पूरा लाभ न ले सका।

भक्तिविकास स्वामीः सम्प्रदाय में शिक्षा का अभाव भी एक कारण है।

रसराजः हाँ, किन्तु इसे मैं अपने जीवन के पापों का कारण मानता हूँ।

भक्तिविकास स्वामीः पिछली सुकृतियाँ आपको इतनी दूर ले आईं, किन्तु पर्याप्त रूप से नहीं।

रसराजः आप बिल्कुल ठीक कहते हैं। लोग आजकल यह भी नहीं समझते कि भारत में जन्म लेना कितना महान वरदान है। वे इस दुर्लभ और अमूल्य अवसर की उपेक्षा कर रहे हैं। कई नौजवान अमरीका गए और विदेशीकरण के साथ उन्होंने सारी नैतिकता खो दी। किन्तु जब वे यहाँ आएँगे,जब वे श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में दिए दर्शन को सीखेंगे, तब वे समझेंगे कि कैसे उन्होंने अपने पापपूर्ण स्वभाव के कारण आध्यात्मिक सिद्धि का शानदार अवसर गँवा दिया है। निःसन्देह यह कहना फैशन बन गया है कि, ''भगवान् हर जगह हैं।'' किन्तु तब हमें पूछना चाहिए, ''वे भगवान् कौन हैं जो हर जगह हैं?'' सकारात्मक ज्ञान आवश्यक है।

यह ज्ञान हर स्थान और हर परिस्थिति में उपयुक्तहै। उदाहरणतः चाणक्य पण्डित कहते हैं यदि कोई अपना जन्म स्थान छोड़कर किसी और गाँव में बसता है तो वह उसके पापों के कारण है। यदि ऐसा है तो किसी दूसरे देश की बात तो छोड़ ही दें। यह किसी पुरानी दकियानूसी बात की तरह लग सकता है, किन्तु ऐसा नहीं है। इसमें कोई शक नहीं है कि जो भी भारतीय विदेश जाते हैं, वे दूसरे दर्जे के नागरिक बनते हैं। जब भारतीय विदेशों में जाते हैं तो वे सोचते हैं कि वे भारत तथा विदेश की सर्वश्रेष्ठ वस्तु ले लेंगे। किन्तु असल में उन्हें दोनों की सबसे घटिया चीज़ें मिलती हैं।

अमरीका में सबसे सफल भारतीयों में से कुछ ने मुझे बताया कि भारतीय होने के कारण वे इससे ज्यादा तरक्की नहीं कर सकते। मैंने भी देखा है कि कई

रिटायर भारतीय सज्जन अमरीका जाते हैं और अपने पुत्र या पुत्रियों के कारण वहीं बस जाते हैं। किन्तु जल्द ही उन्हें इस बात का आभास हो जाता है कि अमरीका में जैसे उनका कोई अस्तित्व ही नहीं है, जबकि भारत में वे कई मित्रों और रिश्तेदारों के साथ सामाजिक रूप से महत्वपूर्ण थे। और यह केवल अमरीका में ही नहीं, सब जगह है। कई विदेशी जो भारत आते हैं और भारतीय संगीत या कुछ और सीखते हैं, किन्तु वे कभी भी भारतीय संगीतज्ञ की भांति सुविख्यात या आदरणीय नहीं हो सकते।

विदेशों में रह रहे भारतीयों का हवाला देते हुए एक बार श्रील प्रभुपाद ने कहा था कि कृष्ण ने केवल बड़े सूअरों को समुद्र पार करने की आज्ञा दी है।

भक्तिविकास स्वामी: प्रभुपाद ने ऐसा कहा?

रसराज: हाँ, एक भक्त ने मुझे यह कहा था। मेरे विषय में यह बिल्कुल सच है। आज भी कई धार्मिक लोग हैं जो विदेश जाने से मना कर देते हैं। मुझे याद है जो मैंने पढ़ा था कि कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष, कमलपति त्रिपाठी, कभी भारत छोड़कर नहीं गए, क्योंकि उनके पास गोपाल जी के विग्रह थे और उन्हें रोज़ पूजा करनी होती थी। इस प्रकार चाहे वे बहुत बड़े नेता थे और बाहर जाने के उनके पास कई न्यौते थे, फिर भी वे कभी नहीं गए। उन्होंने कहा था, ''मुझे शायद वहाँ गोपाल जी की पूजा के लिए उचित सामग्री न मिल पाए। मैं उन्हें पीछे नहीं छोड़ सकता। इसलिए मैं नहीं जाऊँगा।'' वे कांग्रेस पार्टी के अध्यक्ष थे, पूरा जीवन एक नेता, किन्तु वे कभी भी बाहर नहीं गए।

मैं ऐसा नहीं कह रहा है कि किसी को विदेश नहीं जाना चाहिए। किन्तु हमें कम से कम वैदिक संस्कृति का पालन करने वालों के स्तर को समझना और मानना चाहिए। तब यदि हम इसका पालन नहीं भी कर पा रहे तब भी हम उनकी प्रशंसा कर सकते हैं, और यदि हम उनकी प्रशंसा भी नहीं कर सकते, तो कम से कम उन्हें समझ तो सकते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: अट्ठाहरवीं सदी में जयपुर के एक राजा इंग्लैंड गए थे। वे समुद्री जहाज में दो बड़े कलश साथ ले गए जिनमें गंगा का पानी भरा था। जब

वे इंग्लैंड में थे तो वे अन्य कोई पानी नहीं पीना चाहते थे। वे कलश आज भी जयपुर के महल के संग्रहालय में हैं।

रसराज: क्या यह अचरज भरा नहीं है ? आजकल जब विदेशी भारत आते हैं तो वे भारत का पानी पीने में बहुत सावधान रहते हैं और यहाँ दो सौ वर्ष पहले राजा थे जो विदेश का पानी भी नहीं पीना चाहते थे। यह दिखाता है कि अपनी संस्कृति और प्रथाएँ छोड़ने के कारण हमारा कितना पतन हो चुका है।

कई बार मैं सुमति मोरारजी के पास बात करने जाया करता हूँ।[८०] वे पुराने अमीर घराने से हैं। ये पुराने परिवार संस्कृति को संजोए रखते हैं। उन्होंने बताया कि ''भारत छोड़ो'' आन्दोलन उनके घर से शुरु हुआ था। मोती लाल नेहरू, गांधी और अन्य नेता उनके घर आया करते थे। इस प्रकार वे समाज में इन नेताओं से व्यवहार करने की काफी अभ्यस्त थीं। उन्होंने मुझे बताया कि एक बार त्रवंकोर के राजा और उनकी आठ पत्नियाँ उनके यहाँ रही थीं। नि:सन्देह उनका घर बड़े बड़े बगीचों के साथ बहुत बड़ी हवेली थी। राजा के पास अब शासन नहीं था किन्तु उन्हें देखकर वह समझ सकती थीं कि राजसी जीवन किस प्रकार होता है।

पहली सुबह, राजा की रानियों ने खाना बनाया। एक रानी बगीचे में पत्ते चुनने गई और खाने की पत्तल और हर प्रकार के दोने उन्हीं पत्तों से बनाए। एक अन्य रानी फूल इकट्ठे करने गई और फूलों से सारी सजावट की। इस प्रकार हर रानी ने अपने हाथों से कुछ न कुछ सेवा की और अंत में उन्होंने राजा को नाश्ता परोसा। सुमति मोरारजी ने कहा कि वे समझ गईं, ''राजा के लिए उपयुक्त भोजन'' क्या होता है। वातावरण एकदम उचित था। उनके पास साफ, सुन्दर थाली और दोने थे और हर चीज़ — आकर्षित फूल, सुगन्ध सब कुछ बढ़िया ढंग से व्यवस्थित। उन्होंने कहा मैं यह भी समझ गई कि रानी होने का मतलब क्या था। वे बहुत ही प्रशिक्षित थीं। वे ऐसे लोग नहीं थे जिन्हें मालूम ही नहीं था क्या करना है। उनके पास नौकर थे, किन्तु वे स्वयं राजा की सेवा कर रही थीं और वे जानती थीं कि उनकी किस प्रकार देखभाल करनी है। उन्होंने कहा कि

८० मुम्बई की एक प्रसिद्ध स्वर्गीय महिला व्यापारी।

जब मैंने उनकी सभ्यता का स्तर देखा तो मैं दंग रह गई। और सुमति मोरारजी स्वयं भी परम्परा से अनभिज्ञ नहीं थीं।

पीछे मुड़ कर देखता हूँ, तो मैं कह सकता हूँ कि मैंने वैदिक सभ्यता को अपनी आँखों के सामने बिखरते देखा है। मैं उस आखिरी पीढ़ी के लोगों में से एक हूँ जिनका एक पैर परम्परा में तो दूसरा जीवन को बर्बाद करने वाली आधुनिक जीवनशैली में है। मैं वैदिक सभ्यता के सभी बाह्य सजावट वाले वातावरण में पला बढ़ा। मैंने छः साल स्कूल में संस्कृत सीखी, किन्तु मुझे यह पता नहीं चला कि मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ। इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि मेरी पारम्परिक परवरिश संस्कृत सीखने तक सीमित थी किन्तु असल में मुझे संस्कृत सीखने का वास्तविक उद्देश्य नहीं मालूम था। इसलिए जब हमारी पीढ़ी कॉलेज जाती है, तो बहुत जल्दी पश्चिमी (विदेशी) रंग ढंग अपना लेती है। अतः जब तक हम भारतीय इस भगवद्गीता के संदेश को गम्भीरता से नहीं लेते तब तक अनजाने में शायद हम अपनी ही संस्कृति से विश्वासघात करते रहेंगे।

आजकल यह बिल्कुल आम बात हो गई है कि पति-पत्नी, चाहे उनके सम्बन्ध अच्छे हों, विभिन्न शहरों में कमाने के लिए अलग अलग काम करते और रहते हैं। और ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में हर दूसरा विवाह असफल है। जब मैं छोटा बच्चा था, तो पुणे में तलाक की ख़बर अखबार में छपी थी। क्या आप कल्पना कर सकते हैं? यह बहुत बड़ी ख़बर थी, क्योंकि तलाक मेरे बचपन के समय भारत में था ही नहीं और यह पचास का दशक था।

तलाक को ''उचित'' ठहराने के लिए लोग कहते हैं, ''जबरदस्ती इकट्ठे रहकर क्या फायदा यदि हम खुश ही नहीं हैं?'' यह दिखाता है कि हम जीवन का असली उद्देश्य, आध्यात्मिक प्रगति भूल चुके हैं। पहले भारतीय हर स्थिति को विशाल उद्देश्य के दृष्टिकोण से देखते थे। आपको बुरे पत्ते मिल सकते हैं, किन्तु ताश की गड्डी में हाथ डालकर आप पत्ते बदल नहीं सकते। आपको केवल उन बुरे पत्तों से ही खेलना पड़ेगा जो आपके पास हैं।

भक्तिविकास स्वामीः अपनी किस्मत को स्वीकारो।

रसराजः यही है। उन्हें धर्म की समझ थी। लोग सिद्धान्तों के अनुसार जीवन के हर पहलू का निर्णय लेते थे और अपने जीवन को उसमें ढाल लेते थे। ''जहाँ मैं हूँ वहाँ अपने पिछले जन्मों के कर्मों के कारण हूँ और मुझे इस प्रकार काम करना है कि मेरा भविष्य उज्जवल हो।'' वे जीवन को संकीर्ण दृष्टिकोण की जगह, बहुत ही विशाल परिपेक्ष में देखते थे। वे जानते थे कि उनका यह जीवन पिछले कई जन्मों का क्रम है।

भक्तिविकास स्वामीः किन्तु पुर्नजन्म का सिद्धान्त कई बार चुनने की स्वतन्त्रता को रोकने के बहाने के रूप में प्रयोग किया जाता है। क्या उनके जीवन कहीं न कहीं पहले से ही निश्चित नहीं थे? क्या उन्हें इस प्रकार की सोच को ग्रहण नहीं करना चाहिए क्योंकि उनके पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प ही नहीं है? क्या आधुनिक समाज इधर-उधर जाने की और जो कुछ भी आप करना चाहते है करने की आजादी नहीं देता?

रसराजः हाँ, मुझे यह तर्क मालूम है: ''पुराने दिनों में कोई विकल्प नहीं होता था, इसलिए लोग इकट्ठे रहते थे। यदि आप उन्हें विकल्प देंगे, तो कितने लोग इकट्ठे रहेंगे?'' यह बिल्कुल गलत नहीं तो भी बहुत मूर्खतापूर्ण तर्क है। तर्क के लिए मान लीजिए कि पुराने समय में विवाह बंधन को बनाए रखा जाता था क्योंकि यह सामाजिक मजबूरी थी। इसलिए आधुनिक समाज ने इसका क्या विकल्प दिया? नतीजे देखिए। विदेशों में तलाक की दर 70 प्रतिशत है। जब मैं जर्मनी में था तो मैंने सुना कि तालाक की दर 85 प्रतिशत है। इसलिए वे चाहे कुछ भी कहें, किन्तु आंकड़े स्वयं साक्षी हैं। पुराने जमाने में लगभग 100 प्रतिशत विवाह सफल थे। अब यह बिल्कुल इसके विपरीत है।

इसलिए कौन सी व्यवस्था सफल है और क्यों? यदि आप किसी कस्बे में छोटी व्यापारिक यात्रा पर हैं तो आप सबसे बढ़िया होटल लेने का प्रयास करते हैं। यदि आपको नहीं मिल पाता, तो आप किसी भी जगह पर रहकर अपना काम करते हैं और आ जाते हैं। पहले लोग सादा जीवन जीते थे और मुख्यतः आध्यात्मिक जीवन में प्रगति का प्रयास करते थे न कि भौतिक उन्नति का। इसलिए वे भौतिक दृष्टि से कम अच्छी स्थिति को सहन कर सकते थे। आज,

जब जीवन का उद्देश्य भौतिक दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ स्थिति बनाना है, तो लोग क्यों भौतिक दृष्टि से खराब स्थिति को सहन करेंगे?

बिल्कुल स्थूल स्तर पर भी यह आधुनिक विचार कामयाब नहीं है कि हमें मुक्तरूप से तब तक परीक्षण करते रहना चाहिए जब तक हमें आदर्श साथी नहीं मिल जाता। 60 या 70 के दशक में विदेशों में यह कहना आम था, ''मैं श्रीमान् उपयुक्त या श्रीमती उपयुक्त की तलाश में हूँ,'' और साथ ही कोई भी किसी के साथ मनमर्जी से रह सकता था। यदि वह उपयुक्त व्यक्ति नहीं होता था, कोई बात नहीं — और कोई सही, एक और परीक्षण।

थोड़े समय पहले ही मैं भारतीय समाचार पत्र के साप्ताहिक मैगज़ीन खण्ड में पढ़ रहा था, चाहे मैं आमतौर पर समाचार पत्र देखता भी नहीं हूँ। एक तीस वर्ष की महिला ने इस प्रकार कहा, ''मैं अपने अपार्टमैंट में अकेली रहती हूँ। मुझे अपने पड़ोसियों के बारे में नहीं मालूम और न ही मैं मालूम करना चाहती हूँ। मैं जिस पुरुष के साथ भी जाना चाहती हूँ, जाती हूँ। मेरी माता अपने पति के अलावा किसी अन्य पुरुष को नहीं जानतीं और मेरी जीवनशैली से दंग हैं, किन्तु मैं परवाह नहीं करती। वह केवल गाँव की औरत है।'' इस पर विचार कीजिए कि अब वह शहरी लड़की बन गई, इसलिए ज्यादा सभ्य है, किन्तु उसके काम कहीं से भी उच्च सभ्यता को नहीं दिखाते।

इस प्रकार का असभ्य जीवन हर जगह फैल रहा है। अब एड्स का खतरा, डॉक्टर लोगों को सलाह दे रहे हैं कि वे एक ही साथी के साथ रहें। क्या यह ऐसा नहीं है जिससे वे भाग रहे थे? या तो भगवान् के नियमों का स्वेच्छा से पालन करो या प्रकृति आपको इनका पालन करने के लिए बाध्य कर देगी। श्रील प्रभुपाद ने उदाहरण दिया है कि एक नागरिक राज्य के नियमों को स्वेच्छा से पालन कर सकता है और आजाद नागरिक बन सकता है या उसे जेल में राज्य के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य किया जाएगा।

किसी को भी अंधाधुंध झूठे प्रचार को नहीं मानना चाहिए, ''ओह, पारम्परिक समाज में बहुत सी समस्याएँ हैं, इसलिए हमें विकल्प ढूँढना चाहिए।''

यह सत्य हो सकता है कि हमें बीमारी है और इलाज की आवश्यकता है किन्तु क्या आप इलाज करने के योग्य हैं? यदि नहीं, तो आप इसे और भी बिगाड़ देंगे। इसलिए वे किसी चीज़ को बुराई मान सकते हैं और उसका इलाज करने का प्रयास कर सकते हैं किन्तु वे उसी सिद्धान्त को एक बुरे रूप में दोबारा ले आएँगे। जैसा कि मैंने पहले कहा था, वे पहले से निश्चित विवाह नहीं करना चाहते जिसमें आपको सारा जीवन एक ही पुरुष के साथ रहना पड़ेगा और उन्होंने परीक्षण करना शुरु कर दिया। अब एड्स आ गया और वापिस विवाह के उसी सिद्धान्त पर आ गए हैं, ''एक व्यक्ति एक साथी।'' और यह सिद्धान्त पूरी तरह से भौतिकतावादी है। यह लोगों के जीवन से किस प्रकार का बकवास परीक्षण है?

मैं आपको एक अन्य उदाहरण देता हूँ कि जिससे विषय की सही नब्ज पकड़ी जा सके। जब मैं अमरीका रह रहा था तो किसी ने मुझसे पूछा, ''क्या यह सच है कि भारत में बाल विवाह हैं?''

मैंने कहा, ''हाँ। मेरी माता जी का विवाह ग्यारह वर्ष की आयु में हुआ था।

उन्होंने कहा, ''क्या यह बर्बर नहीं हैं?''

अब, यह अधिकांश भारतीयों को पीछे धकेल देगा। यदि आप खोखले विदेशी मानसिकता वाले भारतीय लेखक से प्रभावित ढोंगी बुद्धिजीवी हैं तो आप तुरन्त सहमत हो जाएँगे। किन्तु उस समय मैंने श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें पढ़ना आरम्भ कर दिया था। इसलिए इसका अच्छा जवाब दे पाया। पहले से ही 70 के दशक के अंत में डैट्राइट के हाई स्कूलों में गर्भवती स्कूल की लड़कियों के लिए अलग से विश्राम कक्ष होते थे।

इसलिए मैंने पलट कर जवाब दिया, ''क्या यह सच है कि अमरीका में ग्यारह या तेरह वर्ष की लड़कियाँ गर्भवती हो जाती हैं?

उन्होंने कहा, ''हाँ।''

तो फिर मैंने उनसे कहा, ''तो क्या बर्बर है, बाल विवाह या बाल गर्भधारण?'' उत्तर उन्हें स्पष्ट था।

भारतीय विदेशों की नकल करने में इतने व्यस्त हैं कि उन्होंने बाल-विवाह को त्याग दिया है, किन्तु अब उन्हें अवैध बाल गर्भधारण स्वीकार करना होगा। यह पहले से ही हो रहा है। यदि हम लड़के और लड़कियों को बिना रोक टोक के मिलने देंगे तो हम और क्या आशा कर सकते हैं ?

और भारत में विवाह बेशक जल्दी कर दिए जाते थे, किन्तु लड़की ससुराल केवल तब जाती थी जब वह सोलह वर्ष की या इससे बड़ी हो जाती थी। छोड़िए, बात यह है — कोई भी राह चलता वैदिक सभ्यता की आलोचना करने को तैयार है — तो वे इसके गहरे आध्यात्मिक आयाम को भी समझने का प्रयास करें। पहली बात है कि वे समझें और मुख्य आध्यात्मिक सिद्धान्तों का पालन करें। इस जगह मुख्य सिद्धान्त है सतीत्व। आधुनिक समय के बदले हुए हालातों के अनुरूप इस सिद्धान्त में थोड़ा फेरबदल कर इसे अपनाया जा सकता है। किन्तु सिद्धान्त को पूरी तरह त्यागा नहीं जा सकता।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि कई भारतीय या वैदिक सभ्यता की पारम्परिक प्रथाएँ, गहरे आध्यात्मिक विषय से हट गई हैं और आधुनिक समय में ये पतित होकर घृणित हँसी का पात्र बन कर रह गई हैं। केवल जन्म पर आधारित जाति प्रथा, बाल-विवाह और दहेज इसके उदाहरण हैं। किन्तु इनके गहरे अंतर्निहित सिद्धान्त हैं, जो घृणित नहीं अपितु सकारात्मक रूप से पवित्र हैं, जो जीवन के आध्यात्मिक उद्देश्य, भगवद्प्रेम को विकसित करने के लिए हैं।

अत: मैं यह तर्क नहीं दे रहा कि हमें वापिस जाकर पुराने जमाने के लोगों की तरह जीवन जीना चाहिए। सच कहूँ तो यह संभव नहीं है। फिर भी हम अपनी सभ्यता के मूल सार अर्थात् मनुष्य जीवन का उद्देश्य आध्यात्मिक सिद्धि प्राप्त करना है, का त्याग नहीं कर सकते। पुरातन जीवनशैली और आधुनिक जीवन बर्बाद करने की शैली की तुलना में मैं यह बात रखना चाहता हूँ।

हमें समस्या का समाधान करना चाहिए, न कि ''बच्चे को नहाने के पानी के साथ ही फैंक दो।'' श्रील प्रभुपाद जानते थे कि किस प्रकार पुरातन प्रथाओं को आधुनिक युग में पूरी तरह से उपयुक्त और व्यवहारिक रूप से लाया जाए।

उन्होंने हमें बताया कि चार नियमों का पालन करो — मांस, मछली या अण्डे नहीं खाना; कोई नशा, चाय या कॉफी नहीं पीनी; अवैध सम्बंध नहीं बनाना; और जुआ नहीं खेलना — हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे, हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, महामंत्र का जप करो और थोड़ी बहुत रोज़ भगवद्गीता यथारूप पढ़ो। इसके अतिरिक्त अन्य जो कोई भी कार्य आपको आधुनिक समय में करने पड़ते हैं आप करो। आपकी आध्यात्मिक प्रगति होगी।

इस प्रकार आधुनिक सभ्यता को हमारी चुनौती है और विशेषकर हिन्दुओं को: इस प्रकार के आवश्यक आध्यात्मिक जीवन को अपनाने में आपको क्या आपत्ति है — हरे कृष्ण का जप, चार नियमों का पालन और भगवद्गीता यथारूप पढ़ने में क्या मुश्किल है? इसलिए हम कहते हैं पुरातन भारतीय सभ्यता की आलोचना करना बंद करो, जिसे आप नहीं समझ पाते और विदेशी सभ्यता की अंधाधुंध नकल करना रोको, क्योंकि वह भी आपकी समझ से परे है। केवल इस मूल कार्यक्रम को अपना लो, जो आम समझ से भी उचित जान पड़ता है। क्या आपत्ति हो सकती है?

भक्तिविकास स्वामी: आप आलोचना कर रहे थे कि भारतीयों ने दार्शनिक समझ खो दी है। आज जो कुछ संस्कृति का वे पालन करते हैं वह बिना सोचे समझे है या आदतन है और थोड़े से भटकाव में भी इसे त्याग दिया जाता है। इसलिए उन्हें कम से कम श्रील प्रभुपाद की पुस्तकें पढ़नी चाहिएँ और जप और चार नियमों के सिद्धान्त को अपनाना चाहिए।

रसराज: हाँ। नए स्वतंत्र भारत में हमें तकनीकी विकास ने मोहित कर लिया है और नेहरू का नारा था, ''उद्योग लाओ या मरो।'' अब हमने औद्योगिकीकरण कर दिया है और आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक रूप से नष्ट हो चुके हैं, अब हम अलग नारा देते हैं: ''पुन: भक्ति करो या मरो!''

भक्तिविकास स्वामी: केवल भारत के लिए ही नहीं अपितु विदेशों के लिए भी।

रसराज: नए स्वतंत्र भारत का नारा था कि ''पहले आर्थिक प्रगति करो, तभी गरीब लोग धर्म का पालन कर पाएँगे।'' किन्तु वैदिक मत में पहले धर्म है फिर

अर्थ, इसके विपरीत नहीं है।[८१] यदि हमारे पास धर्म है तो धन आएगा, किन्तु यदि हम धन के पीछे भागेंगे तो अधर्म पीछे आएगा।

इस प्रकार वे यह सोचकर अपने आप को ठग रहे हैं कि हम आर्थिक रूप से विकसित होकर, दोबारा धार्मिक हो जाएँगे। एक बार एक कॉलेज में एक विद्यार्थी ने मुझे चुनौती दी, ''कई लोग भारत में भूखे मर रहे हैं। क्या मन्दिर में भगवान् को इतनी सारी अच्छी चीज़ें देने से यह अच्छा नहीं है कि हम उन्हें भोजन दें?''

मैंने कहा, ''ठीक है, किन्तु तब आपको इसके लिए भी सहमत होना होगा कि अन्य कई कार्य जैसे फिल्म बनाना, सिगरेट तथा शराब बनाना, घुड़-दौड़, क्रिकेट इत्यादि रोकने चाहिएँ। इन सब पर खर्च होने वाले करोड़ों रुपए भूखों को खिलाने में खर्च होने चाहिएँ। आप इनको रोकने के लिए अभियान शुरु क्यों नहीं करते? इसके अतिरिक्त आप कृष्ण को जो अर्पित करते हैं, वे इसे अपने पास भी नहीं रखते। वे पूरा और आध्यात्मिक बनाकर इसे कृपापूर्वक वापिस दे देते हैं। आप केवल भगवान् को कुछ भोग लगवाने की ही शिकायत क्यों करते हैं?'' वे उत्तर में एक शब्द भी नहीं बोल पाए। वे चुपचाप बैठ गए।

यह केवल झूठा प्रचार है। करोड़ों भूखों की सहायता उनका असली मकसद नहीं है। यदि ऐसा होता, तो वे सरकार और अधिक अच्छे ढंग से और ईमानदारी से चला रहे होते। असल में पहले उन्होंने भुखमरी की स्थिति बनाई और अब वे इसका उपयोग भगवान् की पूजा का विरोध करने के लिए करते हैं। वे विवाद कर सकते हैं कि, ''हमने यह समस्या पैदा नहीं की। धर्म ने जो समाज को नुक्सान पहुँचाया है उसे ठीक करने में समय लगेगा।'' ऐसे बयान कोरी बकवास है। जिसके पास आँखें हैं, वह स्पष्ट देख सकता है कि उनकी व्यवस्था के अधीन देश पिछले पचास वर्षों में बदतर हो गया है।

इस प्रकार क्रमशः आध्यात्मिक प्रथाओं की मूल समझ और इसकी वास्तविक महानता खो गई है और संस्कृति पूरी तरह से नष्ट होने के कगार पर

---

८१ अर्थ - आर्थिक विकास।

है। यह इसलिए है कि सभी प्रथाओं के होने पर भी बच्चों की परवरिश बिना आध्यात्मिक शिक्षा के हो रही है। मेरा अपना जीवन इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। मेरी श्री वैष्णव पृष्ठभूमि होने के बावजूद मुझे कर्म और पुनर्जन्म के बारे में तब तक मालूम नहीं था जब तक मैंने अमरीका में इस पर पुस्तक नहीं पढ़ी।

भक्तिविकास स्वामी: (हैरान होते हुए) आपने अमरीका जाने से पहले कभी कर्म और पुनर्जन्म के बारे में नहीं सुना था?

रसराज: बेशक मैंने कर्म शब्द सुना था। लोग इस प्रकार से कहते थे, ''यह उसका कर्म था।'' मुझे याद है जब मैं छोटा बच्चा था, और हम में से कोई भी बच्चा यदि कोई बहुत बड़ी शरारत कर देता, तो मेरी माता जी माथा पीटते हुए कहतीं, ''*प्रारब्धम्*।'' उस समय मुझे लगता था कि यह बच्चों की शरारत पर संस्कृत शब्द है। अब मैं जानता हूँ कि कर्म के फलीभूत होने के कई स्तर हैं और प्रारब्ध उनमें से एक है। उनका, हँसी में, कहने का तात्पर्य होता था कि उनके पिछले बुरे कर्मों की वजह से ऐसा शरारती बच्चा मिला है। इसी प्रकार मैंने पुनर्जन्म जैसे शब्द सुने और समझे होंगे और इससे सम्बन्धित कहानियाँ बड़े होने के साथ-साथ सीखी। किन्तु मुझे इसका जरा भी भान नहीं था कि किस प्रकार कर्म और पुनर्जन्म मुझे प्रभावित कर रहे हैं। इन चीजों के बारे में मैंने अमरीका में आकर उस पुस्तक में पढ़कर सीखा कि इसकी दार्शनिक और आध्यात्मिक धारणाएँ क्या हैं, जो मेरे अपने अस्तित्व से महत्वपूर्ण ढंग से जुड़ी हैं। क्या आप कल्पना कर सकते हैं?

भक्तिविकास स्वामी: मैं हैरान हूँ।

रसराज: ऐसा मत होइए। मेरे भक्त बनने के बाद मेरे एक भाई ने, जो इग्लैंड में है, ने मुझे डैटरॉयट मन्दिर में फोन किया और पूछा, ''तुम्हें क्या हो गया है? तुम हरे कृष्ण वालों के साथ क्यूँ लग गए हो?''

मैंने उससे स्पष्ट कहा, ''मैंने सीखा है कि अगला जीवन होता है और यदि मैं यह जीवन सही ढंग से नहीं जीता अपितु पशुओं की तरह रहता हूँ, तो मैं अगले जीवन में पशु या उनसे भी नीचे की योनि में जन्म लूँगा। दूसरी तरफ यदि

मैं अपनी आध्यात्मिक वृत्तियों को विकसित करता हूँ, तो मैं वापिस वैकुण्ठ के पथ पर प्रगति करुँगा, जहाँ भगवान् कृष्ण मेरे जैसी नित्य असंख्य जीवात्माओं के साथ रहते हैं। मैं अपने अगले जीवन में सद्गति प्राप्त करने का प्रयास कर रहा हूँ। इसलिए मैं हरे कृष्ण आंदोलन में शामिल हो गया हूँ।''

उसने कहा, '''अगला जीवन' यह क्या बकवास है ? जब तुम मर जाओगे सब कुछ खत्म। बस।'' मैं दंग रह गया। पहले मैं तो अज्ञानी था, किन्तु मेरा भाई इस प्रकार से बोला कि जैसे कि उसने इस विषय पर बहुत सोच-विचार किया है और अपने आप ही निश्चित नतीजे पर पहुँच गया।''

भक्तिविकास स्वामी: देखिए तो जरा किस प्रकार वे इस ज्ञान को त्याग रहे हैं।

रसराज: हाँ। मैं भी दंग रह गया जब मैंने पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के बारे में सीखा कि यदि मैंने ध्यान नहीं रखा तो मैं नीच योनियों में जा सकता हूँ। मैंने स्वयं से कहा, ''वाह! मैंने कभी जन्म-मृत्यु के चक्र के बारे में नहीं सुना। मुझे इसके बारे में किसी ने क्यों नहीं बताया? क्या आप इसकी कल्पना कर सकते हैं ?

भक्ति विकास स्वामी: मेरे लिए यह समझना बड़ा कठिन है कि श्री वैष्णव परिवार में परवरिश के बावजूद भी आपको कर्म और पुनर्जन्म का थोड़ा सा भी ज्ञान नहीं था कि इसके क्या मायने हैं।

रसराज: कई भारतीय सोचते हैं कि उन्हें पुनर्जन्म के बारे में पता है। किन्तु उन्हें उस पर विश्वास नहीं है। वे नहीं जानते कि उनका अगला जीवन पशु का हो सकता है। यह उसी प्रकार है जैसे एक चोर सोचता है कि वह पकड़ा नहीं जाएगा, चाहे वह जानता है कि इससे पहले कई चोर पकड़े जा चुके हैं। उसी प्रकार कई पुण्यवान हिन्दू पशु या उससे भी नीच योनि में गिरेंगे, यदि वो इसका ख्याल नहीं करेंगे। किन्तु वे इसे स्वीकार नहीं करते। इन कथाओं की अनुभूति के लिए असली आध्यात्मिक ज्ञान चाहिए कि ये हम में से हरेक के लिए हैं।

अपितु वे सोचते हैं कि केवल इन शास्त्रों की कर्म और पुनर्जन्म की कथाओं को सुनना पुण्यकर्म है और ये उन्हें अगले जीवन में स्वर्ग ले जाएँगी। वे सोचते हैं कि इन कथाओं को सुनना पर्याप्त है। वे इस बात की अनुभूति ही नहीं

करते कि उन्हें इन पर अमल करना है। अधिकतर हिन्दू इस पर विचार नहीं करते कि ये किसी ढंग से उन पर लागू होती हैं।

मैं और भी अधिक अबोध था। मैंने यह सब कथाएँ तब सुनीं जब मैं बच्चा था। मेरी माता जी एक बड़े बर्तन से, शायद साम्बर और चावल, हर बच्चे को बारी बारी से चम्मच भरकर रात का खाना परोसतीं और तब तक देते रहते जब तक पूरा बर्तन खाली नहीं हो जाता। तब वे अगली चीज़ देतीं — शायद रसम चावल — फिर दही चावल इत्यादि। और सारा समय वे रामायण या महाभारत से कथा सुनाती रहतीं।

इस प्रकार तथाकथित महान भारतीय संस्कृति में कोई कमी नहीं थी। यह बहुत ही आदर्श जान पड़ता था। मुझे याद है मेरी माता जी कहा करती थीं, ''भोजन बर्बाद मत करो। यदि तुम एक भी दाना बर्बाद करोगे, तो वह दाना वैकुण्ठ में विष्णु के पास जाकर रोएगा, ''मुझे खाया नहीं गया।'' आज पीछे मुड़कर देखता हूँ, तो मुझे लगता है कि इससे हमें यह शिक्षा मिलनी चाहिए थी कि हमें प्रसाद का उचित रीति से आदर करना चाहिए। किन्तु सैद्धान्तिक दृष्टि से भारतीय परम्परा में हमारा प्रशिक्षण शून्य था। यह उसी प्रकार था जैसे एक ही वाक्य को बिना चीनी भाषा जाने चीनी भाषा में दोहराना।

भक्तिविकास स्वामी: आप वैष्णव कुल से हैं। आप जीवन के प्रारम्भ से विष्णु के बारे में जानते और सुना करते थे। किन्तु आप फिर भी विष्णु को सही से समझ नहीं पाए।

रसराज: हाँ ऐसा ही है। बचपन में मैं हर रोज़ विष्णु मन्दिर जाता था किन्तु केवल खेलने के लिये। नि:सन्देह मुझे हर रोज़ प्रसाद मिल रहा था और चाहे मैं नहीं जानता था फिर भी यह मुझे लाभ पहुँचा रहा था। बाद में जब मैं चिदम्बरम में अन्नमलई यूनीवर्सिटी से इंजीनियरिंग करने गया तो मैं हर शुक्रवार को प्रसिद्ध गोविन्दराज मन्दिर दर्शनों के लिए जाया करता था। मैंने यह सोचा हुआ था कि मैं कुछ प्रसाद खरीदूँगा, किन्तु इसलिए कि यह बहुत ही स्वादिष्ट होता था। किन्तु मैंने कभी भगवान् या उनसे अपने सम्बन्ध के बारे में नहीं सोचा। मुझे लगता है कि कहीं मेरी चेतना के किसी कोने में यह बात छुपी हुई थी कि भगवान् एक

व्यक्ति हैं, पर मैंने अपनी सोचने की क्षमता को कभी उस व्यक्ति के विषय पर नहीं लगाया और न ही किसी ने मुझे इसके लिए प्रेरित किया। मुझे पता था कि मेरे घर में विष्णु हैं। वे हमेशा वहाँ हैं और मैं हमेशा उनके कमरे में जाया करता था। किन्तु मेरे पास भगवान् के विषय में कोई वैज्ञानिक ज्ञान नहीं था।

यह ज्ञान आसानी से प्राप्त हो सकता है जब कोई जानता हो और हमें समझाए कि विष्णु प्रत्येक वस्तु के स्त्रोत हैं और हर वस्तु उनकी प्रसन्नता के लिए है। मुझे यह भी याद है कि मेरे पिता जी कहा करते थे, ''जैसे ही वे सांस छोड़ते हैं, कई ब्रह्माण्ड प्रकट हो जाते हैं। जब वे सांस लेते हैं तो करोड़ों ब्रह्माण्ड समाप्त हो जाते हैं।'' इसमें कोई सन्देह नहीं है, यह सच है।

मेरे पिता जी के पास एक विष्णु पुराण नाम की पुस्तक थी, जिसके लेखक विलसन थे। शायद यह उनके ज्ञान का स्त्रोत था। बाद में जब मैं भक्त बन गया, मैं समझ सकता था कि यह पुस्तक पूरी तरह से बकवास है। मुझे याद है जब मैं इसे अपने भक्तिवेदान्त पुस्तकालय में देख रहा था और श्वेतद्वीप क्षीर सागर में भगवान् विष्णु के धाम का वर्णन पढ़ा। सचमुच इसका अनुवाद सफेद द्वीप के रूप में किया हुआ था। किन्तु ये शख्स, विलसन ने इस पर टिप्पणी कुछ इस प्रकार की, ''बहुत विचार-विमर्श करने के बाद, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इसका अर्थ ब्रिटेन का द्वीप है।'' क्या आप सोच सकते हैं? मेरे कहने का अर्थ है, यदि वह सोचे कि यह किसी द्वीप का वर्णन है जहाँ गोरे रहते थे, तो पूरे महाद्वीप जहाँ गोरे रहते थे जैसे युरोप, उनका क्या? कितना छलावा है! कितना घमण्ड! निश्चित ही मेरे पिता जी ने पुस्तक में विलसन के इन शब्दों को स्वीकार नहीं किया होगा, किन्तु सच्चाई यह है कि हमारे शास्त्रों पर सर्वश्रेष्ठ साहित्यिक रूप से मान्यता प्राप्त टीकाएँ बिल्कुल बकवास हैं। किन्तु अधिकतर हिन्दू यह जानते भी नहीं।

जब आप किसी भारतीय को भगवान् के बारे में बताएँगे, तो वे कहेंगे, ''ओह, मैं कृष्ण और राम के बारे में जानता हूँ।'' किन्तु अधिकतर या तो जानते नहीं होंगे या कुछ अज़ीब से विकृत विचार होंगे। बिना सही ज्ञान के, इन सबसे कुछ नहीं होगा। आज सभी प्रथाओं के बावजूद भारत का जिस प्रकार से पतन होता जा रहा है यह इस बात का प्रमाण है। असल में ऐसा प्रतीत होता है कि

हिन्दू अपनी परम्पराओं को त्यागने में मुस्लिमों तथा ईसाइयों से भी ज्यादा तत्पर हैं। हिन्दुओं को यह समझ ही नहीं आ रहा कि जिन लोगों से वे अपनी संस्कृति के प्रति अधिकतर धारणाएँ ग्रहण कर रहे हैं, वे लोग किसी भी कीमत पर इस संस्कृति को नष्ट करना चाहते हैं।

मैं बिना सोचे समझे कर्मकाण्ड के प्रति लगाव की बात नहीं कर रहा। हिन्दुत्व को बिना किसी समझ के कर्मकाण्डों ने बीमार कर दिया है, जिससे स्वभावतः सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक बुद्धि वाले लोग हट गए हैं। मेरा आशय यह है कि हमें आस्तिकता के परम विज्ञान को पुनः समझना चाहिए। यह वैदिक समाज का सम्पूर्ण मानवता के लिए एक योगदान है। यह दर्शन अपने पूर्ण रूप में केवल श्रील प्रभुपाद की पुस्तकों में उपलबध है, इसके अलावा कहीं भी नहीं है। एक प्रकार से इस्कॉन एक प्रचार आंदोलन है जो अपनी परम्परा बना रहा है। किन्तु आंदोलन का मजबूत दार्शनिक आधार है। आज भारत ने मुश्किल से अपनी सांस्कृतिक परम्पराओं को जिन्दा रखा हुआ है और इसका श्रेय केवल हिन्दुओं को जाता है। अब वैदिक पर पराओं का वास्तविक दर्शन, जैसे श्रील प्रभुपाद ने प्रस्तुत किया है, पुरातन संस्कृति के साथ सम्मिलित होना चाहिए और इस प्रकार भारत और पूरे विश्व को लाभ होगा। वैदिक परम्पराओं को जीवित रखने के लिए संस्कृति और सच्चा दर्शन (ज्ञान) दोनों जरुरी हैं।

भक्तिविकास स्वामीः मैं निश्चित ही आपके साथ सहमत हूँ। धार्मिक होने का असली लाभ तब तक नहीं लिया जा सकता जब तक सही दार्शनिक समझ नहीं है जैसे कि आपने चावल के एक दाने की विष्णु को शिकायत वाली कथा बताई। ऐसी कथाएँ बच्चों के लिए अच्छी हैं, किन्तु जब तक बच्चा सही समझ विकसित नहीं कर लेता तब तक यह संभावना बनी रहेगी कि वह बालिग होने पर यह सब त्याग देगा जैसा कि आपके साथ हुआ; जबकि यदि कोई सचमुच समझ जाए कि कृष्ण प्रसाद क्या होता है, तो वह कभी भी इसे न तो फैंकेगा और न ही इसे बर्बाद करने के लिए छोड़ेगा।

इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि आपका प्रशिक्षण सही था जितना कि आपको सही चीज़ें करने के लिए सिखाया गया था। आपको कृष्ण प्रसाद का

आदर करना सिखाया गया, प्रसाद बर्बाद न करना सिखाया गया और लड़कियों से खुलकर न मिलना सिखाया गया — और यह सब चीज़ें आध्यात्मिक प्रगति और सामाजिक विवेक के लिए अच्छी हैं — किन्तु आपका प्रशिक्षण अपूर्ण था क्योंकि आपको सही से यह नहीं बताया गया कि आप ये सब क्यों कर रहे हैं।

रसराजः हाँ। सड़क पर गाड़ी चलाने का उद्देश्य कहीं जाना है। उद्देश्य यातायात के नियमों का पालन करना नहीं है। बेशक, कहीं जाने के लिए आपको यातायात के नियमों का पालन करना पड़ेगा, किन्तु गाड़ी चलाने का यह मुख्य उद्देश्य नहीं है। यदि किसी के पास जाने के लिए कोई गंतव्य नहीं है और वह अच्छी तरह से गाड़ी चलाकर और यातायात के नियमों का पालन करके इधर-उधर घूमे जा रहा है, तो उसका क्या लाभ? कभी न कभी तो वह थकेगा और नियमों का पालन करना छोड़ देगा।

इसी प्रकार, श्रील प्रभुपाद ने सिखाया कि मानव जीवन का उद्देश्य केवल धार्मिक बनना नहीं है। हमें जीवन का उद्देश्य जानना चाहिए और धार्मिक नियमों का पालन करना चाहिए, क्योंकि धार्मिक नियमों का पालन हमें जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करने में सहायता करेगा। जीवन का असली उद्देश्य भगवद्-प्रेम प्राप्त करना है और हर कार्य सीधे उनसे सम्बन्धित करके करना है। जब तक कोई जीवन के आध्यात्मिक उद्देश्य के बारे में समझता और विश्वास नहीं करता, वह आज नहीं तो कल धार्मिक नियमों का त्याग कर ही देगा। और निश्चित रूप से यही हो रहा है।

भक्तिविकास स्वामीः जाति से आपके पिता ब्राह्मण माने जाते थे किन्तु उन्होंने वैश्य का काम, व्यापार कर लिया। आजकल कई जात-ब्राह्मण नौकरी करते हैं जो कि श्रीमद्भागवतम् में ब्राह्मणों के लिए मना है। फिर भी अधिकतर जात ब्राह्मण अपनी संस्कृति को संजो कर रखते हैं, चाहे वे ब्राह्मण के कार्य में रत नहीं भी हों। अभी भी कई शाकाहारी हैं, पूजा करने के लिए जल्दी उठते हैं और संस्कृत की स्तुतियों का उच्चारण करते हैं इत्यादि। इस प्रकार चाहे एक दृष्टि से वे पतित हो चुके हैं, फिर उनकी संस्कृति इतनी उच्च थी कि पतन होने पर भी उच्च हैं। आप क्या कहते हैं?

रसराज: यह सच है कि आधुनिक हिन्दू समाज की संस्कृति संसार की बाकी संस्कृतियों से बेहतर है। किन्तु यह बहुत कुछ कुएँ में सीढ़ी की तरह है। आप सीढ़ी का उपयोग कुएँ में वापिस जाने या उससे बाहर आने के लिए कर सकते हैं। हम अपनी आध्यात्मिक संस्कृति पुन: प्राप्त कर सकते हैं या भौतिक संसार में और फंस सकते हैं। यह एक निर्णय है जिसे हर किसी को अकेले और मिलकर लेना है।

श्रील प्रभुपाद ने उदाहरण दिया है कि आप चाहे कितने ही शून्य इकट्ठे कर दो, तब भी इनका कोई मूल्य नहीं है, पर यदि इन सबके पहले एक (1) लग जाए तब इनका मूल्य है। उसी प्रकार, हम में कई भौतिक गुण हो सकते हैं किन्तु यदि हम इन्हें समझते नहीं है और परमेश्वर कृष्ण की सेवा नहीं करते तो ये सब बेकार हैं। अपितु भागवतम् में वर्णन है, ''किसी व्यक्ति में किस प्रकार अच्छे गुण हो सकते हैं यदि वह कृष्ण का भक्त नहीं है?''

इस प्रकार आपका प्रश्न मेरी इस बात को बल देता है जो मैं अपनी पूरी चर्चा के दौरान लाने का प्रयास कर रहा हूँ: यद्यपि भारत में पुरातन संस्कृति के अंश हैं, लेकिन इसके आध्यात्मिक आधार के प्रति जरुरूक न होने के कारण वे इसके सार को खो रहे हैं और केवल बाह्य चीज़ों में फँसे हैं। उच्च संस्कृति में ब्राह्मण का एक विशिष्ट स्थान था। किन्तु ब्राह्मण ही नहीं अपितु हर किसी में पुरातन परम्पराएँ तेजी से नष्ट होती जा रही हैं। इस प्रकार यह समझना आवश्यक है कि सदगुणों और संस्कृति का आध्यात्मिकता के बिना कोई मूल्य नहीं है।

डैटरॉयट मन्दिर में आने के तुरन्त बाद मैं एक वृद्ध भारतीय सज्जन से मिला। वे मन्दिर के चारों ओर अपने आप में संतुष्टि के भाव से घूम रहे थे, जैसे कि वे सब कुछ जानते हैं और सबसे श्रेष्ठ हैं। जब उन्होंने मुझे देखा तो वे एक अन्य भारतीय को देखकर हैरान रह गए, क्योंकि बाकी सभी भक्त अमरीकी थे। हमने थोड़ी देर बात की और एक बात पर उन्होंने मुझसे कहा, ''मैंने अपने पूरा जीवन मांस नहीं खाया और न ही शराब पी है।''

मैं समझ सकता था कि वे यह जताना चाहते हैं कि दूसरे लोग भक्त बनने से पहले यह सब कर चुके हैं।

मैंने उनसे पूछा, ''डैटरॉयट में जेब कतरना कानूनी है या गैर-कानूनी?''

वे हैरान थे और कहा निश्चित ही यह गैर-कानूनी है।

''किसी का कत्ल करना कानूनी है या गैर-कानूनी?''

''गैर-कानूनी।''

तो मैंने उनसे कहा, ''हम कत्ल करने या जेब कतरने के लिए नहीं है। किन्तु यदि आप हर किसी को घूम घूम कर बताओ, ''मैंने कत्ल नहीं किया और जेब नहीं कतरी,' लोग कहेंगे, 'यह ठीक ही है, किन्तु आपने सकारात्मक कार्य क्या किए?' गलत न करना पर्याप्त नहीं है। आपको कुछ सही कार्य भी करने होंगे। इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन में केवल कुछ नियमों को न तोड़ना पर्याप्त नहीं है।''

इसी प्रकार भारतीय संस्कृति के उच्छिष्ट अपने आप में पर्याप्त नहीं हैं। हमें कृष्ण के लिए, प्रेम भाव से कुछ करना चाहिए।

भक्तिविकास स्वामी: आप ब्राह्मण कुल से हैं और ब्राह्मणों का काम अन्यों को धर्म की शिक्षा देना है। श्री वैष्णव ब्राह्मणों में बहुत ही पक्की दार्शनिक परम्परा होती है, किन्तु श्री वैष्णव ब्राह्मण परिवार में परवरिश होने के बावजूद आपको बचपन में आध्यात्मिक ज्ञान का क ख ग भी नहीं आया। तो क्या आप इस बात से सहमत हैं कि विशेषकर दर्शन में ब्राह्मणों के अज्ञानी होने के कारण भारत का पतन हुआ है? ब्राह्मणों से आशा की जाती है कि वे शास्त्रों की सूझबूझ पर आधारित धार्मिक नियमों का पालन दृढ़ता से करेंगे। अ-ब्राह्मणों को धार्मिक जीवन जीने की कला उनसे सीखनी चाहिए। इसलिए ब्राह्मणों ने अपना आदर्श बनाए नहीं रखा और पतित हो गए और उन्होंने अन्य लोगों को भी अपने साथ डुबो दिया।

रसराज: मैं इससे सहमत हूँ। किन्तु जैसा कि आप जानते हैं कि ब्राह्मण की परिभाषा को सही से समझना होगा। असली और वास्तविक ब्राह्मण शब्द का अर्थ यह नहीं है कि कोई ब्राह्मण परिवार में जन्म लेता है तो वह ब्राह्मण है। श्रील

प्रभुपाद इसकी व्याख्या करते हैं कि इंजीनियर का पुत्र इंजीनियर नहीं कहला सकता। उसे स्वयं योग्य इंजीनियर बनना पड़ेगा नहीं तो वह केवल इंजीनियर पुत्र ही बना रहेगा। इसी प्रकार ब्राह्मण के पुत्र को अपनी योग्यता के बल पर ब्राह्मण बनना होगा। इसलिए यदि कोई आज कहता है, ''मैं ब्राह्मण हूँ,'' तो इसका अर्थ यह हो सकता हैं कि उसके परिवार में, 5000 वर्ष पूर्व, कलियुग से पहले, उसके पूर्वज असली ब्राह्मण रहे होंगे। इस प्रकार व्यवहारत: आज ब्राह्मणों को यह समझना होगा कि वे केवल नाम के ब्राह्मण हैं।

असली ब्राह्मण वह है जो जीवन के उद्देश्य को जानता है। *ब्रह्म जानातीति ब्राह्मण*: ''ब्राह्मण वह है जो ब्रह्म को जानता है।'' ऐसा व्यक्ति तथाकथित जीवन की आवश्यकताओं को लेकर चिंतित नहीं होगा, जैसे कि एक व्यक्ति जो बस में बैठता है वह इस बारे में चिंता नहीं करता कि चालक को बस चलानी आती भी है या नहीं, बस में पर्याप्त तेल है भी या नहीं, चालक को रास्ता मालूम भी है या नहीं इत्यादि। वह यह मान कर चलता है कि इन सबका ध्यान बस कम्पनी ने पहले से रखा हुआ है। इसी प्रकार एक व्यक्ति जिसके जीवन का उद्देश्य भगवान् को जानना है, उसे इस बात पर पूरा भरोसा है कि यदि वह अपने लक्ष्य को समर्पित है तो ब्रह्माण्ड के परम नियन्ता भगवान् जरुर उसके शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करेंगे। इसलिए किसी भी कुल में जन्मा कोई भी व्यक्ति ऐसी बुद्धि ग्रहण करके ब्राह्मण बन सकता है।

श्रील प्रभुपाद ने हमें दिखाया कि किस प्रकार से शुद्धतम रूप में ब्राह्मण संस्कृति को स्थापित किया जाए। इस्कॉन में कोई भी व्यक्ति चाहे वह अमरीकी, हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण या तथाकथित नीच जाति से हो, ब्राह्मण की तरह कार्य करके पुजारी बन सकता है, यदि वह ब्राह्मणों के निर्दिष्ट नियमों का पालन करे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ब्राह्मण पुत्र के पास स्वयं ब्राह्मण बनने का अच्छा अवसर है। आज भी एक पढ़े-लिखे व्यक्ति के पुत्र के पास शिक्षा लेने का अच्छा अवसर होता है।

एक ब्राह्मण का अर्थ है शास्त्र पढ़ने वाला बुद्धिजीवी और जो भगवान् कृष्ण की भक्ति को प्राप्त करने के लिए इन्द्रियों पर नियंत्रण रखता है। क्षत्रिय का

अर्थ है शासनकर्ता जो नागरिकों की रक्षा करता है। वैश्य का अर्थ है व्यापारी वर्ग जो समाज में वस्तुओं का व्यापार करते हैं और शूद्र अर्थात् मजदूर वर्ग, जिनका अपनी इन्द्रियों पर बहुत कम नियंत्रण है किन्तु वे उन लोगों की सेवा करना चाहते हैं जिनका अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण है।

इस प्रकार अंततः मानव समाज योग्यता पर आधारित था न कि जन्म पर। भगवान् कृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं कि चार प्रकार का यह सामाजिक विभाजन मेरे द्वारा बनाया गया है। जिसकी वे रचना करते हैं कोई भी उसे मिटा नहीं सकता। श्रील प्रभुपाद अक्सर इस बात पर बल देते थे कि चार प्रकार विभाजन, बुद्धिजीवी, शासक, व्यापारी और मजदूर आज भी हर जगह व्याप्त हैं, यहाँ तक कि साम्यवादी देशों में भी जो समानता का राज्य स्थापित करने का दावा करते हैं। अन्तर यह है कि आज के ''ब्राह्मण'' भौतिक विज्ञानी हैं, जो दूसरों को इन्द्रियों पर नियंत्रण सिखाने की जगह दावा करते हैं कि वे इन्द्रिय भोग की अच्छी सुविधाएँ प्रदान कर रहे हैं। आधुनिक युग के शासक लोगों की सुरक्षा करने की जगह उनका शोषण करते हैं या शायद लूटते हैं। व्यापारी वर्ग के बहुत से सदस्य आर्थिक मजबूती बनाए रखने के लिए चीजों का आदान-प्रदान करने की बजाए शेयर बाजार में और भोली-भाली जनता का धन लूटने में रुचि रखते हैं। और मजदूर कष्ट भोगते हैं, जो सबसे घृणित वर्ग के नेताओं के लिए काम करने के लिए बाध्य हैं।

और यह सब समाज को उसकी बुराइयों से उबारने के नाम पर होता है। कितना धोखा है! यदि हमारी पुरातन सभ्यता केवल बुराई थी, तो फिर ऐसा क्यों है कि दूसरे लोग भारत का आदर किसी अन्य वस्तु के लिए नहीं, अपितु केवल उसकी संस्कृति या आध्यात्मिकता के लिए करते हैं? ये आधुनिक नेता देश के उत्थान का और सामाजिक बुराइयों को मिटाने का दावा करते हैं, किन्तु असल में इन्होंने भारत को संसार का सबसे भ्रष्ट देश बना दिया है और जहाँ तक भारत की कार्यक्षमता की बात है तो आमतौर पर यह हँसी का पात्र है। हम ऐसे भूलभुलैया में गिर चुके हैं कि भारत के पास न तो आध्यात्मिक लक्ष्य है और न ही भौतिक प्रगति। भारत पर ऐसे लोगों का शासन है जिनके नैतिक मूल्य इतने गिर चुके हैं

कि अधिकतर भारतीय उन्हें अपने घर पर अतिथि के रूप में भी बुलाना नहीं चाहते। ज्यादातर लुटेरे हैं। अपने घर पर उन्हें बुलाना भूल जाओ — लोग उन्हें अपने घर पर नौकर भी नहीं रखेंगे, क्योंकि वे खतरनाक चोर हैं। फिर भी लोगों ने उन्हें देश पर शासन करने की अनुमति दी हुई है।

आम भारतीय यदि अपनी मौजूदा हालत का विरोध और सुधार न भी कर पाये तो कम से कम इसे समझने में अपनी असमर्थता पर चिंतन अवश्य करना चाहिए।

भक्ति विकास स्वामी: मैंने ऐसी संस्कृति देखी है: जब एक आदमी रस्सी पर चलता है तो उसके नीचे जाल बिछा रहता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन एक रस्सी की भाँति है; इसका अर्थ है दृढ़तापूर्वक हर चीज़ का पालन करना। किन्तु यदि आप पालन नहीं कर सकते और गिर जाते हैं, तो कम से कम संस्कृति सिर फूटने से बचा लेती है। यदि आपके पास संस्कृति है, तो चाहे आप सर्वोच्च शिखर पर नहीं पहुँच सकते फिर भी कम से कम आपका सिर नहीं फूटेगा और आपकी मृत्यु नहीं होगी।

रसराज: हाँ, इसी लिए हमें इस्कॉन में हिन्दू संस्कृति के प्रयोग की आवश्यकता पर बल देना चाहिए। माना कि हिन्दुत्व के नाम पर जो चल रहा है वह अधिकतर निरर्थक और घृणित है, किन्तु इसका आधार असली और पुरातन संस्कृति है जो मानव समाज के लिए बहुत ही अमूल्य है। हमें इसे पूरी तरह से नकारना नहीं चाहिए। मैं कई बार महसूस करता हूँ कि कई गैर-धार्मिक हिन्दू समुदायों में दोषपूर्ण दार्शनिक आधार होने के बावजूद इस्कॉन से बेहतर संस्कृति है।

भक्ति विकास स्वामी: क्या आप इसके बारे में विस्तार से बता सकते हैं? क्या इस्कॉन को उस संस्कृति की आवश्यकता है? हमारे पास संकीर्तन, नृत्य, प्रसाद, विधि-विधान, अर्चाविग्रह पूजा, उत्सव हैं तो और किस संस्कृति की आवश्यकता है? शास्त्र कहते हैं कि भक्त बनने से एक व्यक्ति में सारे सदगुण विकसित हो जाते हैं। तो अलग से संस्कृति की क्या आवश्यकता है? क्या हिन्दू संस्कृति भक्तों के लिए अप्रासंगिक और अनावश्यक नहीं है?

रसराजः मैं आपको एक उदाहरण देता हूँ। बड़ी दावत में, हर किसी को शांति से बैठना चाहिए और भरपूर प्रसाद परोसा जाना चाहिए। इसी प्रकार, कृष्ण पर केन्द्रित उचित वैदिक संस्कृति से पूर्ण दर्शन और पूर्ण सभ्यता बनेगी। इस्कॉन में दर्शन है, किन्तु सभ्य होने के मामले में बहुत ही प्रारम्भिक अवस्था में हैं। यह उसी प्रकार है जैसे दावत में प्रसाद तो है किन्तु कोई ढंग से परोस नहीं रहा — हर कोई भाग रहा है और अपने लिए थाली तैयार कर रहा है। आधुनिक हिन्दू समाज में हमारे पास आज भी पुराने समय से चली आ रही सांस्कृतिक प्रथाएँ हैं, किन्तु इसने दार्शनिक तत्व खो दिया है। यह उसी प्रकार है जैसे सभी प्रसाद लेने के लिए बहुत ही अच्छे तरीके से बैठ गए हैं और लोग भी परोसने के लिए तैयार हैं किन्तु प्रसाद नहीं है।

हिन्दुओं को ठीक से आध्यात्मिक बनने की जरुरत है। असली धर्म क्रियाओं, भौतिक लाभ के लिए प्रार्थनाएँ और भावुकता भरे उथले भक्तिआभास से कहीं गहरा है। आध्यात्मिक समझ और दार्शनिक आधार से रहित संस्कृति के साथ हिन्दू आज के आधुनिक भौतिकतावाद के सामने टिक नहीं पाएँगे। दिन प्रतिदिन हिन्दू यह महसूस कर रहे हैं कि इस्कॉन ही एकमात्र भौतिकतावाद का तोड़ है, क्योंकि इस्कॉन वह तत्व प्रदान करता है जो आधुनिक हिन्दुत्व में नहीं है।

दूसरी तरफ हिन्दू समाज आज भी संसार की अन्य सभ्यताओं से कहीं अधिक उन्नत है क्योंकि वैदिक संस्कृति का मृत शरीर भी बहुत कीमती है। इस्कॉन के सदस्य भौतिकतावाद के आतंक में संस्कृति और वैदिक या हिन्दू समाज के मूल्यों को ग्रहण किए बिना न तो काम कर सकते हैं और न ही जिन्दा बचे रह सकते हैं। वैदिक दर्शन तो निष्कलंक और दिव्य है। इसे भौतिक जगत के विचार छू भी नहीं सकते। किन्तु सफलता प्राप्त करने के लिए उस दर्शन के अनुयायी होने के नाते हमें उस दर्शन से उत्पन्न संस्कृति और परम्पराओं को अपनाने की आवश्यकता है।

भक्तिविकास स्वामीः यह महत्वपूर्ण है। हमने शायद ही इसके बारे में सोचा है, किन्तु हमें सोचना चाहिए।

वैदिक संस्कृति की बात करते हुए, हम पारिवारिक जीवन के महत्व को प्रदर्शित कर रहे थे। समाज पारिवारिक जीवन पर बनता है। त्याग का सिद्धान्त सबके लिए है, किन्तु इस प्रकार की जीवनशैली अर्थात् सन्यास बहुत ही कम लोगों के लिए है।

रसराज: मुझे यह अन्तर अच्छा लगा। हाँ, पारिवारिक जीवन में त्याग का सिद्धान्त है। इसलिए इसे गृहस्थ-आश्रम कहते हैं।

भक्तिविकास स्वामी: शायद हम आधुनिक जीवन-शैली को छोड़ नहीं पाएँगे क्योंकि हम इसमें काफी उलझ चुके हैं, पर जितना हम वैदिक संस्कृति अपनायेंगे, उतनी ही हमें मदद मिलेगी।

रसराज: संसार में कृष्णभावनामृत का प्रचार करने के लिए दर्शन और संस्कृति की दो धाराओं को मिलाना होगा। संसार को पुन: आध्यात्मिक बनाने के लिए श्रील प्रभुपाद की योजना का यह महत्वपूर्ण हिस्सा था।

भक्तिविकास स्वामी: विदेशियों को वैदिक संस्कृति की अच्छी बातें लेने में समय लगेगा।

रसराज: किन्तु कृष्णभावनामृत के असली दर्शन को समझने और अपनाने में हिन्दुओं को ज्यादा समय नहीं लगेगा। जब दार्शनिक समझ और आदर्श संस्कृति मिल जाएँगे तो कृष्णभावनामृत पूरे संसार में प्रभावशाली ढंग से फैलेगा। श्रील प्रभुपाद भागवतम् में कहते हैं कि यह आंदोलन मानव समाज को पुन: आध्यात्मिक बनाने के लिए सांस्कृतिक प्रस्तुति है।

भक्तिविकास स्वामी: कई बार संस्कृति शब्द का उपयोग ''बदलाव में तेजी लाने का एक माध्यम जिसमें कुछ विकसित होता है,'' को इंगित करने के लिए किया जाता है, जैसे दूध में दही का जाम मिलाना। इस प्रकार दर्शन असली दूध है और संस्कृति वह तत्व है जिसे मिलाने से आध्यात्मिक समाज विकसित होगा।

रसराज: यह अच्छा उदाहरण है। इससे मुझे एक और बात याद आई है: भारत में हर रोज ताजा दही बनाया जाता है। दिन के अंत में गृहिणी इस बात का ध्यान रखती है कि थोड़ा सा दही बचा लिया जाए ताकि अगले दिन दही बनाने के

काम आए। इस प्रकार पहले दिन का दही परिवार में चलता रहता है। दही दिनों दिन मीठा होता जाता है। जब मैं बालक था, तो स्कूल जाने के लिए मुझे एक झोपड़ पट्टी से निकलना होता था। एक बार जब मैं दो औरतों के पास से गुजर रहा था तो वे दोनों झगड़ रही थीं। मुझे याद है उनमें से एक औरत कह रही थी, ''तू जानती भी है कि मेरे घर का दही भी पाँच पुश्तों से चला आ रहा है?'' इस प्रकार उन दिनों तथाकथित झोपड़ पट्टी में रहने वाले लोगों में भी परम्परा और अपने जीवन में इसके महत्व की समझ थी।

भक्तिविकास स्वामी: पूरे संसार में इस संस्कृति को स्थापित करने में शायद कुछ पीढ़ियाँ लग सकती हैं। हमें धैर्य रखना होगा। वैष्णवता विदेशों में अभी शुरु ही हुई है और भारत अब भ्रमित है। चीजों के सही होने में समय लगेगा। किन्तु क्योंकि श्रील प्रभुपाद ने हमें कहा है इसलिए हमें विश्वास होना चाहिए कि यह संस्कृति क्रमशः मानव समाज को पुनः बदलेगी।

आधुनिक सभ्यता के पास कोई दिव्य उद्देश्य नहीं है। लोग बहुत मेहनत करके कई प्रकार की तकनीकी खोजें कर रहे हैं, किन्तु वे प्रसन्न नहीं हैं। पूरे विश्व में लोग इससे बेहतर वस्तु की तलाश में हैं। श्रील प्रभुपाद ने विदेशी सभ्यता पर ''सांस्कृतिक विजय'' की बात की है। इससे उनका आशय गाने-बजाने वाली मण्डिलयों के अलावा बहुत कुछ है। यदि हम सचमुच लोगों को दिखाएँ कि हमारे पास जीवनशैली का बेहतर विकल्प है, तो वे क्यों नहीं अपनाएँगे?

रसराज: यह दिखाना कि वैदिक दर्शन पूर्ण है और इस पर आधारित जीवन भी पूर्ण है, एक चुनौती है। हमारे सामने एक बहुत बड़ा कार्य है, किन्तु यदि हम कृष्ण पर विश्वास रखें, वे निश्चित ही हमारी सहायता करेंगे।

शोभायात्रा : एक स्मृति

रसराज दास द्वारा

यह कथा, जिसे थोड़ा सा संशोधित किया गया है, नवम्बर-दिसम्बर 1991 के भगवद्दर्शन के अंक में छपी थी।

मद्रास में कृष्ण के मुख्य विग्रह पार्थ-सारथी के नाम से जाने जाते हैं। और कृष्ण के कई मन्दिरों में उत्सवों के दिन भगवान् शोभायात्रा में बाहर आते हैं। मुख्य विग्रह मन्दिर में ही रहते हैं और शोभायात्रा के लिए भगवान् के छोटे रूप, जिन्हें उत्सव-मूर्ति कहते हैं, को पुजारी बाहर ले आते हैं।

''अम्मा'', अपना बस्ता पटकते हुए, मैं चिल्लाया, ''खाना दो।''[८२] मैं अभी अभी स्कूल से लौटा था और जल्दी से खाना खाकर खेलने जाना चाहता था।

''पहले अपने हाथ पैर धो लो,''मेरी माता जी ने रसोई के अन्दर से जवाब दिया। मैं बाथरूम में भागा, और हर जगह पानी उछालकर, वापिस रसोई में दौड़ा।

''मैंने भगवान् पार्थ-सारथी की शोभायात्रा जाती देखी,'' भोजन की प्रतीक्षा के लिए बैठते ही मैंने स्वयं कहा।

मेरी माता जी उपमा के बर्तन उठा रही थीं कि अचानक रुक गईं, और मुड़ कर प्रश्नों की बौछार कर दी: ''भगवान् पार्थ-सारथी? तुमने उन्हें कहाँ देखा? वे आज बाहर क्यों जा रहे हैं और दोपहर को चार बजे?

मैंने उन्हें लुज़ के पास पालकी में आते देखा, बस। मुझे नहीं मालूम वे क्यों और कहाँ जा रहे हैं। बस मेरा भोजन मुझे जल्दी से दे दो। मुझे देर हो रही है,'' मैंने देरी होते देख कहा।

---

८२ अम्मा - तमिल में ''माँ''।

मेरी दादी, जो हमेशा की तरह रसोई के कोने में बैठी चुपचाप सब कुछ देख रही थीं, अब ध्यान से पचांग को देख रही थीं। ''आज फसल कटाई पर कर इकट्ठा करने का दिन है,'' उन्होंने बताया, ''पालकी एलडम सड़क से होकर गुजरेगी।''

मेरी माता जी गिनने लगीं कि भगवान् की शोभयात्रा को एलडम सड़क जो हमारे घर के बहुत पास है, से निकलने पर कितना समय लगेगा। उन्होंने पूछा, ''तुमने लुज़ के पास शोभायात्रा को सही कब देखा था?''

''3.40,'' मैंने कहा, ''बस पकड़ने से बिल्कुल पहले।''

''इसका अर्थ है कि वे बीस मिनट में यहाँ पहुँच जाएँगे,'' मेरी माता जी ने कहा, उनकी आवाज अब उत्साह से भरी थी। ''बीस मिनट में मैं भगवान् के लिए क्या बना सकती हूँ?''

''रवा-केसरी।[८३] यह सबसे सरल है,'' मेरी दादी ने शांति और सावधानी से कहा।

इस समय तक मेरी माता जी स्टील का बर्तन चूल्हे पर रख चुकी थीं और माण्डी का एक कप उसमें डाल दिया, साथ ही एक बर्तन में पानी गर्म करने के लिए रख दिया।

मैंने भोजन की देरी को छोड़ते हुए पूछा, ''फसल कटाई पर कर इकट्ठा करने का दिन क्या होता है?''

साल में एक बार भगवान् पार्थ-सारथी मद्रास शहर से बाहर अपने खेतों में जाते हैं,'' मेरी माता जी ने बताया। ''किसान भगवान् के सामने फसल काट कर ले आते हैं, तोलते हैं और फिर इसका कुछ भाग भगवान् को कर के रूप में अदा करते हैं। इस अनाज से पूरा वर्ष मन्दिर में भगवान् को भोग लगता है।''

''भगवान् को क्यों जाना पड़ता है?'' मैंने पूछा। ''क्या पुजारी इकट्ठा नहीं कर सकते?''

---

८३ रवा-केसरी - आटे से बना एक स्वादिष्ट पकवान। यह उपमा के समान होता है।

पुजारियों को लगता है कि जब भगवान् खेतों में होते हैं तो किसानों के पास फसल छुपाकर कर कम करने के अवसर कम होते हैं। किन्तु महत्वपूर्ण यह भी है कि जो लोग मन्दिर से दूर रहते हैं, वे भी भगवान् के दर्शन कर लेते हैं।''

''इससे भगवान् को मन्दिर से बाहर जाने का मौका भी मिलता है,''मेरी दादी ने विवेक के साथ कहा।

अब तक मेरी माता जी भोग बना चुकने वाली थीं। ''पाँच और मिनट और भगवान् यहाँ होंगे,'' उन्होंने घड़ी को देखते हुए गिना। ''अब कोने में जाओ और जब तक शोभायात्रा दिखाई नहीं देती वहीं खड़े रहो। जब यह हमारी गली के पास हो तो पुजारी को रुकने का इशारा कर देना। अब जाओ! भागो!''

मैं जल्द ही कोने में पहुँच गया। अपनी आँखों को दोपहर के सूर्य से बचाते हुए, दूर सड़क पर देखने लगा। ''क्या भगवान् पहले ही यहाँ से गुजर गए?'' मुझे चिंता हुई।

अचानक, एक शोभायात्रा एलडम सड़क की ओर मुड़ रही थी! पालकी में भगवान् को उठाए चार कहारों का छोटे से कारवां के आगे पुजारी चला आ रहा था। मैं तेजी से बढ़ती शोभायात्रा को देखकर हैरान था। कहार मानो बहुत तेजी से चल रहे हों। मैंने पागलों की तरह हाथ हिलाया, मुझे डर था कि वे मुझे देख नहीं रहे क्योंकि शोभायात्रा के धीरे होने का कोई संकेत ही नहीं था। जैसे ही यह पास आई, मैंने पीछे मुड़कर देखा और अपनी माता को घर से बाहर आते देखकर राहत की सांस ली, वे मानो दौड़ रही थीं। दादी पीछे से धीरे-धीरे आ रही थीं। मेरी माता जी ने रवा-केसरी का बर्तन लिया हुआ था, जो ताजे केले के पत्ते से ढका था।

''कृपया! रुको!'' मैंने पुजारी को जोर से कहा, ''मेरी माता जी भोग ला रही हैं।''

शोभायात्रा रूक गई और कहारों ने पालकी नीचे कर दी। तब तक मेरी माता जी आ चुकी थीं। मुझे बर्तन थमाते हुए उन्होंने कहा, ''इसे भट्टार को दे दो।''[८४]

---

८४ भट्टार - पुरोहित का पर्यायवाची।

मैंने जैसे ही इस बर्तन के साथ जूझ रहा था, पुजारी उस तक पहुँच गया और ले लिया। ''नमस्कारम्,'' उन्होंने मेरी माता जी का प्रसन्नता से स्वागत किया।

अब मेरी दादी भी आ चुकी थीं। उन्होंने अपनी साड़ी के कोने से कर्पूर निकाला और पुजारी को दे दिया। उसने रवा-केसरी का बर्तन भगवान् के समक्ष रखकर केले के पत्ते को हटा दिया। उसने कर्पूर को तांबे के दीपक में रखकर जलाया और इसे भगवान् को भोग लगा दिया। वे उच्च स्वर में वैदिक मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे और साथ ही घण्टी बजाते रहे। हम तीनों ने हाथ जोड़ लिए और भगवान् के समक्ष माथा टेककर प्रणाम किया।

पुजारी ने जैसे ही आधा भोग मेरी माता जी को दिया, और कहा, ''इस कलियुग में कई लोगों को मालूम ही नहीं कि जब भगवान् शोभायात्रा पर आते हैं तो उनका स्वागत किस तरह से करना है। आपकी प्रेममय भक्तिवश भगवान् आप और आपके परिवार पर कृपा करें।

मेरी माता जी ने कहा, ''उनका यश सदा फैले और हम उनके दास बने रहें।''

मेरी दादी ने सामान्य ही सलाह दी। ''इतनी तेजी से मत जाओ,'' उन्होंने पुजारियों से कहा। ''इस भरी गर्मी में आप ध्यान रखें कि भगवान् को कोई कष्ट न हो।''

जल्द ही हम रसोई में आ गए और मैं अपना भोजन खाने में व्यस्त हो गया, अब मुझे साथ में केशरी प्रसाद भी मिला जिसे अभी अभी भगवान् को अर्पित किया गया था।

''स्वादिष्ट!'' मैं खुशी से बोला। ''मुझे देरी से भोजन मिलने पर बुरा नहीं लगेगा यदि आप रोज़ इस प्रकार से मिठाई साथ में देंगी।''

परिशिष्ट १

श्रील प्रभुपाद के प्रासंगिक उद्धरण

वास्तविक सभ्यता

सभ्यता का अर्थ मानव को सिद्धि के लिए आगे बढ़ाना है। समाज और अर्थ व्यवस्था, हर चीज़, को इस प्रकार से व्यवस्थित करना चाहिए कि बालक जीवन की सिद्धि, भगवद्धाम जाने के लिए आगे बढ़े। यह सभ्यता है। (संवाद, 2 अगस्त 1976)

सभ्यता का अर्थ सौम्यता, शाँति, समृद्धि है। शाँति और समृद्धि में व्यक्ति को सदैव कृष्ण भावनाभावित होना चाहिए। (प्रवचन, 13 अप्रैल, 1973)

पारम्परिक भारतीय संस्कृति की महानता

भारत में क्योंकि अभी भी वे वर्ण और आश्रम के प्रति रुचि रखते हैं, इसलिए भारतीयों को कई लाभ हैं। मैंने पूरे विश्व में कई बार भ्रमण किया है। क्योंकि वहाँ वर्णाश्रम-धर्म नहीं है इसलिए उन्हें कितना नुक्सान है। (प्रवचन, 19 अक्तूबर 1972)

भारत की दशा अब बहुत खराब और परेशानी भरी हैं क्योंकि हमने वैदिक सभ्यता खो दी है, हमने कृष्णभावनामृत खो दी है, हमने भगवद्-चेतना खो दी है। हम मनमाने ढंग से चल रहे हैं। यह भारत की बहुत ही शोचनीय दशा है। कृष्णभावनामृत भारत की असली संस्कृति है, कृष्ण संस्कृति। कृष्ण इस धरती पर प्रकट हुए थे। यद्यपि कृष्ण किसी क्षेत्र के नहीं हैं, फिर भी वे मथुरा प्रकट हुए, भारतवर्ष के पवित्र स्थान पर। इसलिए यह भारतीयों का कर्त्तव्य है कि वे कृष्ण संस्कृति, कृष्णभावनामृत सांस्कृतिक आंदोलन को समझें और इसमें गम्भीरतापूर्वक भाग लें। (प्रवचन, 26 सित बर 1973)

भारत में हमारे पास कई पवित्र, ब्राह्मण परिवार हैं। बेशक आजकल, सभ्यता की भौतिक प्रगति के कारण, हर वस्तु प्रदूषित हो गई है। फिर भी कुछ

परिवार ऐसे हैं जो बहुत ही पवित्र हैं। यदि आप एक बार भी उनके घर जाएँगे आपको अहसास हो जाएगा, ''ओह, यह बहुत ही पवित्र स्थान है।'' (प्रवचन, 28 जुलाई 1966)

पहले भारत भक्तिमें बहुत उन्नत था। (संवाद, 24 अप्रैल 1977)

आधुनिक समाज और सादा जीवन

मनुष्यों की उत्कृष्ट वृत्तियों को नष्ट करने वाली मिलों और फैक्टरियों के विकास से सभ्यता की प्रगति का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। सभ्यता की प्रगति का अनुमान मानव की आध्यात्मिक वृत्तियों के विकास और उन्हें भगवद्धाम वापिस जाने का अवसर प्रदान करके लगाया जा सकता है। फैक्ट्रियों और मिलों का विकास उग्र-कर्म कहलाता है और ऐसे कार्य मानव की उन्नत वृत्तियों को नष्ट करते हैं और समाज में असुरों के किले बनते हैं। (श्रीमद्भागवतम् 1.11.12 टीका)

मुझे भागवतम् में बड़ी बड़ी फैक्टरियाँ और बूचड़खाने नहीं मिले। बिल्कुल नहीं। अब पूरे वातावरण में पापमय जीवन का बोलबाला है। लोग कैसे प्रसन्न होंगे? अब वे गुनाहों और हिप्पियों, समस्याओं, कूटनीति और सी.आई.ए पर आ रहे हैं। और क्या रह गया? शक्ति समय और धन की कितनी अनावश्यक बर्बादी हो रही है। विषैले हालात। शहर को छोड़ देना अच्छा है। वृन्दावन बनाओ। शहरी जीवन घृणित है। यदि आप शहर में नहीं रहते तो आपको पैट्रोल और कार की आवश्यकता नहीं है। इसका कोई उपयोग नहीं है। आप बैलगाड़ी का उपयोग कर सकते हैं। क्या परेशानी है? मान लीजिए आप एक घण्टे में पहुँच रहे हैं और बैलगाड़ी से एक दिन लग जाएगा। और यदि आप ऐसे जीवन से संतुष्ट हैं तो इधर-उधर जाने का प्रश्न ही नहीं है। शायद एक गाँव से दूसरे गाँव जाना। बैलगाड़ी पर्याप्त है। कार की क्या आवश्यकता है? कार चलाओ और पार्किंग की समस्या। पार्किंग की ही नहीं, और भी कई समस्याएँ हैं। कार में तीन हज़ार पुर्जे हैं। आपको उन्हें एक बड़ी फैक्टरी में बनाना पड़ता है। (संवाद, 1 अगस्त 1975)

मानवीय समृद्धि प्राकृतिक उपहारों से फलती फूलती है, विशाल औद्योगिक कारखाने स्थापित करने से नहीं। विशाल औद्योगिक कारखाने नास्तिक सभ्यता की उपज हैं और मनुष्य जीवन के कुलीन लक्ष्य को नष्ट करने का कारण हैं। जितना हम इन कष्टमय उद्योगों को बढ़ाएँगे उतना ही मनुष्यों की जीवन शक्ति को चूस लेंगे, उतनी ही आम लोगों में अशाँति और असंतोष होगा। बेशक शोषण करके कुछ लोग ही विलासिता भरा जीवन जी सकते हैं। प्राकृतिक उपहार जैसे अनाज और सब्जियाँ, फल, नदियाँ, रत्नों और खनिज पदार्थों के पहाड़, मोतियों से भरे समुद्र भगवान् के आदेश पर मिलते हैं और जैसी भगवान् की इच्छा के अनुसार प्रकृति उन्हें भरपूर मात्रा में उत्पन्न करती है या समय पर रोक लेती है। प्रकृति के नियम इस प्रकार हैं कि मनुष्य इन प्राकृतिक उपहारों का लाभ ले सकता है और शोषण के उद्देश्य से भौतिक प्रकृति पर कब्जा करने से मोहित हुए बिना उन पर संतुष्टि से भरण-पोषण कर सकता है। भोग वासना से प्रभावित होकर जितना हम भौतिक प्रकृति का शोषण करने का प्रयास करेंगे, उतना ही हम शोषण के प्रयासों के नतीजों में फँसते चले जाएँगे। यदि हमारे पास अनाज, फल, सब्जियाँ, औषधियाँ पर्याप्त मात्रा में हैं तो बूचड़खाने चलाने और बेचारे जानवरों को मारने की क्या आवश्यकता है? यदि व्यक्ति के पास खाने के लिए पर्याप्त मात्रा में अनाज और सब्जियाँ हैं तो उसे जानवर की हत्या करने की जरुरत नहीं है । नदी के पानी का बहाव खेतों को उपजाऊ बनाता है और जितनी हमें आवश्यकता है उससे कहीं अधिक है। खनिज पदार्थ पहाड़ों से और रत्न समुद्र से मिल जाते हैं। यदि मानव सभ्यता के पास पर्याप्त मात्रा में अनाज, खनिज, रत्न, पानी और दूध इत्यादि है तो फिर बदकिस्मत लोगों की मजदूरी पर आधारित भयंकर विशाल उद्योगों की क्या आवश्यकता है? किन्तु ये सब प्राकृतिक उपहार भगवान् की कृपा पर आश्रित हैं। (श्रीमद्भागवतम् 1.8.40 टीका)

ज्यादा नहीं, केवल चालीस साल पहले मेरे पिता जी कहा करते थे, कलकत्ता के हमारे घर में छकड़ा भर चावल (15 ढेर), शुद्ध घी के 10 सेर, आलूओं का बोरा और नर्म कोयले का छकड़ा भण्डार में होता था, जो उपयोग करने के लिए हमेशा तैयार रहता था। हमारा परिवार अमीर नहीं था और मेरे पिता जी की मासिक आमदन 250 रुपए से ज्यादा नहीं थी। और उनके लिए

इन सबका प्रबन्ध अपने घर में बनाए रखना आसान था। किन्तु आज, शहर और कस्बे में कोई घर आमतौर पर 15 सेर चावल स्टोर करके नहीं रखता। पहले वे ढेरी के हिसाब से दाम पता किया करते थे और अब वे *सेर* और *चतक* में पूछते हैं — चाहे आज हम गायों की जगह चमचमाती कारों के रखने योग्य हैं।[८५] (भगवद्दर्शन खण्ड 3, सं या 12, 1956)

अनाज और सब्जियाँ मनुष्य और पशुओं का भरपूर भोजन दे सकतीं हैं और एक मोटी गाय एक आदमी को ओज और शक्ति से परिपूर्ण भरपूर दूध दे सकती है। यदि पर्याप्त मात्रा में दूध, अनाज, फल, कपास, सिल्क और रत्न हों तो लोगों को सिनेमा, वेश्यालयों और बूचड़खानों इत्यादि की क्या आवश्यकता है? बनावटी सिनेमा का आलीशान जीवन, कार, रेडियो, मांस और होटलों की क्या जरुरत है? क्या इस सभ्यता ने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय झगड़ों के अलावा कुछ दिया है? क्या एक आदमी की सनक के कारण इस सभ्यता ने हजारों लोगों को नारकीय फैक्टरियों और युद्ध-क्षेत्रों में भेजकर समानता और मैत्री को बढ़ाया है?...यहाँ यह कहा गया है कि गाय चरागाहों को दूध से नहला देती थीं क्योंकि उनके दूध के थन भरे हुए थे और पशु प्रसन्न थे। अत: क्या उन्हें आनन्दमय जीवन के लिए खेतों में पर्याप्त मात्रा में घास खिलाकर सुरक्षा देने की आवश्यकता नहीं है? मानव क्यों अपने स्वार्थ के लिए गायों की हत्या करता है? इन्सान क्यों अनाज, फल और दूध से संतुष्ट नहीं है, जिनको मिलाकर लाखों स्वादिष्ट पकवान बनाए जा सकते हैं? पूरे विश्व में अबोध पशुओं को मारने के लिए क्यों बूचड़खाने हैं?... महाराज युधिष्ठिर के पोते, महाराज परीक्षित जब अपने विशाल राज्य में भ्रमण पर निकले, उन्होंने एक काले आदमी को गाय मारते देखा। राजा ने एकदम उस कसाई को पकड़ लिया और अच्छी तरह से लताड़ा। क्या राजा या कार्यकारी मुखिया को बेचारे जानवरों के जीवन की रक्षा नहीं करनी चाहिए, जो अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकते? क्या यह मानवता है? क्या देश के जानवर भी नागरिक नहीं हैं? तो क्यों उन्होंने व्यवस्थित ढंग से बूचड़खाने में जानवरों को मारने की आज्ञा दी है? क्या यह समानता, मैत्री और अहिंसा के लक्षण हैं? (श्रीमद्भागवतम् 1.10.4 टीका)

---

८५ वजन करने के लिये प्राचीन बंगाली माप: सेर - करीब एक कि लो; चतक - सेर की सोलहवाँ हिस्सा।

मशीन और औजारों या बड़े बड़े स्टील प्लांट लगाकर बनावटी ढंग से जीवन के आरामों को बनाने की कोई आवश्यकता नहीं है। जीवन कभी भी बनावटी आवश्यकताओं से नहीं अपितु सादा जीवन और उच्च विचार से सुखी हुआ है। मानव समाज के लिए सर्वोच्च और सम्पूर्ण विचार का यहाँ शुकदेव गोस्वामी द्वारा वर्णन हुआ है —विशेषकर श्रीमद्भागवतम् का श्रवण करना। (श्रीमद्भागवतम् 2.2.37 टीका)

भारत मशीनों के लिए नहीं है। ये धूर्त यह नहीं जानते। भारत की संस्कृति सादा जीवन, उच्च विचार है। आपको थोड़ा भोजन चाहिए। अनाज पैदा करो और ले लो और हरे कृष्ण जपो। किन्तु वे स्वीकार नहीं करेंगे: ''ओह यह तो आदिवासी विचार है। हमारे पास मोटर कार, मोटर टायर होने चाहिए।'' (संवाद, 6 मार्च 1974)

भारत असल में ग्रामीण जीवन है — शहरी जीवन बहुत ही सीमित। शायद वहाँ केवल एक बड़ा शहर है। अब नई दिल्ली — उन दिनों में हस्तिनापुर — और इसके बाद थी द्वारका। इस प्रकार बहुत बड़े शहर केवल दो या तीन थे। अधिकतर लोग गाँवों में रहते थे। अभी भी नब्बे प्रतिशत भारत की जनता गाँवों में रहती है। (प्रवचन, 6 दिसम्बर 1968)

संतोष

यह वैदिक सभ्यता है। वे अपनी भौतिक स्थिति को सुधारने में ज्यादा आतुर नहीं थे। अब भी गाँव के लोग उस परिस्थिति में प्रसन्न हैं जो उन्हें कृष्ण ने दी है, किन्तु वे आध्यात्मिक जीवन को सुधारने के लिए आतुर हैं। (प्रवचन, 15 अक्तूबर 1973)

यह भारतीय स्वभाव है। वे आधुनिक, सभ्य जीवन शैली की परवाह नहीं करते, कोई बकवास पुस्तक पढ़कर या बार, सिनेमा जाकर, फालतू बोलकर समय बर्बाद नहीं करते। जो पुरातन शैली के हैं, वे इसे पसंद नहीं करते। (संवाद, 3 जनवरी 1977)

वर्णाश्रम समाज

भक्त: भारत का झुकाव किस ओर है – उदारवाद या साम्यवाद?

प्रभुपाद: भारत के पास ऐसे कोई विचार नहीं हैं। वे दूसरों से विचार माँग रहे हैं। भारत का विचार आत्म-साक्षात्कार है। सादा जीवन जियो — ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। ब्राह्मण बहुत ही सादा जीवन जीते हैं, विद्वान बनते हैं, आचरण में शुद्ध और आध्यात्मिक जीवन में उन्नत — प्रथम श्रेणी, आदर्श। और क्षत्रिय, वे राजा बनते हैं; वे मामूली से कर पर भूमि वितरित करते हैं। और वैश्य भूमि पर उगाते हैं और गाय रखते हैं। और शूद्र जुलाहे, लुहार, सुनार आदि जीवन की अन्य जरुरतों को उपलब्ध करवाने में लगे रहते हैं। इस प्रकार पूरा जीवन सादगी भरा होता है और केन्द्र बिन्दू होता है, किस प्रकार सहयोग द्वारा कृष्णभावनामृत में प्रगति करें। यह भारतीय सभ्यता है। उद्योगों का प्रश्न ही नहीं है, उग्र-कर्म। भगवद्गीता में इसकी उग्र-कर्म कहकर निंदा की गई है: ''आजीविका के लिए कठोर श्रम।'' (संवाद, 9 अप्रैल 1976)

हर देश से आशा की जाती है कि वह कल्याणकारी राज्य होगा। राज्य का हर नागरिक प्रसन्न और समृद्ध होना चाहिए। कोई चिंता नहीं होनी चाहिए। मुझे नहीं मालूम कि कोई राज्य अपने नागरिकों का इस प्रकार से ध्यान रख भी रहा है या नहीं। लोग हमेशा चिंता से व्याकुल होते हैं। वे इस प्रकार की स्थिति बना रहे हैं कि हर कोई व्याकुल है। यह संसार इस प्रकार से बना है कि यह चिंताओं से भरा है। आप देखेंगे कि पंछी भी दाना चुगते समय चिंता से भरा होता है। वह ऐसे और वैसे देखेगा: ''ओह, कोई आ रहा है और मुझे मार डालेगा।'' तो यह प्रकृति है। इसलिए मनुष्य समाज को इस प्रकार से व्यवस्थित करना चाहिए कि इसके सदस्य सभी व्याकुलताओं से मुक्त हों। इसलिए हमें अच्छे नागरिक, अच्छे पिता और माता, अच्छी राज्य प्रणाली और भगवान् तथा प्रकृति के बीच सहयोग करने के लिए पुण्यवान, तेजस्वी लोग चाहिएँ। हर चीज़ मेरी आध्यात्मिक प्रगति के लिए सहायक होगी। यदि मैं चिंतातुर होऊँगा तो मैं आध्यात्मिक अनुभूति में प्रगति किस प्रकार करुँगा? यह संभव नहीं है। इसलिए यह राज्य, पिता, अध्यापक, आध्यात्मिक गुरु का

कर्त्तव्य है कि वे एक छोटे बच्चे को इस प्रकार से पालें कि वह अंत तक पूरी तरह से आध्यात्मिक दृष्टि से अनुभूति कर सके और उसका भौतिक संसार में दु:खमय जीवन समाप्त हो जाए। यह उत्तरदायित्व है। (प्रवचन, 29 जुलाई 1966)

यह वर्णाश्रम-धर्म प्रणाली है। पूरी योजना यह है कि हर किसी को इसी जीवन में मुक्त होने का अवसर मिलना चाहिए। (प्रवचन, 29 जुलाई 1966)

भारत का इतना पतन हो चुका है, फिर भी भारत में आज भी दूर के गाँव में आपको सामाजिक विभाजन मिल जाएँगे और वे बहुत ही शाँति से रहते हैं। (प्रवचन, 13 सितम्बर 1973)

1. ब्राह्मणों की रक्षा से, आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त करने की सर्वोच्च वैज्ञानिक संस्कृति, वर्ण और आश्रम प्रणाली बनी रहती है।

2. गौरक्षा से चमत्कारी भोजन, दूध मिलता है जो जीवन के उच्च उद्देश्य को समझने के लिए दिमाग के सूक्ष्म तंतु बनाता है।

3. स्त्री रक्षा से हमें समाज की पवित्रता मिलती है जिससे शाँति, स्थिरता और जीवन में प्रगति के लिए अच्छी पीढ़ी प्राप्त की जा सकती है।

4. बच्चों की रक्षा मनुष्य जीवन को भौतिकता से मुक्ति की तैयारी का सर्वश्रेष्ठ अवसर देती है। बच्चे की ऐसी सुरक्षा गर्भाधान को शुद्ध करने के लिए गर्भाधान-संस्कार करके पहले दिन से शुरु हो जाती है, पवित्र जीवन की शुरुआत।

5. वृद्धों की सुरक्षा उन्हें मृत्यु के बाद बेहतर जीवन की तैयारी का अवसर प्रदान करती है।

यह पूर्ण विचार मानव जीवन को सफल बनाने के कारणों पर आधारित है जो यह तथाकथित सभ्य कुत्ते-बिल्लियों की सभ्यता नहीं कर सकती। (श्रीमद्भागवतम् 1.8.5 टीका)

ब्राह्मण

विशेषकर ब्राह्मण, सज्जन या भद्र पुरुष के रूप में जाने जाते हैं जो पूरे समाज का नेतृत्व करते हैं। यदि गाँव में कोई झगड़ा होता था, तो लोग इन आदरणीय ब्राह्मणों को सुलझाने के लिए कहते थे। अब ऐसे ब्राह्मणों या सज्जनों को ढूँढना मुश्किल है और इस प्रकार हर गाँव या कस्बा इतना अस्त-व्यस्त है कि कहीं भी कोई शाँति या खुशी नहीं है। पूरी तरह से सुसंस्कृत सभ्यता को पुनर्जीवित करने के लिए, पूरे विश्व में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों का वैज्ञानिक विभाजन लाना होगा। जब तक कुछ लोगों को ब्राह्मणों के रूप में प्रशिक्षित नहीं किया जाता, मानव समाज में कोई शाँति नहीं हो सकती। (चैतन्य चरितामृत, आदि-लीला 17.42 टीका)

मानव जीवन आनन्दमय होना चाहिए और इसका लक्ष्य आध्यात्मिक प्रगति होना चाहिए। एक समय यह भारतीय जीवन का सिद्धान्त था और लोगों का एक वर्ग ब्राह्मणों का था, जो पूरी तरह से आध्यात्मिक संस्कृति को समर्पित था। (एलीवेशन टू कृष्ण कॉनसियसनैस, अध्याय 6)

पहले, यहाँ तक कि पचास या साठ साल पहले तक, भारत में एक ब्राह्मण किसी की सेवा स्वीकार नहीं करता था। क्योंकि जिसे भी ज्ञान होता था, वह कहीं भी पेड़ के नीचे या किसी के बरामदे में बैठ जाता और गाँव के छोटे बच्चों को बुलाकर थोड़ा व्याकरण, थोड़ा गणित सिखाता। और बच्चे अपने माता-पिता से उपहार लाकर देते। कोई चावल देता; कोई दाल लाता। इस प्रकार उसे कोई शर्त लगाने की आवश्यकता नहीं थी कि "आप मुझे इतने रुपए दो, तब मैं पढ़ाऊँगा।" नहीं। नि:शुल्क शिक्षा। (प्रवचन, 6 जुलाई 1975)

पुरुष और स्त्रियाँ

आध्यात्मिक ज्ञान पर आधारित वैदिक सभ्यता में स्त्रियों का संग बहुत ही सावधानी से किया जाता है। चार सामाजिक विभाजनों में, पहले वर्ग (ब्रह्मचर्य), तीसरे वर्ग (वानप्रस्थ) और चौथे वर्ग (संन्यास) के सदस्यों को स्त्री संग की पूरी तरह से मनाही है। केवल एक वर्ग, गृहस्थ, में कुछ पाबंदियों के साथ स्त्रियों से मिलने की आज्ञा है। (श्रीमद्भागवतम् 3.31.35 टीका)

भारतीय संस्कृति में प्रसन्न रहने और जीवन के उद्देश्य की ओर अग्रसर होने के लिए बहुत सी चीज़ें हैं। पूरे जगत को देखने के बाद मैं भारत की संस्कृति की और अधिक प्रशंसा कर पा रहा हूँ। पहले मैं सोचता था, ''यह प्रथा है। पतिव्रता पत्नी बनना प्रथा है।'' किन्तु जब मैं विदेश आया, मैंने देखा कि पतिव्रता पत्नी क्या होती है। आज भी भारत में, गाँव में, यदि पति-पत्नी में कोई झगड़ा होता है तब भी पत्नी पतिव्रता रहती है, पूरी तरह से पति पर आश्रित। पति भी इतने झगड़े के बावजूद, सदैव ध्यान रखता है कि पत्नी को असुविधा न हो। यह संस्कृति थी। अब यह टूट रही है। (संवाद, 2 अगस्त 1976)

बच्चे

यह बच्चों की परवरिश की भारतीय रीति है। जब माता जवान होती है तो वह गर्भवती हो जाती है। बच्चे के पहले तीन सालों में तीन या चार संस्कार होते हैं। एक है स्वाद-भक्षण। विचार यह है कि प्रसव के दौरान स्त्री खतरे में होती है। कई खतरे हो सकते हैं। इसलिए दो बार स्वाद-भक्षण, सातवें महीने या शायद नौंवे महीने में। माता को जो अच्छा लगता है वह खाती है। इस संस्कार में उसे बहुत ही बढ़िया तरीके से नए कपड़ों में सजना होता है, सभी बच्चों के साथ नहाना होता है — अपने बच्चे के साथ ही नहीं अन्य बच्चों के साथ भी। बहुत अच्छे पकवान बनाए जाते हैं और वे सब इकट्ठे बैठ जाते हैं और बच्चों के साथ माता खाएगी। और ब्राह्मणों को कुछ दान दिया जाता है। वे वैदिक मंत्रों का उच्चारण करते हैं... इस प्रकार बच्चों का बहुत ध्यान रखा जाता है। (संवाद, 17 जून 1977)

श्रीमद्भागवतम् श्रवण

बचपन में हमने हर गाँव, हर कस्बे में दिव्य ज्ञान देखा है। कोई भी आम आदमी रामायण, महाभारत, भगवान् कृष्ण के बारे में बोल सकता है। प्रणाली यह थी कि शाम को गाँव में सभी एक जगह, विशेषकर महाभारत और रामायण का संदेश सुनने के लिए इकट्ठे हो जाते थे क्योंकि ये दो ग्रंथ आम आदमी द्वारा समझे जा सकते हैं। वेदान्त दर्शन की भी चर्चा की जाती थी। अब लगभग

सबकुछ खत्म हो चुका है किन्तु थोड़ा-बहुत अभी भी बचा है। मेरे मामा जी, हमारे घर से दस मील दूर, कलकत्ता के बाहर के इलाके में थे। जब हम कई बार उनके पास जाते थे, शाम के भोजन के बाद, आठ बजे के आसपास वे एक स्थान पर जाते और इकट्ठे होकर रामायण, महाभारत, भागवतम् श्रवण करते। और घर वापिस आते हुए चर्चा करते आते और इसे याद करते हुए सोते। इस प्रकार वे सोते हुए और सपनों में भी रामायण तथा महाभारत का ध्यान करते। (प्रवचन, 31 मई 1972)

भारत में इस विज्ञान के सिद्धान्त का पालन दृढ़ता से किया जाता था। यहाँ तक कि पचास साल पहले बंगाल के गाँव तथा कलकत्ता के बाहर के इलाकों में लोग, जब सारे काम खत्म हो जाते या कम से कम सोने से पहले, हर रोज़ भागवतम् सुनते। हर कोई भागवतम् सुनता था। भागवतम् कथाओं का प्रबन्ध हर गाँव में किया जाता था और लोग श्रीमद्भागवतम् सुनने का लाभ लेते थे, जिसमें जीवन के उद्देश्य अर्थात् मुक्ति के बारे में सबकुछ वर्णित है। (श्रीमद्भागवदत I 7.14.2)

मन्दिर

भारत के, विशेषकर विष्णु मन्दिरों में, प्रथा यह है कि मन्दिर के मुख्य भाग में स्थापित बड़े विग्रह के अलावा एक छोटे विग्रह होते हैं जिन्हें शाम को शोभायात्रा में ले जाया जाता है। कुछ मन्दिरों में शाम को तुरहियों तथा ढोल को बजाते हुए तथा रथ या पालकी (जिसे भक्तों द्वारा उठाया जाता है) के सुसज्जित सिंहासन पर विराजमान अर्चाविग्रह के ऊपर बड़ा सा छत्र करके, बहुत बड़ी शोभायात्रा निकाली जाने की प्रथा है। विग्रह बाहर सड़कों पर आते हैं और पड़ोस में भ्रमण करते हैं जबकि पड़ोस के लोग बाहर आकर भोग लगवाते हैं। पड़ोस में रहने वाले शोभयात्रा के साथ चलते हैं, इस तरह यह बहुत सुन्दर दृश्य होता है...जब विग्रह बाहर आते हैं, मन्दिर के सेवक रोज़ का हिसाब उनके (विग्रहों के) समक्ष रखते हैं; इतना इकट्ठा हुआ, इतना खर्च हुआ। पूरा विचार यह है कि विग्रह को पूरे मंदिर का स्वामी माना जाता है और मन्दिर की देखभाल करने वाले सभी पुरोहितों और अन्य लोगों को विग्रह का दास माना जाता है। (भक्ति रसामृत सिन्धु अध्याय 6)

नाट्य

सौ वर्ष पूर्व भी भारत में, सभी नाट्य परम भगवान् की असाधारण लीलाओं के गिर्द होते थे। आम लोगों का इन नाट्यों से सचमुच मनोरंजन होता था और यात्रा करती मण्डिलयाँ भगवान् की असाधारण लीलाओं पर अद्भुत नाट्य करतीं थीं और इस प्रकार अनपढ़ किसान, न के बराबर साहित्यिक योग्यता होने के बावजूद वैदिक साहित्य के ज्ञान में भाग लेते। (श्रीमद्भागवतम् 1.11.20)

संस्कार

तेल में मिले सिंदूर, खई (गले चावल), केले, नारियल और हल्दी, ये सब ऐसे संस्कार (नवजात शिशु के सम्मान में) के लिए शुभ उपहार हैं। मुर-मुरे चावल ही की तरह चावल का अन्य पकवान है खई या गले चावल, जिन्हें केले के साथ बहुत ही शुभ माना जाता है। इसके अलावा तेल में हल्दी और सिंदूर मिलाने से एक मंगलकारी लेप बन जाता है जिसे नवजात शिशु या विवाह से पहले व्यक्ति को लगाया जाता है। ये सब घर में शुभ कार्य हैं...। हमें मालूम हैं कि पाँच सौ वर्ष पहले, भगवान् चैतन्य महाप्रभु के जन्म पर इन सब संस्कारों का बहुत ही कड़ाई से किया जाता था, किन्तु आज ये सब संस्कार मुश्किल से ही कहीं होते हैं। आमतौर पर गर्भवती माता को अस्पताल भेज दिया जाता है और जैसे ही शिशु का जन्म होता है, उसे एंटीसेप्टिक से साफ कर देते हैं और सब कुछ हो जाता है। (चैतन्य चरितामृत, आदि लीला 13.110 टीका)

स्वच्छता

आप गरीब वर्ग के बर्तन देख सकते हैं उनके बर्तन कितने साफ होते हैं। हमारे स्कूल के दिनों में भंगी जो शौचालय साफ करते हैं; वे अलग जगह पर रहते थे। किन्तु जब आप उनके घर जाएँगे— पलंग, कमरा, बर्तन, ये सब इतना स्वच्छ होता है कि आपका बैठने का मन करेगा। और वे भी दो या तीन बार स्नान करेंगे फिर भोजन लेंगे। यह हिन्दू सभ्यता है। यहाँ तक कि भंगी, निम्न वर्ग। और मैंने एक भंगी वर्ग देखा है, जो इलाहबाद में थे, रोज़ अर्चाविग्रह की

सेवा करते थे — बहुत ही अच्छी पूजा। उन्होंने वृन्दावन गोस्वामी से दीक्षा ली थी और सभी नियमों का दृढ़ता से पालन करते थे। (संवाद, 24 अगस्त 1976)

श्रील प्रभुपाद ने टिप्पणी की कि यदि भारतीयों के पास एक कपड़ा भी हो, तब भी वे इसे रोज़ धोएँगे। यह वैदिक सभ्यता है। (ट्रान्सैडैंटल डायरी, खण्ड 1, पेज 259, लेखक हरि शौरि दास)

भारत में नदियाँ बहुत स्वच्छ हैं और लोग इन नदियों में स्नान करने का आनन्द लेते हैं। यदि वहाँ नदी है तो कोई भी घर पर स्नान नहीं करता। वे नदी पर जाएँगे। और यह बहुत ही तरोताजा करने वाला होता है। (प्रवचन, 24 अप्रैल 1975)

उन्होंने हमें बताया कि खाना पकाने के बर्तन बहुत ज्यादा साफ होने चाहिए। यदि काला भाग रह गया है तो एक ब्राह्मण रसोईया इसे हाथ भी नहीं लगाएगा। पुष्टा ने पूछा, ''यदि बर्तन के नीचे बाहरी तरफ भी हो?'' ''हाँ, वे इसे नहीं छूएँगे: 'ओह, यह गन्दा है।'' किन्तु हमारे मन्दिरों में यह सब चल रहा है। क्या कर सकते हैं?'' प्रभुपाद ने हमें कहा, हमारी मानसिकता कहती है कि थोड़े से साबुन से रगड़ दिया, यह पर्याप्त है। किन्तु यह स्वच्छता नहीं, उन्होंने कहा। (ट्रान्सैडैंटल डायरी, खण्ड 2, पेज 23-4)

अपने शिष्यों को स्वच्छता के साधारण नियमों को, जिन्हें भारत में गाँव के बच्चे भी समझते हैं, ग्रहण कर पाने मे असमर्थ देखकर प्रभुपाद ने टिप्पणी की, ''एक विदेशी के लिए किसी तरह से स्वच्छ रहना बहुत ही बनावटी स्थिति है।'' (ट्रान्सैडैंटल डायरी, खण्ड 1, पेज 331)

[प्रभुपाद ने कहा कि] विदेशियों को स्वच्छता की समझ नहीं है। हम नियमित रूप से नहीं नहाते, जब कि भारत में ब्राह्मण एक बार नहीं बल्कि दिन में तीन बार नहाते और हर बार कपड़े बदलते हैं। (ट्रान्सैडैंटल डायरी, खण्ड 2, पेज 23-4)

भारत के गाँव में, एक गरीब के घर भी, आपको हर वस्तु साफ सुथरी मिलेगी; कम से कम रसोई और खाना खाने का स्थान बहुत ही साफ सुथरा होगा। जलवायु भी बहुत अच्छी है। लगभग सारा साल सूर्य की रोशनी रहती है। (वार्तालाप, 13 जुलाई 1976)

गाय

यदि कोई गायों और ब्राह्मणों का सम्मान करने और पूजा करने के लिए प्रशिक्षित है, वह असल में सभ्य है। (श्रीमद्भागवतम् 6.18.52 टीका)

आमतौर पर गायों और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् विभिन्न रूपों में अवतार लेते हैं। भगवान् को *गो-ब्राह्मण हिताय च* कहा गया है; दूसरे शब्दों में वे सदैव गायों और ब्राह्मणों के हित के लिये तत्पर रहते हैं। जब कृष्ण प्रकट होते हैं, वे किसी उद्देश्य से ग्वाले बनते हैं और स्वयं दिखाते हैं कि किस प्रकार गायों और बछड़ों की रक्षा करनी है। इसी प्रकार, उन्होंने सुदामा विप्र, ब्राह्मण का सम्मान किया। भगवान् के निजी कार्यों से, मानव समाज को, विशेषकर ब्राह्मण और गायों की रक्षा करना सीखना चाहिए। तब धार्मिक नियमों की रक्षा, जीवन के उद्देश्य की पूर्ति और वैदिक ज्ञान की रक्षा हो सकेगी। बिना गायों की रक्षा के, ब्राह्मण संस्कृति नहीं रह सकती। इसलिए भगवान् को *गो ब्राह्मण हिताय* कहा गया है, क्योंकि उनका अवतार केवल गायों और ब्राह्मणों की रक्षा के लिए है। दुर्भाग्यवश, क्योंकि कलियुग में गायों और ब्राह्मण संस्कृति की रक्षा नहीं है, हर चीज़ भयंकर स्थिति में है। यदि मानव समाज ऊँचा उठना चाहता है, तो समाज के नेताओं को भगवद्गीता के उपदेशों का पालन करना चाहिए और गायों, ब्राह्मणों तथा ब्राह्मण संस्कृति की रक्षा करनी चाहिए। (श्रीमद्भागवतम 8.24.5 टीका)

कृष्ण ने यह करके दिखाया कि किस प्रकार गायों की रक्षा करनी चाहिए। कम से कम जो लोग कृष्णभावनामृत में हैं उन्हें भगवान् के पद्चिह्नों पर चलकर गायों की रक्षा करनी चाहिए। गायों की पूजा केवल देवी-देवताओं द्वारा ही नहीं होती। कृष्ण ने भी कई अवसरों पर, विशेषकर गोपाष्टमी और गोवर्धन पूजा वाले दिन गायों की पूजा की थी। (भक्तिरसामृत सिन्धु)

भारत में नि:सन्देह गायों की रक्षा होती है और ग्वाले गौ की देखभाल से अच्छा लाभ कमा लेते हैं। गाय का गोबर ईंधन के रूप में इस्तेमाल होता है। गाँव में गाय के गोबर को धूप में सुखाकर संभाल लिया जाता है और ईंधन के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। वे गेहूँ और अन्य अनाज खेतों में उगाते हैं। दूध और सब्जियाँ होती हैं और ईंधन गाय का गोबर होता है और इस प्रकार हर गाँव आत्म-निर्भर होता है। कपड़ों के लिए जुलाहे होते हैं। स्थानीय तेल-मिल (कोल्हू होते हैं और बैल इनके गिर्द घूमकर इन्हें चलाते हैं) बीजों को पीसकर तेल निकालती है। (पत्र, 14 जून 1968)

परिशिष्ट २

टाईम मैगज़ीन को पत्र

अमरीकी अर्थ-व्यवस्था, सेना और सांस्कृतिक प्रभाव, जिसमें मैक डॉनल्ड की बीजिंग में तथा पाकिस्तान के ग्रामीण इलाकों में कोका-कोला के बेचे जाने की तस्वीरें भी थीं, पर छपे मुख्य लेख के जवाब में 1 सितम्बर 1997, में टाईम के योरुपियन प्रकाशन में यह पत्र छपा था।

मैक डॉनल्ड और कोका-कोला मुनाफाखोरी और बददिमाग भोग पर केन्द्रित घोर भौतिकतावादी सभ्यता के चिह्न हैं। अमरीका इस प्रकार की गलत संस्कृति अन्य देशों पर थोप रहा है, जिसमें कोई गर्व की बात नहीं है। पारम्परिक धार्मिक, पारिवारिक और सामाजिक मूल्य विदेशी संस्कृति रूपी क्रूर इंजन द्वारा कुचल दिए गए हैं। सुन्दरता से प्रेम और उन्नत भावनाओं की जगह कामवासना, हिंसा और भौतिक चीज़ों के लिए कभी न खत्म होने वाले उन्माद ने ले ली है। अमरीका, एक बार फिर से अपनी ओर देख लो, कहीं ऐसा न हो कि इतिहास में तुम्हें सबसे ज्यादा शोषण करने वाले और बौद्धिक रूप से निर्बल सभ्यता के रूप में याद किया जाए।

भक्तिविकास स्वामी

बड़ौदा, भारत

परिशिष्ट ३

विश्व प्रसन्नता सर्वेक्षण

निम्नोकित लेख डेक्कन हेरालड, एक भारतीय समाचार पत्र में 9 दिसम्बर 1998 में छपा था।

क्या आप विश्वास करेंगे, बांग्लादेश संसार का सबसे प्रसन्न देश है। दूसरी ओर अमरीका की दु:खभरी दास्तान है: विश्व प्रसन्नता सर्वेक्षण में यह 46 स्थान पर है।

यह पाँचवे स्थान पर भारत तथा घाना और लातीवा, क्रोएशिया और एस्टोनिआ जैसे देशों से बहुत पीछे है। लंदन स्कूल ऑफ इक्नामिक्स के प्रोफैसरों द्वारा पैसे और सुखी जीवन के आपसी सम्बंध पर किये गये अनुसंधान से साफ पता चलता है कि पैसा हर चीज़ खरीद सकता है किन्तु खुशी नहीं।

अध्ययन ने यह खुलासा किया कि बांग्लादेश के लोग संसार के सबसे गरीब देशों में से एक है। किंतु वे कम आमदनी में भी ब्रिटेन के धनवान लोगों (सूची में 32 स्थान पर) के मुकाबले ज्यादा सुखी हैं।

असल में आस्ट्रिया, नीदरलैंड, स्विटजरलैंड, कैनेडा, जापान आदि सबसे धनवान देशों में लोग डॉमिनिकन रिपब्लिक और अरमीनिआ जैसे गरीब देशों के मुकाबले बहुत दु:खी हैं।

किन्तु सबसे दुर्भाग्यशाली, रूस और भूतपूर्व सोवियत यूनियन के अन्य भाग हैं। विश्व प्रसन्नता सर्वेक्षण ने संकेत दिया, वे न तो अमीर हैं और न ही प्रसन्न।

इस सूची में स्लोवेनिया, लिथुआनिया, स्लोवाकिया, रशिया, युक्रेन, बेलारूस, बेलगारिया ओर मोलदोवा आदि देश अमेरिका के पीछे हैं। इस सर्वे से पता चलता है कि ब्रिटेन के लोगों की आमदनी पिछले चालीस सालों में वास्तविक रूप से दुगनी हो गई है किन्तु उनके जीवन स्तर में कोई खास बदलाव नहीं आया।

पिछले कई सर्वों में बताया गया था कि ब्रिटेन के लोग मानते हैं कि पैसे से खुशी प्राप्त की जा सकती है। नये सर्वे से पता चलता है कि गरीब देशों में यह बात आज भी सही है क्योंकि आमदनी में थोड़ी सी भी बढ़ोतरी से जीवन स्तर में काफी सुधार आ सकता है।

किन्तु आमदनी के एक स्तर के बाद पैसे और खुशी का सीधा संबंध टूट जाता है। सर्वे के अनुसार अमीर देशों में खुशी अब काफी हद तक व्यक्तिगत संबंधों, अच्छी सेहत और नौकरी में संतोष पर निर्भर है।

ब्रिटेन में लोग दस साल पहले अधिक खुशहाल थे। स्स्थ में मानद सरकारी प्रोफैसर और सर्वे के सहायक लेखक रोबर्ट वोसैस्टर के अनुसार दो तिहाई लोग आर्थिक उन्नति या व्यक्तिगत धन में बढ़ोतरी की जगह वातावरण में सुधार को अधिक प्राथमिकता देते हैं।

इन अनुसंधानकर्ताओं केअनुसार ब्रितानवी लोग दूसरे अधिकतर देशों की अपेक्षा अधिक संपन्न है किन्तु भोक्तावाद और परिवारों के टूटने के कारण वे भावनात्मक रूप से काफी गरीब हैं।

सर्रे विश्वविद्यालय के सामाजिक विज्ञान अनुसंधानकर्ता निक मार्क्स ने भी इस सर्वे पर काम किया है। उनके अनुसार आर्थिक उन्नति के असीमित दबाव के चलते हमारी व्यक्तिगत आवश्यकताओं की अनदेखी हो रही है।

परिभाषा

जिन शब्दों को यहाँ समझाया गया है, उनके और भी अर्थ हो सकते हैं। इसका कारण है कि शब्दों की परिभाषाएँ इस पुस्तक में प्रयोग के अनुसार दी गईं हैं, इसलिये ये परिभाषाएँ व्यापक नहीं हैं।

अभिषेक – विग्रह या महान व्यक्ति को नहलाने की प्रक्रिया।

आचार्य – जो अपने आचरण से सिखाए, गुरु। इसका अर्थ गुरु हो सकता है लेकिन यह मुख्य रूप से (क) धार्मिक संस्था के प्रमुख या (ख) एक अत्यंत प्रबल और प्रभावशाली आध्यात्मिक लीडर की ओर संकेत करता है।

अजामिल – एक पापी व्यक्ति जिसकी नारायण के पवित्र नाम जपने के कारण नर्क से रक्षा हुई थी। उसकी कथा का वर्णन *श्रीमद्-भागवतम्* में दिया गया है।

अन्न-प्राशन – नवजात शिशु को पहली बार अन्न खिलाने का उत्सव। पारम्परिक भारतीय संस्कृति के अन्य पारिवारिक उत्सवों की तरह यह एक धार्मिक व सामाजिक उत्सव है।

आरती – पूजा करने की वैधानिक विधि जिसमें विग्रह या किसी आरदणीय आध्यात्मिक व्यक्ति को विभिन्न सामग्रियाँ (जैसे घी का दीपक, और अधिकतर अगरबत्ती, जल और अन्य सामग्रियाँ) अर्पित की जाती हैं।

अर्चकर – आधिकारिक पुरोहित; आमतौर पर यह शब्द दक्षिण भारत में प्रयोग किया जाता है जो उत्तरी भारत के पुजारी के समकक्ष है।

भजन – धार्मिक गीत।

बोरि – सूखी पिसी दाल की बनी खाने वाली गोल टिक्कियाँ।

ब्रह्मचारी – वैदिक आध्यात्मिक जीवन के पहले आश्रम का सदस्य।

ब्राह्मण – (1) मानव जीवन के दिव्य उद्देश्य को पूरा करने के लिए समर्पित प्रथम श्रेणी का व्यक्ति; (2) पुरोहित, अध्यापक, या विद्वान; (3) वैदिक सामाजिक पद्धति का पहला वृत्तिपरक वर्ग। (आजकल गलती से केवल जन्म के आधार पर ब्राह्मण का पद निश्चित किया जाता है, यद्यपि ब्राह्मण परिवार के कुछ ही वंशज अपने पारम्परिक कर्तव्यों का निर्वाह कर रहे हैं।) वर्ण भी देखें।

(श्री) चैतन्य चरितामृत – श्री चैतन्य महाप्रभु की 2 प्रामाणिक जीवनियों में से एक। इसको सन् 1615 में पूरा किया गया था। दूसरी प्रामाणिक जीवनी श्री चैतन्य-भागवत है।

(श्री) चैतन्य महाप्रभु – (1486-1534) परम भगवान् जो अपने प्रति प्रेम सिखाने के लिए अपने ही भक्त के रूप में प्रकट हुए। उन्होंने विशेष रूप से अपने पवित्र नामों के संकीर्तन का प्रचार किया।

चातुर्मास्य – वर्षा ऋतु के चार महीने।

एकादशी – चन्द्र मास का ग्यारहवाँ दिन जिसमें कम से कम भक्तों द्वारा आंशिक व्रत का पालन किया जाता है। (अधिकतर गौड़ीय वैष्णव अनाज व फलियों से परहेज करते हैं।)

गरुड़ – भगवान् विष्णु का वाहन।

गौर-निताइ – गौर, चैतन्य महाप्रभु का एक और नाम है और निताइ उनके दिव्य भाई नित्यानंद प्रभु का दूसरा नाम है।

गायत्री – सुबह, दोपहर व शाम के समय मौन रूप से दीक्षित भक्तों द्वारा जपे जाने वाला मन्त्र।

गुरुकुल – इसका शाब्दिक अर्थ है ''गुरु का स्थान'', बालकों को वैदिक साहित्य, ब्रह्मचर्य व सत् चरित्र सिखाने के लिए पारम्परिक विद्यालय।

हरि – कृष्ण का एक नाम।

जगन्नाथ – इसका शाब्दिक अर्थ है ''ब्रह्माण्ड के स्वामी'', भगवान् कृष्ण के लकड़ी के विग्रह जिनकी पूजा उन्हीं के समान विग्रह रूप में उनके भाई व बहन के साथ पुरी,उड़ीसा में की जाती है। उनकी पूजा भारत के अन्य भागों में विशेष रूप से बंगाल व उड़ीसा में की जाती है और अब तो पूरे विश्व में उनकी पूजा की जा रही है। जगन्नाथ की पूजा के पीछे विशाल व पुरातन संस्कृति है।

जियर – श्री वैष्णव गुरु।

कलियुग – पतन व कलह का वर्तमान युग जो लगभग 5,000 वर्ष पूर्व शुरु हुआ।

कर्म-काण्डीय – कर्म-काण्ड से सम्बंधित, भौतिक समृद्धि के लिए वैदिक धार्मिक पद्धति।

कार्तिक – अक्तुबर-नवम्बर के बीच चन्द्र मास। यह वैष्णवों के लिये बहुत पवित्र माना जाता है। इस दौरान वैष्णव अपनी तपस्या व आध्यात्मिक गतिविधियाँ बढ़ाते हैं।

कृष्णभावनामृत – कृष्ण की प्रसन्नता के लिए भक्तिमय विचारों या कार्यों में संलग्न होना।

क्षत्रिय – चार वैदिक सामाजिक वर्गों में से दूसरे वर्ग का सदस्य; शासक और योद्धा।

कुमकुम – लाल पाउडर जिसका प्रयोग अधिकतर धार्मिक लोगों द्वारा मस्तक पर शुभ चिह्न बनाने के लिए किया जाता है।

लक्ष्मी – भगवान् नारायण की शाश्वत पत्नी।

लीला – भगवान् और उनके भक्तों के दिव्य कार्य।

मध्व संप्रदाय – दक्षिण भारत में प्रसिद्ध वैष्णव संप्रदाय।

महाभारत – महान भारत के इतिहास का वर्णन करने के लिए 5,000 वर्ष पूर्व संकलित महाकाव्य। इसमें नैतिक और आध्यात्मिक ज्ञान पर कई शिक्षाएँ दी गईं हैं।

महामन्त्र – वैदिक साहित्य में दिये गये असं य मन्त्रों में से सबसे महत्वपूर्ण मन्त्र हरे कृष्ण मन्त्र है। इसलिये इसे महामन्त्र के नाम से जाना जाता है। (महा– महान, मन्त्र– मन को तारने वाली दिव्य ध्वनि)

मार्गशीर्ष – चन्द्र मास के अनुसार दिसंबर के दूसरे आधे भाग व जनवरी के पहले आधे भाग से मिल कर बना।

माया – भ्रम की स्थिति अर्थात् कृष्ण–ज्ञान से रहित।

मायावाद – ऐसा सिद्धान्त जिसके अनुसार परम सत्य निर्विशेष है और भिन्नता या आकार की कोई भी धारणा अन्ततः भ्रम है।

म्लेच्छ – मांस खाने वाला; ऐसे व्यक्ति निम्न श्रेणी, गंदे और असभ्य माने जाते हैं।

मोक्ष – भौतिक अस्तित्व से मुक्ति।

मृदंग – एक प्रकार की ढोलकी।

नमस्कार(म्) – आदरपूर्वक अभिवादन।

नारायण – कृष्ण का एक रूप।

उड़िया – (1) उड़ीसा का या उससे सम्बंधित (2) उड़ीसा के निवासियों की भाषा।

पंडित – विद्वान, विशेष रूप से वैदिक ज्ञान में।

परम्परा – गुरु से शिष्य और उनके प्रशिष्य आदि की शृंखला जिसके द्वारा दिव्य ज्ञान प्रदान किया जाता है।

पिंड – पूर्वजों को भोजन अर्पित करना।

पोंगल – (इसको पोंगल उत्सव नहीं समझना चाहिए) चावल से बना एक स्वादिष्ट पकवान जो दक्षिण भारत में बहुत प्रसिद्ध है और हिन्दु उत्सवों में अवश्य बनाया जाता है।

श्रील प्रभुपाद – इस्कॉन के संस्थापकाचार्य।

प्रसाद, प्रसादम् – कृपा, परम भगवान् या उनके शुद्ध भक्त को अर्पित करने के कारण आध्यात्मिक बन चुका भोजन या अन्य पदार्थ।

पुराण – प्राचीन इतिहास, वैदिक ग्रन्थों का एक वर्ग।

राधा – भगवान् कृष्ण की सबसे अन्तरंग प्रेमिका, उनकी मूर्तिमान अन्तरंग आध्यात्मिक शक्ति।

राक्षस – मानव-भक्षी असुर।

रामायण – प्राचीन महाकाव्य और धार्मिक ग्रन्थ जिसमें भगवान् राम की लीलाओं का वर्णन हैं।

रथयात्रा – धार्मिक जलूस जिसमें विग्रह को रथ पर विराजमान किया जाता है और गलियों में खींचा जाता है। उड़ीसा में रथयात्रा का अर्थ भगवान् जगन्नाथ की रथयात्रा।

शाक्त – भौतिक शक्ति की स्त्री रूप, दुर्गा का उपासक।

शालग्राम-शिला – एक विशेष प्रकार का पत्थर जो भगवान् विष्णु से अभिन्न है।

संप्रदाय – आध्यात्मिक साधकों की शृंखला जो गुरु-शिष्य पर परा के माध्यम से चलती है और जिसमें एक विशेष सिद्धान्त का पालन किया जाता है।

संध्या-वंदनम् – ब्राह्मणों द्वारा रोज तीन बार की जाने वाली प्रार्थनाएँ और पूजा।

संकीर्तन – सामूहिक कीर्तन, कीर्तन का पर्यायी शब्द।

शास्त्र – वेद तथा वैदिक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाले ग्रन्थ जिनका वैदिक आचार्यों द्वारा समर्थन किया जाता है।

शिखा – वैष्णवों और वैदिक समाज के अन्य सम्प्रदायों द्वारा सिर पर रखी जाने वाली चोटी।

स्मार्त – कर्म-काण्डीय विधानों का पालन करने वाला।

स्मार्त-ब्राह्मण – कर्म-काण्डीय विधियों को सम्पन्न करने वाला जात-ब्राह्मण। यह आमतौर पर शिव जी का उपासक होता है।

श्रीमद्-भागवतम् – 18,000 संस्कृत श्लोकों से बना वैष्णवों के लिए सबसे महत्वपूर्ण ग्रन्थ।

श्री रंगम् – श्री वैष्णव सम्प्रदाय का मुख्य केन्द्र।

शुद्र – (1) श्रमिक और कलाकार; (2) वैदिक सामाजिक प्रणाली के चारम्भागों में चतुर्थ श्रेणी का कार्य करने वाला। वर्ण; वर्णाश्रम-धर्म भी देखें।

तेलगु – आंध्र प्रदेश की भाषा।

उलु-उलु – स्त्रियों द्वारा की गई मांगलिक ध्वनि।

उपमा – सूजी से बनी खाद्य वस्तु।

उपनयनम् – एक दीक्षांत समारोह जिसके बाद बालक वेदों अध्ययन कर सकता है (आजकल आमतौर पर इसे औपचारिकता मात्र के लिए किया जाता है।)

वड़ा – चावल और दाल के घोल से तली हुई गोलियाँ

वैकुण्ठ – ''दु:खों से मुक्त;'' आध्यात्मिक जगत्।

वैष्णव – विष्णु (कृष्ण) का भक्त।

वैश्य – वैदिक सामाजिक प्रणाली में तृतीय श्रेणी का कार्य करने वाला सदस्य; व्यापारी या किसान।

वर्णाश्रम-धर्म – वैदिक सामाजिक प्रणाली जिसमें चार प्रकार के कार्य और चार प्रकार के आश्रम बांटे गए हैं। आश्रम भी देखें।

विष्णु – कृष्ण का एक अन्य रूप।

विष्णु सहस्त्रनाम – विष्णु के हजार नामों का उच्चारण, जैसा कि महाकाव्य महाभारत और अन्य शास्त्रों में वर्णित है।

वृन्दावन – (1) परम पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण का सर्वोच्च आध्यात्मिक धाम; (2) यही धाम वृन्दावन के नाम से भारत में अवतीर्ण हुआ, जो दिल्ली से दक्षिण-पूर्वी दिशा में 90 मील दूर है। और यहाँ कृष्ण पाँच हजार वर्ष पूर्व अपनी बाल-लीलाएँ की थीं।